भगवान् शिवका यतिनाथ एवं हंस नामक अवतार

नन्दीश्वर कहते हैं—मुने ! अब मैं परमात्मा शिवके यतिनाथ नामक अवतारका वर्णन करता हूँ। मुनीश्वर ! अर्बुदाचल नामक पर्वतके समीप एक भील रहता था, जिसका नाम था आहुक। उसकी पत्नीको लोग आहुका कहते थे। वह उत्तम व्रतका पालन करनेवाली थी। ये दोनों पति-पत्नी महान् शिवभक्त थे और शिवकी आराधना-पूजामें लगे रहते थे। एक दिन वह शिवभक्त भील अपनी पत्नीके लिये आहारकी खोज करनेके निमित्त जंगलमें बहुत दूर चला गया। इसी समय संध्याकालमें भीलकी परीक्षा लेनेके लिये भगवान् शंकर संन्यासीका रूप धारण करके घर आये। इतनेमें ही उस घरका मालिक भील भी चला आया और उसने बड़े प्रेमसे उन यतिराजका पूजन किया। उसके मनोभावकी परीक्षाके लिये उन यतीश्वरने दीनवाणीमें कहा—'भील ! आज रातमें यहाँ रहनेके लिये मुझे स्थान दे दो। सबेरा होते ही चला जाऊँगा, तुम्हारा सदा कल्याण हो।'

भील बोला—स्वामीजी ! आप ठीक कहते हैं, तथापि मेरी बात सुनिये। मेरे घरमें स्थान तो बहुत थोड़ा है। फिर उसमें आपका रहना कैसे हो सकता है ?

भीलकी यह बात सुनकर स्वामीजी वहाँसे चले जानेको उद्यत हो गये।

तब भीलनीने कहा—प्राणनाथ ! आप स्वामीजीको स्थान दे दीजिये। घर आये हुए अतिथिको निराश न लौटाइये। अन्यथा हमारे गृहस्थ-धर्मके पालनमें बाधा पहुँचेगी। आप स्वामीजीके साथ सुखपूर्वक घरके भीतर रहिये और मैं बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्र लेकर बाहर खड़ी रहूँगी।

पत्नीकी यह बात सुनकर भीलने सोचा—स्त्रीको घरसे बाहर निकालकर मैं भीतर कैसे रह सकता हूँ ? संन्यासीजीका अन्यत्र जाना भी मेरे लिये अधर्मकारक ही होगा। ये दोनों ही कार्य एक गृहस्थके लिये सर्वथा अनुचित हैं। अतः मुझे ही घरके बाहर रहना चाहिये। जो होनहार होगी, वह तो होकर ही रहेगी। ऐसा सोच आग्रह करके उसने स्त्रीको और संन्यासीजीको तो सानन्द घरके भीतर रख दिया और स्वयं वह भील अपने आयुध पास रखकर घरसे बाहर खड़ा हो गया। रातमें जंगली क्रूर एवं हिंसक पशु उसे पीड़ा देने लगे। उसने भी यथाशक्ति उनसे बचनेके लिये महान् यत्न किया। इस तरह यत्न करता हुआ वह भील बलवान् होकर भी प्रारब्धप्रेरित हिंसक पशुओंद्वारा बलपूर्वक खा लिया गया। प्रातःकाल उठकर जब यतिने देखा कि हिंसक पशुओंने वनवासी भीलको खा डाला है, तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ। संन्यासीको दुःखी देख भीलनी दुःखसे व्याकुल होनेपर भी धैर्यपूर्वक उस दुःखको दबाकर यों बोली—'स्वामीजी ! आप दुःखी किसलिये हो रहे हैं ? इन भीलराजका तो इस समय कल्याण ही हुआ। ये धन्य और कृतार्थ हो गये, जो इन्हें ऐसी मृत्यु प्राप्त हुई। मैं चिताकी आगमें जलकर इनका अनुसरण करूँगी। आप प्रसन्नतापूर्वक मेरे लिये एक चिता तैयार कर दें; क्योंकि स्वामीका अनुसरण करना स्त्रियोंके लिये सनातन धर्म है।' उसकी बात सुनकर संन्यासीजीने स्वयं चिता

तैयार की और भीलनीने अपने धर्मके

अनुसार उसमें प्रवेश किया। इसी समय भगवान् शंकर अपने साक्षात् स्वरूपसे उसके सामने प्रकट हो गये और उसकी प्रशंसा करते हुए बोले—'तुम धन्य हो, धन्य हो। मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम इच्छानुसार वर माँगो। तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है।'

भगवान् शंकरका यह परमानन्ददायक वचन सुनकर भीलनीको बड़ा सुख मिला। वह ऐसी विभोर हो गयी कि उसे किसी भी बातकी सुध नहीं रही। उसकी उस अवस्थाको लक्ष्य करके भगवान् शंकर और भी प्रसन्न हुए और उसके न माँगनेपर भी उसे वर देते हुए बोले—'मेरा जो यतिरूप है, यह भावी जन्ममें हंसरूपसे प्रकट होगा और प्रसन्नतापूर्वक तुम दोनोंका परस्पर संयोग करायेगा। यह भील निषधदेशकी उत्तम राजधानीमें राजा वीरसेनका श्रेष्ठ पुत्र होगा। उस समय नलके नामसे इसकी ख्याति होगी और तुम विदर्भ नगरमें भीमराजकी पुत्री दमयन्ती होओगी। तुम दोनों मिलकर राजभोग भोगनेके पश्चात् यह मोक्ष प्राप्त करोगे, जो बड़े-बड़े योगीश्वरोंके लिये भी दुर्लभ है।'

नन्दीश्वर कहते हैं—मुने! ऐसा कहकर भगवान् शिव उस समय लिङ्गरूपमें स्थित हो गये। वह भील अपने धर्मसे विचलित नहीं हुआ था, अतः उसीके नामपर उस लिङ्गको 'अचलेश' संज्ञा दी गयी। दूसरे जन्ममें वह आहुक नामक भील नैषध नगरमें वीरसेनका पुत्र हो महाराज नलके नामसे विख्यात हुआ और आहुका नामकी भीलनी विदर्भ नगरमें राजा भीमकी पुत्री दमयन्ती हुई और वे यतिनाथ शिव वहाँ हंसरूपमें प्रकट हुए। उन्होंने दमयन्तीका नलके साथ विवाह कराया। पूर्वजन्मके सत्कारजनित पुण्यसे प्रसन्न हो भगवान् शिवने हंसका रूप धारणकर उन दोनोंको सुख दिया। हंसावतारधारी शिव भाँति-भाँतिकी बातें करने और संदेश पहुँचानेमें कुशल थे। वे नल और दमयन्ती दोनोंके लिये परमानन्ददायक हुए।

(अध्याय २८)

☆

भगवान् शिवके कृष्णदर्शन नामक अवतारकी कथा

नन्दीश्वर कहते हैं—सनत्कुमारजी! भगवान् शम्भुके एक उत्तम अवतारका नाम कृष्णदर्शन है, जिसने राजा नभगको ज्ञान प्रदान किया था। उसका वर्णन करता हूँ, सुनो। श्राद्धदेव नामक मनुके जो इक्ष्वाकु आदि पुत्र थे, उनमें नवमका नाम नभग था,

जिनका पुत्र नाभाग नामसे प्रसिद्ध हुआ। नाभागके ही पुत्र अम्बरीष हुए, जो भगवान् विष्णुके भक्त थे तथा जिनकी ब्राह्मणभक्ति देखकर उनके ऊपर महर्षि दुर्वासा प्रसन्न हुए थे। मुने! अम्बरीषके पितामह जो नभग कहे गये हैं, उनके चरित्रका वर्णन सुनो। उन्हींको भगवान् शिवने ज्ञान प्रदान किया था। मनुपुत्र नभग बड़े बुद्धिमान् थे। उन्होंने विद्याध्ययनके लिये दीर्घकालतक इन्द्रिय-संयमपूर्वक गुरुकुलमें निवास किया। इसी बीचमें इक्ष्वाकु आदि भाइयोंने नभगके लिये कोई भाग न देकर पिताकी सम्पत्ति आपसमें बाँट ली और अपना-अपना भाग लेकर वे उत्तम रीतिसे राज्यका पालन करने लगे। उन सबने पिताकी आज्ञासे ही धनका बँटवारा किया था। कुछ कालके पश्चात् ब्रह्मचारी नभग गुरुकुलसे साङ्गोपाङ्ग वेदोंका अध्ययन करके वहाँ आये। उन्होंने देखा सब भाई सारी सम्पत्तिका बँटवारा करके अपना-अपना भाग ले चुके हैं। तब उन्होंने भी बड़े स्नेहसे दायभाग पानेकी इच्छा रखकर अपने इक्ष्वाकु आदि बन्धुओंसे कहा—'भाइयो! मेरे लिये भाग दिये बिना ही आपलोगोंने आपसमें सारी सम्पत्तिका बँटवारा कर लिया। अतः अब प्रसन्नता-पूर्वक मुझे भी हिस्सा दीजिये। मैं अपना दायभाग लेनेके लिये ही यहाँ आया हूँ।'

भाई बोले—जब सम्पत्तिका बँटवारा हो रहा था, उस समय हम तुम्हारे लिये भाग देना भूल गये थे। अब इस समय पिताजीको ही तुम्हारे हिस्सेमें देते हैं। तुम उन्हींको ले लो, इसमें संशय नहीं है।

भाइयोंका यह वचन सुनकर नभगको बड़ा विस्मय हुआ। वे पिताके पास जाकर बोले—'तात! मैं विद्याध्ययनके लिये गुरुकुलमें गया था और वहाँ अबतक ब्रह्मचारी रहा हूँ। इसी बीचमें भाइयोंने मुझे छोड़कर आपसमें धनका बँटवारा कर लिया। वहाँसे लौटकर जब मैंने अपने हिस्सेके बारेमें उनसे पूछा, तब उन्होंने आपको मेरा हिस्सा बता दिया। अतः उसके लिये मैं आपकी सेवामें आया हूँ।' नभगकी यह बात सुनकर पिताको बड़ा विस्मय हुआ। श्राद्धदेवने पुत्रको आश्वासन देते हुए कहा—'बेटा! भाइयोंकी उस बातपर विश्वास न करो। वह उन्होंने तुम्हें ठगनेके लिये कही है। मैं तुम्हारे लिये भोगसाधक उत्तम दाय नहीं बन सकता, तथापि उन वञ्चकोंने यदि मुझे ही दायके रूपमें तुम्हें दिया है तो मैं तुम्हारी जीविकाका एक उपाय बताता हूँ, सुनो। इन दिनों उत्तम बुद्धिवाले आङ्गिरसगोत्रीय ब्राह्मण एक बहुत बड़ा यज्ञ कर रहे हैं, उस कर्ममें प्रत्येक छठे दिनका कार्य वे ठीक-ठीक नहीं समझ पाते—उसमें उनसे भूल हो जाती है। तुम वहाँ जाओ और उन ब्राह्मणोंको विश्वेदेवसम्बन्धी दो सूक्त बतला दिया करो। इससे वह यज्ञ शुद्धरूपसे सम्पादित होगा। वह यज्ञ समाप्त होनेपर वे ब्राह्मण जब स्वर्गको जाने लगेंगे, उस समय संतुष्ट होकर अपने यज्ञसे बचा हुआ सारा धन तुम्हें दे देंगे।'

पिताकी यह बात सुनकर सत्यवादी नभग बड़ी प्रसन्नताके साथ उस उत्तम यज्ञमें गये। मुने! वहाँ छठे दिनके कर्ममें बुद्धिमान् मनुपुत्रने वैश्वदेवसम्बन्धी दोनों सूक्तोंका स्पष्टरूपसे उच्चारण किया। यज्ञकर्म समाप्त होनेपर वे आङ्गिरस ब्राह्मण यज्ञसे बचा हुआ अपना-अपना धन नभगको

देकर स्वर्गलोकको चले गये। उस यज्ञशिष्ट धनको जब ये ग्रहण करने लगे, उस समय सुन्दर लीला करनेवाले भगवान् शिव तत्काल वहाँ प्रकट हो गये। उनके सारे अङ्ग बड़े सुन्दर थे, परंतु नेत्र काले थे। उन्होंने नभगसे पूछा—'तुम कौन हो? जो इस धनको ले रहे हो। यह तो मेरी सम्पत्ति है। तुम्हें किसने यहाँ भेजा है। सब बातें ठीक-ठीक बताओ।'

नभगने कहा—यह तो यज्ञसे बचा हुआ धन है, जिसे ऋषियोंने मुझे दिया है। अब यह मेरी ही सम्पत्ति है। इसको लेनेसे तुम मुझे कैसे रोक रहे हो?

कृष्णदर्शनने कहा—'तात! हम दोनोंके इस झगड़ेमें तुम्हारे पिता ही पंच रहेंगे। जाकर उनसे पूछो और वे जो निर्णय दें, उसे ठीक-ठीक यहाँ आकर बताओ।' उनकी बात सुनकर नभगने पिताके पास जाकर उक्त प्रश्नको उनके सामने रखा। श्राद्धदेवको कोई पुरानी बात याद आ गयी और उन्होंने भगवान् शिवके चरण-कमलोंका चिन्तन करते हुए कहा।

मनु बोले—'तात! वे पुरुष जो तुम्हें यह धन लेनेसे रोक रहे हैं, साक्षात् भगवान् शिव हैं। यों तो संसारकी सारी वस्तु ही उन्हींकी है। परंतु यज्ञसे प्राप्त हुए धनपर उनका विशेष अधिकार है। यज्ञ करनेसे जो धन बच जाता है, उसे भगवान् रुद्रका भाग निश्चित किया गया है। अतः यज्ञावशिष्ट सारी वस्तु ग्रहण करनेके अधिकारी सर्वेश्वर महादेवजी ही हैं। उनकी इच्छासे ही दूसरे लोग उस वस्तुको ले सकते हैं। भगवान् शिव तुमपर कृपा करनेके लिये ही वहाँ वैसा रूप धारण करके आये हैं। तुम वहीं जाओ और उन्हें प्रसन्न करो। अपने अपराधके लिये क्षमा माँगो और प्रणामपूर्वक उनकी स्तुति करो।' नभग पिताकी आज्ञासे वहाँ गये और भगवान्‌को प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोले—'महेश्वर! यह सारी त्रिलोकी ही आपकी है। फिर यज्ञसे बचे हुए धनके लिये तो कहना ही क्या है। निश्चय ही इसपर आपका अधिकार है, यही मेरे पिताने निर्णय दिया है। नाथ! मैंने यथार्थ बात न जाननेके कारण भ्रमवश जो कुछ कहा है मेरे उस अपराधको क्षमा कीजिये। मैं आपके चरणोंमें मस्तक रखकर यह प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझपर प्रसन्न हों।'

ऐसा कहकर नभगने अत्यन्त दीनतापूर्ण हृदयसे दोनों हाथ जोड़ महेश्वर कृष्णदर्शनका स्तवन किया। उधर श्राद्धदेवने भी अपने अपराधके लिये क्षमा माँगते हुए भगवान् शिवकी स्तुति की। तदनन्तर भगवान् रुद्रने मन-ही-मन प्रसन्न हो नभगको कृपादृष्टिसे देखा और मुस्कराते हुए कहा।

कृष्णदर्शन बोले—'नभग! तुम्हारे पिताने जो धर्मानुकूल बात कही है, वह ठीक ही है। तुमने भी साधु-स्वभावके कारण सत्य ही कहा है। इसलिये मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ और कृपापूर्वक तुम्हें सनातन ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान प्रदान करता हूँ। इस समय यह सारा धन मैंने तुम्हें दे दिया। अब तुम इसे ग्रहण करो। इस लोकमें निर्विकार रहकर सुख भोगो। अन्तमें मेरी कृपासे तुम्हें सद्गति प्राप्त होगी।' ऐसा कहकर भगवान् रुद्र सबके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये। साथ ही श्राद्धदेव भी अपने पुत्र नभगके साथ अपने स्थानको लौट आये।

इस लोकमें विपुल भोगोंका उपभोग करके अन्तमें वे भगवान् शिवके धाममें चले गये। ब्रह्मन्! इस प्रकार तुमसे मैंने भगवान् शिवके कृष्णदर्शन नामक अवतारका वर्णन किया। जो इस आख्यानको पढ़ता और सुनता है, उसे सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फल प्राप्त हो जाते हैं।

(अध्याय २९)

☆

भगवान् शिवके अवधूतेश्वरावतारकी कथा और उसकी महिमाका वर्णन

नन्दीश्वर कहते हैं—सनत्कुमार! अब तुम परमेश्वर शिवके अवधूतेश्वर नामक अवतारका वर्णन सुनो, जिसने इन्द्रके घमंडको चूर-चूर कर दिया था। पहलेकी बात है, इन्द्र सम्पूर्ण देवताओं तथा बृहस्पतिजीको साथ लेकर भगवान् शिवका दर्शन करनेके लिये कैलास पर्वतपर गये। उस समय बृहस्पति और इन्द्रके शुभागमनकी बात जानकर भगवान् शंकर उन दोनोंकी परीक्षा लेनेके लिये अवधूत बन गये। उनके शरीरपर कोई वस्त्र नहीं था। वे प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी होनेके कारण महाभयंकर जान पड़ते थे। उनकी आकृति बड़ी सुन्दर दिखायी देती थी। वे राह रोककर खड़े थे। बृहस्पति और इन्द्रने शिवके समीप जाते समय देखा, एक अद्भुत शरीरधारी पुरुष रास्तेके बीचमें खड़ा है। इन्द्रको अपने अधिकारपर बड़ा गर्व था। इसलिये वे यह न जान सके कि ये साक्षात् भगवान् शंकर हैं। उन्होंने मार्गमें खड़े हुए पुरुषसे पूछा—'तुम कौन हो? इस नग्न अवधूतवेशमें कहाँसे आये हो? तुम्हारा नाम क्या है? सब बातें ठीक-ठीक बताओ। देर न करो। भगवान् शिव अपने स्थानपर हैं या इस समय कहीं अन्यत्र गये हैं? मैं देवताओं तथा गुरुजीके साथ उन्हींके दर्शनके लिये जा रहा हूँ।'

इन्द्रके बारंबार पूछनेपर भी महान् कौतुक करनेवाले अहङ्कारहारी महायोगी त्रिलोकीनाथ शिव कुछ न बोले। चुप ही रहे। तब अपने ऐश्वर्यका घमंड रखनेवाले देवराज इन्द्रने रोषमें आकर उस जटाधारी पुरुषको फटकारा और इस प्रकार कहा।

इन्द्र बोले—अरे मूढ़! दुर्मते! तू बार-बार पूछनेपर भी उत्तर नहीं देता? अतः तुझे वज्रसे मारता हूँ। देखूँ कौन तेरी रक्षा करता है।

ऐसा कह उस दिगम्बर पुरुषकी ओर क्रोधपूर्वक देखते हुए इन्द्रने उसे मार डालनेके लिये वज्र उठाया। यह देख भगवान् शंकरने शीघ्र ही उस वज्रका स्तम्भन कर दिया। उनकी बाँह अकड़ गयी। इसलिये वे वज्रका प्रहार न कर सके। तदनन्तर वह पुरुष तत्काल ही क्रोधके कारण तेजसे प्रज्वलित हो उठा, मानो इन्द्रको जलाये देता हो। भुजाओंके स्तम्भित हो जानेके कारण शचीवल्लभ इन्द्र क्रोधसे उस सर्पकी भाँति जलने लगे, जिसका पराक्रम मन्त्रके बलसे अवरुद्ध हो गया हो। बृहस्पतिने उस पुरुषको अपने तेजसे प्रज्वलित होता देख तत्काल ही यह समझ लिया कि ये साक्षात् भगवान् हर हैं। फिर तो वे हाथ जोड़ प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे। स्तुतिके पश्चात् उन्होंने इन्द्रको

उनके चरणोंमें गिरा दिया और कहा—'दीनानाथ महादेव! यह इन्द्र आपके चरणोंमें पड़ा है। आप इसका और मेरा उद्धार करें। हम दोनोंपर क्रोध नहीं, प्रेम करें। महादेव! शरणागत इन्द्रकी रक्षा कीजिये। आपके ललाटसे प्रकट हुई यह आग इन्हें जलानेके लिये आ रही है।'

बृहस्पतिकी यह बात सुनकर अवधूत-वेषधारी करुणासिन्धु शिवने हँसते हुए कहा—'अपने नेत्रसे रोषवश बाहर निकली हुई अग्निको मैं पुनः कैसे धारण कर सकता हूँ। क्या सर्प अपनी छोड़ी हुई केंचुलको फिर ग्रहण करता है?'

बृहस्पति बोले—देव! भगवन्! भक्त सदा ही कृपाके पात्र होते हैं। आप अपने भक्तवत्सल नामको चरितार्थ कीजिये और इस भयंकर तेजको कहीं अन्यत्र डाल दीजिये।

रुद्रने कहा—देवगुरो! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। इसलिये उत्तम वर देता हूँ। इन्द्रको जीवनदान देनेके कारण आजसे तुम्हारा एक नाम जीव भी होगा। मेरे ललाटवर्ती नेत्रसे जो यह आग प्रकट हुई है, इसे देवता नहीं सह सकते। अतः इसको मैं बहुत दूर छोड़ूँगा, जिससे यह इन्द्रको पीड़ा न दे सके।

ऐसा कहकर अपने तेजःस्वरूप उस अद्भुत अग्निको हाथमें लेकर भगवान् शिवने क्षार समुद्रमें फेंक दिया। वहाँ फेंके जाते ही भगवान् शिवका वह तेज तत्काल एक बालकके रूपमें परिणत हो गया, जो सिन्धुपुत्र जलन्धर नामसे विख्यात हुआ। फिर देवताओंकी प्रार्थनासे भगवान् शिवने ही असुरोंके स्वामी जलन्धरका वध किया था। अवधूतरूपसे ऐसी सुन्दर लीला करके लोककल्याणकारी शंकर वहाँसे अन्तर्धान हो गये। फिर सब देवता अत्यन्त निर्भय एवं सुखी हुए। इन्द्र और बृहस्पति भी उस भयसे मुक्त हो उत्तम सुखके भागी हुए। जिसके लिये उनका आना हुआ था, वह भगवान् शिवका दर्शन पाकर कृतार्थ हुए। इन्द्र और बृहस्पति प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थानको चले गये। सनत्कुमार! इस प्रकार मैंने तुमसे परमेश्वर शिवके अवधूतेश्वर नामक अवतारका वर्णन किया है, जो दुष्टोंको दण्ड एवं भक्तोंको परम आनन्द प्रदान करनेवाला है। यह दिव्य आख्यान पापका निवारण करके यश, स्वर्ग, भोग, मोक्ष तथा सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति करानेवाला है। जो प्रतिदिन एकाग्रचित्त हो इसे सुनता या सुनाता है, वह इह लोकमें सम्पूर्ण सुखोंका उपभोग करके अन्तमें शिवकी गति प्राप्त कर लेता है। (अध्याय ३०)

☆

भगवान् शिवके भिक्षुवर्यावतारकी कथा, राजकुमार और द्विजकुमारपर कृपा

नन्दीश्वर कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ ! अब तुम भगवान् शम्भुके नारी-संदेहभञ्जक भिक्षु-अवतारका वर्णन सुनो, जिसे उन्होंने अपने भक्तपर दया करके ग्रहण किया था। विदर्भ देशमें सत्यरथ नामसे प्रसिद्ध एक राजा थे, जो धर्ममें तत्पर, सत्यशील और बड़े-बड़े शिवभक्तोंसे प्रेम करनेवाले थे। धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन करते हुए उनका बहुत-सा समय सुखपूर्वक बीत गया। तदनन्तर किसी समय शाल्वदेशके राजाओंने उस राजाकी राजधानीपर आक्रमण करके उसे चारों ओरसे घेर लिया। बलोन्मत्त शाल्वदेशीय क्षत्रियोंके साथ, जिनके पास बहुत बड़ी सेना थी, राजा सत्यरथका बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। शत्रुओंके साथ दारुण युद्ध करके उनकी बड़ी भारी सेना नष्ट हो गयी। फिर दैवयोगसे राजा भी शाल्वोंके हाथसे मारे गये। उन नरेशके मारे जानेपर मरनेसे बचे हुए सैनिक मन्त्रियोंसहित भयसे विह्वल हो भाग खड़े हुए। मुने ! उस समय विदर्भराज सत्यरथकी महारानी शत्रुओंसे घिरी होनेपर भी कोई प्रयत्न करके रातके समय अपने नगरसे बाहर निकल गयीं। वे गर्भवती थीं; अतः शोकसे संतप्त हो भगवान् शंकरके चरणारविन्दोंका चिन्तन करती हुई वे धीरे-धीरे पूर्वदिशाकी ओर बहुत दूर चली गयीं। सबेरा होनेपर रानीने भगवान् शंकरकी दयासे एक निर्मल सरोवर देखा। उस समयतक वे बहुत दूरका रास्ता तय कर चुकी थीं। सरोवरके तटपर आकर वे सुकुमारी रानी एक छायादार वृक्षके नीचे बैठ गयीं। भाग्यवश उसी निर्जन स्थानमें वृक्षके नीचे ही रानीने उत्तम गुणोंसे युक्त शुभ मुहूर्तमें एक दिव्य बालकको जन्म दिया, जो सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न था। दैववश उस बालककी जननी महारानीको बड़े जोरकी प्यास लगी। तब वे पानी पीनेके लिये उस सरोवरमें उतरीं। इतनेमें ही एक बड़े भारी ग्राहने आकर रानीको अपना ग्रास बना लिया। वह बालक पैदा होते ही माता-पितासे हीन हो गया और भूख-प्याससे पीड़ित हो उस तालाबके किनारे जोर-जोरसे रोने लगा। इतनेमें ही उसपर कृपा करके भगवान् महेश्वर वहाँ आ गये और उस शिशुकी रक्षा करने लगे। उन्हींकी प्रेरणासे एक ब्राह्मणी अकस्मात् वहाँ आ गयी। वह विधवा थी, घर-घर भीख माँगकर जीवन-निर्वाह करती थी और अपने एक वर्षके बालकको गोदमें लिये हुए उस तालाबके तटपर पहुँची थी। उसने एक अनाथ शिशुको वहाँ क्रन्दन करते देखा। निर्जन वनमें उस बालकको देखकर ब्राह्मणीको बड़ा विस्मय हुआ और वह मन-ही-मन विचार करने लगी— 'अहो ! यह मुझे इस समय बड़े आश्चर्यकी बात दिखायी देती है कि यह नवजात शिशु, जिसकी नाल भी अभीतक नहीं कटी है, पृथ्वीपर पड़ा हुआ है। इसकी माँ भी नहीं है। पिता आदि दूसरे कोई सहायक भी यहाँ नहीं दिखायी देते। क्या कारण हो गया ? न जाने यह किसका पुत्र है ? इसे जाननेवाला यहाँ कोई भी नहीं है, जिससे इसके जन्मके विषयमें पूछूँ। इसे देखकर मेरे हृदयमें करुणा उत्पन्न हो गयी है। मैं इस बालकका अपने औरस पुत्रकी भाँति पालन-पोषण करना चाहती हूँ। परंतु इसके कुल और जन्म आदिका ज्ञान न होनेके

कारण इसे छूनेका साहस नहीं होता।'

ब्राह्मणी जब इस प्रकार विचार कर रही थी, उस समय भक्तवत्सल भगवान् शंकरने बड़ी कृपा की। बड़ी-बड़ी लीलाएँ करनेवाले महेश्वर एक संन्यासीका रूप धारण करके सहसा वहाँ आ पहुँचे, जहाँ वह ब्राह्मणी संदेहमें पड़ी हुई थी और यथार्थ बातको जानना चाहती थी। श्रेष्ठ भिक्षुका रूप धारण करके आये हुए करुणानिधान शिवने उससे हँसकर कहा—'ब्राह्मणी! अपने चित्तमें संदेह और खेदको स्थान न दो। यह बालक परम पवित्र है। तुम इसे अपना ही पुत्र समझो और प्रेमपूर्वक इसका पालन करो।'

ब्राह्मणी बोली—प्रभो! आप मेरे भाग्यसे ही यहाँ पधारे हैं। इसमें संदेह नहीं कि मैं आपकी आज्ञासे इस बालकका अपने पुत्रकी ही भाँति पालन-पोषण करूँगी; तथापि मैं विशेषरूपसे यह जानना चाहती हूँ कि वास्तवमें यह कौन है, किसका पुत्र है, और आप कौन हैं, जो इस समय यहाँ पधारे हैं। भिक्षुवर! मेरे मनमें बार-बार यह बात आती है कि आप करुणासिन्धु शिव ही हैं और यह बालक पूर्वजन्ममें आपका भक्त रहा है। किसी कर्मदोषसे यह इस दुरवस्थामें पड़ गया है। इसे भोगकर यह पुनः आपकी कृपासे परम कल्याणका भागी होगा। मैं भी आपकी मायासे ही मोहित हो मार्ग भूलकर यहाँ आ गयी हूँ। आपने ही इसके पालनके लिये मुझे यहाँ भेजा है।

भिक्षुप्रवर शिवने कहा—ब्राह्मणी! सुनो, यह बालक शिवभक्त विदर्भराज सत्यरथका पुत्र है। सत्यरथको शाल्वदेशीय क्षत्रियोंने युद्धमें मार डाला है। उनकी पत्नी अत्यन्त व्यग्र हो रातमें शीघ्रतापूर्वक अपने महलसे बाहर भाग आयीं। उन्होंने यहाँ आकर इस बालकको जन्म दिया। सबेरा होनेपर वे प्याससे पीड़ित हो सरोवरमें उतरीं। उसी समय दैववश एक ग्राहने आकर उन्हें अपना आहार बना लिया।

ब्राह्मणीने पूछा—भिक्षुदेव! क्या कारण है कि इसके पिता राजा सत्यरथ श्रेष्ठ भोगोंके उपभोगके समय बीचमें ही शाल्वदेशीय शत्रुओंद्वारा मार डाले गये। किस कारणसे इस शिशुकी माताको ग्राहने खा लिया? और यह शिशु जो जन्मसे ही अनाथ और बन्धुहीन हो गया, इसका क्या कारण है? मेरा अपना पुत्र भी अत्यन्त दरिद्र एवं भिक्षुक क्यों हुआ तथा मेरे इन दोनों पुत्रोंको भविष्यमें कैसे सुख प्राप्त होगा?

भिक्षुवर्य शिवने कहा—इस राजकुमारके पिता विदर्भराज पूर्वजन्ममें पाण्ड्यदेशके श्रेष्ठ राजा थे। वे सब धर्मोंके ज्ञाता थे और सम्पूर्ण पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन करते थे। एक दिन प्रदोषकालमें राजा भगवान् शंकरका पूजन कर रहे थे और बड़ी भक्तिसे त्रिलोकीनाथ महादेवजीकी आराधनामें संलग्न थे। उसी समय नगरमें सब ओर बड़ा भारी कोलाहल मचा। उस उत्कट शब्दको सुनकर राजाने बीचमें ही भगवान् शंकरकी पूजा छोड़ दी और नगरमें क्षोभ फैलनेकी आशङ्कासे राजभवनसे बाहर निकल गये। इसी समय राजाका महाबली मन्त्री शत्रुको पकड़कर उनके समीप ले आया। वह शत्रु पाण्ड्यराजका ही सामन्त था। उसे देखकर राजाने क्रोधपूर्वक उसका मस्तक कटवा दिया। शिवपूजा छोड़कर

नियमको समाप्त किये बिना ही राजाने रातमें भोजन भी कर लिया। इसी प्रकार राजकुमार भी प्रदोषकालमें शिवजीकी पूजा किये बिना ही भोजन करके सो गया। वही राजा दूसरे जन्ममें विदर्भराज हुआ था। शिवजीकी पूजामें विघ्न होनेके कारण शत्रुओंने उसको सुख-भोगके बीचमें ही मार डाला। पूर्वजन्ममें जो उसका पुत्र था, वही इस जन्ममें भी हुआ है। शिवजीकी पूजाका उल्लङ्घन करनेके कारण यह दरिद्रताको प्राप्त हुआ है। इसकी माताने पूर्वजन्ममें छलसे अपनी सौतको मार डाला था। उस महान् पापके कारण ही वह इस जन्ममें ग्राहके द्वारा मारी गयी। ब्राह्मणी! यह तुम्हारा पुत्र पूर्वजन्ममें उत्तम ब्राह्मण था। इसने सारी आयु केवल दान लेनेमें बितायी है, यज्ञ आदि सत्कर्म नहीं किये हैं। इसीलिये यह दरिद्रताको प्राप्त हुआ है। उस दोषका निवारण करनेके लिये अब तुम भगवान् शंकरकी शरणमें जाओ। ये दोनों बालक यज्ञोपवीत-संस्कारके पश्चात् भगवान् शिवकी आराधना करें। भगवान् शिव इनका कल्याण करेंगे।

इस प्रकार ब्राह्मणीको उपदेश देकर भिक्षु (श्रेष्ठ संन्यासी) का शरीर धारण करनेवाले भक्तवत्सल शिवने उसे अपने उत्तम स्वरूपका दर्शन कराया। उन्हें साक्षात् शिव जानकर ब्राह्मणपत्नीने प्रणाम किया और प्रेमसे गद्गदवाणीद्वारा उनकी स्तुति की। तत्पश्चात् भगवान् शिव वहीं अन्तर्धान हो गये। उनके चले जानेपर ब्राह्मणी उस बालकको लेकर अपने पुत्रके साथ घरको चली गयी। एकचक्रा नामके सुन्दर ग्राममें उसने घर बना रखा था। वह उत्तम अन्नसे अपने बेटे तथा राजकुमारका भी पालन-

पोषण करने लगी। यथासमय ब्राह्मणीने उन दोनोंका यज्ञोपवीत संस्कार कर दिया। वे दोनों शिवकी पूजामें तत्पर रहते हुए घरपर ही बड़े हुए। शाण्डिल्य मुनिके उपदेशसे नियमपरायण हो वे दोनों शुभ व्रत रखकर प्रदोषकालमें शंकरजीकी पूजा करते थे। एक दिन द्विजकुमार राजकुमारको साथ लिये बिना ही नदीमें स्नान करनेके लिये गया। वहाँ उसे निधिसे भरा हुआ एक सुन्दर कलश मिल गया। इस प्रकार भगवान् शंकरकी पूजा करते हुए उन दोनों कुमारोंका उसी घरमें एक वर्ष व्यतीत हो गया। तदनन्तर एक दिन राजकुमार उस ब्राह्मण-कुमारके साथ वनमें गया। वहाँ अकस्मात् एक गन्धर्वकन्या आ गयी। उसके पिताने वह कन्या राजकुमारको दे दी। गन्धर्व-कन्यासे विवाह करके राजकुमार निष्कण्टक राज्य भोगने लगे। जिस ब्राह्मणपत्नीने पहले अपने पुत्रकी भाँति उसका पालन-पोषण किया था, वही उस समय राजमाता हुई और वह ब्राह्मणकुमार

उसका भाई हुआ। राजाका नाम धर्मगुप्त था। इस प्रकार देवेश्वर शिवकी आराधना करके राजा धर्मगुप्त अपनी उस रानीके साथ विदर्भदेशमें राजोचित सुखका उपभोग करने लगा। यह मैंने तुमसे शिवके भिक्षुवर्य अवतारका वर्णन किया है, जिन्होंने राजा धर्मगुप्तको बाल्यकालमें सुख प्रदान किया था। यह पवित्र आख्यान पापहारी, परमपावन, चारों पुरुषार्थोंका साधक तथा सम्पूर्ण अभीष्टको देनेवाला है। जो प्रतिदिन एकाग्रचित्त होकर इसे सुनता या सुनाता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करके अन्तमें भगवान् शिवके धाममें जाता है। (अध्याय ३१)

शिवके सुरेश्वरावतारकी कथा, उपमन्युकी तपस्या और उन्हें उत्तम वरकी प्राप्ति

नन्दीश्वर कहते हैं—सनत्कुमारजी! अब मैं परमात्मा शिवके सुरेश्वरावतारका वर्णन करूँगा, जिन्होंने धौम्यके बड़े भाई उपमन्युका हितसाधन किया था। उपमन्यु व्याघ्रपाद मुनिके पुत्र थे। उन्होंने पूर्वजन्ममें ही सिद्धि प्राप्त कर ली थी और वर्तमान जन्ममें मुनिकुमारके रूपमें प्रकट हुए थे। वे शैशवावस्थासे ही माताके साथ मामाके घरमें रहते थे और दैववश दरिद्र थे। एक दिन उन्हें बहुत कम दूध पीनेको मिला। इसलिये अपनी मातासे वे बारंबार दूध माँगने लगे। उनकी तपस्विनी माताने घरके भीतर जाकर एक उपाय किया। उञ्छवृत्तिसे लाये हुए कुछ बीजोंको सिलपर पीसा और उन्हें पानीमें घोलकर कृत्रिम दूध तैयार किया। फिर बेटेको पुचकारकर वह उसे पीनेको दिया। माँके दिये हुए उस नकली दूधको पीकर बालक उपमन्यु बोले—'यह तो दूध नहीं है।' इतना कहकर वे फिर रोने लगे। बेटेका रोना-धोना सुनकर माँको बड़ा दुःख हुआ। अपने हाथसे उपमन्युकी दोनों आँखें पोंछकर उनकी लक्ष्मी-जैसी माताने कहा—'बेटा! हमलोग सदा वनमें निवास करते हैं। हमें यहाँ दूध कहाँसे मिल सकता है। भगवान् शिवकी कृपाके बिना किसीको दूध नहीं मिलता। वत्स! पूर्वजन्ममें भगवान् शिवके लिये जो कुछ किया गया है, वर्तमान जन्ममें वही मिलता है।'

माताकी यह बात सुनकर उपमन्युने भगवान् शिवकी आराधना करनेका निश्चय किया। वे तपस्याके लिये हिमालय पर्वतपर गये और वहाँ वायु पीकर रहने लगे। उन्होंने आठ ईंटोंका एक मन्दिर बनाया और उसके भीतर मिट्टीके शिवलिङ्गकी स्थापना करके उसमें माता पार्वतीसहित शिवका आवाहन किया। तत्पश्चात् जंगलके पत्र-पुष्प आदि ले आकर भक्तिभावसे पञ्चाक्षर मन्त्रके उच्चारणपूर्वक साम्ब शिवकी पूजा करने लगे। माता पार्वती और शिवका ध्यान करके उनकी पूजा करनेके पश्चात् वे पञ्चाक्षर मन्त्रका जप किया करते थे। इस तरह दीर्घकालतक उन्होंने बड़ी भारी तपस्या की।

मुने! बालक उपमन्युकी तपस्यासे चराचर प्राणियोंसहित त्रिभुवन संतप्त हो उठा। तब देवताओंकी प्रार्थनासे उपमन्युके

भक्तिभावकी परीक्षा लेनेके लिये भगवान् शंकर उनके समीप पधारे। उस समय शिवने देवराज इन्द्रका, पार्वतीने शचीका, नन्दीश्वर वृषभने ऐरावत हाथीका तथा शिवके गणोंने सम्पूर्ण देवताओंका रूप धारण कर लिया। निकट आनेपर सुरेश्वर-रूपधारी शिवने बालक उपमन्युको वर माँगनेके लिये कहा। उपमन्युने पहले तो शिवभक्ति माँगी, फिर अपनेको इन्द्र बताकर जब उन्होंने शिवकी निन्दा की, तब उस बालकने भगवान् शिवके अतिरिक्त दूसरे किसीसे कुछ भी लेना अस्वीकार कर दिया। वे इन्द्रको मारकर स्वयं भी मर जानेको उद्यत हो गये। उन्होंने जो अघोरास्त्र चलाया, उसे नन्दीने पकड़ लिया और उन्होंने अपनेको जलानेके लिये जो अग्निकी धारणा की, उसे भगवान् शिवने शान्त कर दिया। फिर वे सब-के-सब अपने यथार्थ स्वरूपमें प्रकट हो गये। शिवने उपमन्युको अपना पुत्र माना और उनका मस्तक सूँघकर कहा—'वत्स! मैं तुम्हारा पिता और ये पार्वतीदेवी तुम्हारी माता हैं। तुम्हें आजसे सनातन-कुमारत्व प्राप्त होगा। मैं तुम्हारे लिये दूध, दही और मधुके सहस्रों समुद्र देता हूँ। भक्ष्य-भोज्य आदि पदार्थोंके भी समुद्र तुम्हारे लिये सुलभ होंगे। मैं तुम्हें अमरत्व तथा अपने गणोंका आधिपत्य प्रदान करता हूँ।' ऐसा कहकर शम्भुने उपमन्युको बहुत-से दिव्य वर दिये। पाशुपत-व्रत, पाशुपत-ज्ञान तथा व्रतयोगका उपदेश किया। प्रवचनकी शक्ति दी और अपना परम पद अर्पित किया। फिर दोनों हाथोंसे उपमन्युको हृदयसे लगाकर उनका मस्तक सूँघा और देवी पार्वतीको सौंपते हुए कहा—'यह तुम्हारा बेटा है।' पार्वतीने भी बड़े प्यारसे उनके मस्तकपर अपना करकमल रखा और उन्हें अक्षय कुमार-पद प्रदान किया। शिवने संतुष्ट होकर उनके लिये पिण्डीभूत एवं अविनाशी साकार क्षीर-सागर प्रस्तुत कर दिया। साथ ही योगसम्बन्धी ऐश्वर्य, नित्य संतोष, अक्षय ब्रह्मविद्या तथा उत्तम समृद्धि प्रदान की। उनके कुल और गोत्रके अक्षय होनेका वरदान दिया और यह भी कहा कि मैं तुम्हारे इस आश्रमपर नित्य निवास करूँगा।

इतना कहकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये। उपमन्यु वर पाकर प्रसन्नतापूर्वक घर आये। उन्होंने मातासे सब बातें बतायीं। सुनकर माताको बड़ा हर्ष हुआ। उपमन्यु सबके पूजनीय और अधिक सुखी हो गये। तात! इस प्रकार मैंने तुमसे परमेश्वर शिवके सुरेश्वरावतारका वर्णन किया है। यह अवतार सत्पुरुषोंको सदा ही सुख देनेवाला है। सुरेश्वरावतारकी यह कथा पापको दूर करनेवाली तथा सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाली है। जो इसे भक्तिपूर्वक सुनता या सुनाता है, वह सम्पूर्ण सुखोंको भोगकर अन्तमें भगवान् शिवको प्राप्त होता है।

(अध्याय ३२)

☆

शिवजीके किरातावतारके प्रसंगमें श्रीकृष्णद्वारा द्वैतवनमें दुर्वासाके शापसे पाण्डवोंकी रक्षा, व्यासजीका अर्जुनको शक्रविद्या और पार्थिवपूजनकी विधि बताकर तपके लिये सम्मति देना, अर्जुनका इन्द्रकील पर्वतपर तप, इन्द्रका आगमन और अर्जुनको वरदान, अर्जुनका शिवजीके उद्देश्यसे पुनः तपमें प्रवृत्त होना

तदनन्तर पार्वतीके विवाहप्रसङ्गमें हुए जटिल, नर्तक तथा द्विज अवतारोंकी, फिर अश्वत्थामा-अवतारकी बात कहकर नन्दीश्वरजी आगे कहते हैं—बुद्धिमान् सनत्कुमारजी ! अब तुम पिनाकधारी भगवान् शिवके किरात नामक अवतारका वर्णन सुनो। उस अवतारमें उन्होंने मूक नामक दैत्यका वध और प्रसन्न होकर अर्जुनको वर प्रदान किया था। जब सुयोधनने महाबली पाण्डवोंको (जूएमें) जीत लिया, तब वे सती-साध्वी द्रौपदीके साथ द्वैतवनमें चले आये। वहीं वे पाण्डव सूर्यद्वारा दी हुई बटलोईका आश्रय लेकर सुखपूर्वक अपना समय बिताने लगे। प्रियवर ! उसी समय सुयोधनने आदरपूर्वक मुनिवर दुर्वासाको छल करनेके प्रयोजनसे पाण्डवोंके निकट जानेके लिये प्रेरित किया। तब महर्षि दुर्वासा अपने दस हजार शिष्योंके साथ आनन्दपूर्वक वहाँ गये और पाण्डवोंसे मनोऽनुकूल भोजनकी याचना की। तब उन सभी पाण्डवोंने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके दुर्वासा आदि तपस्वी मुनियोंको स्नान करनेके लिये भेजा। मुनीश्वर ! इधर अन्नाभावके कारण वे सभी पाण्डव बड़े संकटमें पड़ गये और मन-ही-मन प्राण त्याग देनेका विचार करने लगे। तब द्रौपदीने श्रीकृष्णका स्मरण किया। वे तत्काल ही वहाँ आ पहुँचे और शाक (के पत्ते) का भोग लगाकर उन सभी तपस्वियोंको तृप्त कर दिया। फिर तो महर्षि दुर्वासा अपने शिष्योंको तृप्त हुआ जानकर वहाँसे चलते बने। इस प्रकार श्रीकृष्णकी कृपासे उस समय पाण्डव संकटसे मुक्त हुए।

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंको शिवजीकी आराधना करनेकी सम्मति दी। फिर व्यासजीने भी आकर उन्हें शंकरके समाराधनका आदेश देते हुए कहा—'शिवजी सम्पूर्ण दुःखोंका विनाश करनेवाले हैं। वे भक्ति करनेसे थोड़े ही समयमें प्रसन्न हो जाते हैं। इसलिये सभी लोगोंको शंकरजीकी सेवा करनी चाहिये। वे महेश्वर प्रसन्न होनेपर भक्तोंकी सारी अभिलाषाएँ पूर्ण कर देते हैं, यहाँतक कि वे इस लोकमें सारा भोग और परलोकमें मोक्षतक दे डालते हैं—यह बिलकुल निश्चित बात है। इसलिये भुक्ति-मुक्तिरूपी फलकी कामनावाले मनुष्योंको सदा शम्भुकी सेवा करनी चाहिये; क्योंकि भगवान् शंकर साक्षात् परम पुरुष, दुष्टोंके संहारक और सत्पुरुषोंके आश्रयस्वरूप हैं। अब अर्जुन पहले दृढ़तापूर्वक शक्रविद्याका जप करें। तब इन्द्र पहले परीक्षा लेंगे, पीछे संतुष्ट हो जायँगे। प्रसन्न होनेपर वे सर्वदा विघ्नोंका नाश करते रहेंगे और फिर शिवजीका श्रेष्ठ मन्त्र प्रदान करेंगे।'

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! इतना कहकर व्यासजी अर्जुनको बुलाकर उन्हें शक्रविद्याका उपदेश देनेको उद्यत हुए, तब तीक्ष्णबुद्धि अर्जुनने स्नान करके पूर्वमुख

बैठकर उस विद्याको ग्रहण कर लिया। फिर उदारबुद्धि मुनिवर व्यासजीने अर्जुनको पार्थिवलिङ्गके पूजनका विधान बतलाकर उनसे कहा।

व्यासजी बोले—'पार्थ ! अब तुम यहाँसे परम रमणीय इन्द्रकील पर्वतपर जाओ और वहाँ जाह्नवीके तटपर बैठकर सम्यक्‌रूपसे तपस्या करो। यह विद्या अदृश्यरूपसे सदा तुम्हारा हित करती रहेगी।' अर्जुनको ऐसा आशीर्वाद देकर व्यासजी पाण्डवोंसे कहने लगे—'नृपश्रेष्ठो ! तुम सब लोग धर्मपर दृढ़ बने रहो, इससे तुम्हें सर्वथा श्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त होगी; इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।'

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! इस प्रकार मुनिवर व्यास उन पाण्डवोंको आशीर्वाद दे तथा शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करके तुरंत ही अन्तर्धान हो गये। उधर शिव-मन्त्रके धारण करनेसे अर्जुनमें भी अनुपम तेज व्याप्त हो गया। वे उस समय उद्दीप्त हो उठे। अर्जुनको देखकर सभी पाण्डवोंको निश्चय हो गया कि अवश्य ही हमारी विजय होगी; क्योंकि अर्जुनमें विपुल तेज उत्पन्न हो गया है। (तब उन्होंने अर्जुनसे कहा—) 'व्यासजीके कथनसे ऐसा प्रतीत होता है कि इस कार्यको केवल तुम्हीं कर सकते हो, यह दूसरेके द्वारा कभी भी सिद्ध नहीं हो सकता; अतः जाओ और हमलोगोंका जीवन सफल बनाओ।' तब अर्जुनने चारों भाइयों तथा द्रौपदीसे अनुमति माँगी। उन लोगोंको अर्जुनके बिछोहका दुःख तो हुआ पर कार्यकी महत्ता देखकर सभीने अनुमति दे दी। फिर तो अर्जुन मन-ही-मन प्रसन्न होते हुए उस उत्तम पर्वत (इन्द्रकील) को चले गये। वहाँ पहुँचकर वे गङ्गाजीके समीप एक मनोरम स्थानपर, जो स्वर्गसे भी उत्तम और अशोकवनसे सुशोभित था, ठहर गये। वहाँ उन्होंने स्नान करके गुरुवरको नमस्कार किया और जैसा उपदेश मिला था, उसीके अनुसार स्वयं ही अपना वेष बनाया। फिर पहले मन-ही-मन इन्द्रियोंका अपकर्ष करके वे आसन लगाकर बैठ गये। तत्पश्चात् समसूत्रवाले सुन्दर पार्थिव (शिवलिङ्ग)का निर्माण करके उनके आगे अनुपम तेजोराशि शंकरका ध्यान करने लगे। वे तीनों समय स्नान करके अनेक प्रकारसे बारंबार शिवजीकी पूजा करते हुए उपासनामें तत्पर हो गये। तब अर्जुनके शिरोभागसे तेजकी ज्वाला निकलने लगी। उसे देखकर इन्द्रके

गुप्तचर भयभीत हो गये। वे सोचने लगे—यह यहाँ कब आ गया ? पुनः उन्होंने ऐसा विचार किया कि यह घटना इन्द्रको बतला देनी चाहिये। ऐसा सोचकर वे तत्काल ही इन्द्रके समीप गये।

गुप्तचरोंने कहा—देवेश ! वनमें एक पुरुष तप कर रहा है; परंतु हमें पता नहीं कि वह देवता है, ऋषि है, सूर्य है अथवा अग्नि है। उसीके तेजसे संतप्त होकर हम आपके संनिकट आये हैं। हमने उसका चरित्र भी आपसे निवेदित कर दिया। अब आप जैसा उचित समझें, वैसा करें।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! उन गुप्तचरोंके यों कहनेपर इन्द्रको अपने पुत्र अर्जुनका सारा मनोरथ ज्ञात हो गया। तब वे पर्वतरक्षकोंको विदा करके स्वयं वहाँ जानेका विचार करने लगे। विप्रवर ! इन्द्र अर्जुनकी परीक्षा करनेके लिये वृद्ध ब्रह्मचारी ब्राह्मणका वेष बनाकर वहाँ पहुँचे। उस समय उन्हें आया हुआ देखकर पाण्डुपुत्र अर्जुनने उनकी पूजा की और फिर उनकी स्तुति करके आगे खड़े हो पूछने लगे—'ब्रह्मन् ! बताइये, इस समय कहाँसे आपका शुभागमन हुआ है ?' इसपर ब्राह्मणवेषधारी इन्द्रने अर्जुनको ऐसे वचन कहे, जिससे वह तपसे डिग जाय; पर जब अर्जुनको दृढ़निश्चय देखा, तब अपने स्वरूपमें प्रकट होकर इन्द्रने अर्जुनको भगवान् शंकरका मन्त्र बताया और उसका जप करनेकी आज्ञा दी। तदनन्तर अपने अनुचरोंको सावधानीके साथ अर्जुनकी रक्षा करनेका आदेश देकर वे अर्जुनसे बोले—'भद्र ! तुम्हें कभी भी प्रमादपूर्वक राज्य नहीं करना चाहिये। परंतप ! यह विद्या तुम्हारे लिये श्रेयस्करी होगी। साधकको सर्वथा धैर्य धारण किये रहना चाहिये, रक्षक तो भगवान् शिव हैं ही। वे सम्पत्तियाँ और फल (मोक्ष) दोनों समानरूपसे देंगे। इसमें तनिक भी संशय नहीं है।'

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! इस प्रकार अर्जुनको वरदान देकर देवराज इन्द्र शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करते हुए अपने भवनको लौट गये। तब महावीर अर्जुनने भी सुरेश्वरको प्रणाम किया और फिर वे मनको वशमें करके इन्द्रके उपदेशानुसार शिवजीके उद्देश्यसे तपस्या करने लगे।

(अध्याय ३३—३८)

☆

किरातावतारके प्रसङ्गमें मूक नामक दैत्यका शूकर-रूप धारण करके अर्जुनके पास आना, शिवजीका किरातवेषमें प्रकट होना और अर्जुन तथा किरातवेषधारी शिवद्वारा उस दैत्यका वध

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! तदनन्तर अर्जुन व्यासजीके उपदेशानुसार विधिपूर्वक स्नान तथा न्यास आदि करके परम भक्तिके साथ शिवजीका ध्यान करने लगे। उस समय वे एक श्रेष्ठ मुनिकी भाँति एक ही पैरके बलपर खड़े हो सूर्यकी ओर एकाग्र दृष्टि करके खड़े-खड़े मन्त्र जप कर रहे थे। इस प्रकार वे परम प्रेमपूर्वक मन-ही-मन शिवजीका स्मरण करके शम्भुके सर्वोत्कृष्ट षडक्षर मन्त्रका जप करते हुए घोर तप करने लगे। उस तपस्याका ऐसा उत्कृष्ट तेज प्रकट हुआ, जिससे देवगण विस्मित हो गये। पुनः वे शिवजीके पास गये और समाहित चित्तसे बोले।

देवताओंने कहा—सर्वेश ! एक मनुष्य आपके लिये तपस्यामें निरत है। प्रभो ! वह व्यक्ति जो कुछ चाहता है, उसे आप दे क्यों नहीं देते ?

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! यों कहकर देवताओंने अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति की। फिर उनके चरणोंकी ओर दृष्टि लगाकर वे विनम्रभावसे खड़े हो गये। तब उदारबुद्धि एवं प्रसन्नात्मा महाप्रभु शिवजी उस वचनको सुनकर ठठाकर हँस पड़े और देवताओंसे इस प्रकार बोले।

शिवजीने कहा—देवताओ ! अब तुमलोग अपने स्थानको लौट जाओ। मैं सब तरहसे तुमलोगोंका कार्य सम्पन्न करूँगा। यह बिलकुल सत्य है, इसमें संदेहकी गुंजाइश नहीं है।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! शम्भुके उस वचनको सुनकर देवताओंको पूर्णतया निश्चय हो गया। तब वे सब अपने स्थानको लौट गये। इसी समय मूक नामक दैत्य शूकरका रूप धारण करके वहाँ आया। विप्रेन्द्र ! उसे उस समय मायावी दुरात्मा दुर्योधनने अर्जुनके पास भेजा था। वह जहाँ अर्जुन स्थित थे, उसी मार्गसे अत्यन्त वेगपूर्वक पर्वतशिखरोंको उखाड़ता, वृक्षोंको छिन्न-भिन्न करता तथा अनेक प्रकारके शब्द करता हुआ आया। तब अर्जुनकी भी दृष्टि उस मूक नामक असुरपर पड़ी, वे शिवजीके पादपद्मोंका स्मरण करके यों विचार करने लगे।

अर्जुनने (मन-ही-मन) कहा—'यह कौन है और कहाँसे आ रहा है ? यह तो क्रूरकर्मा दिखायी पड़ रहा है। निश्चय ही यह मेरा अनिष्ट करनेके लिये आ रहा है। इसमें तनिक भी संशय नहीं है; क्योंकि जिसका दर्शन होनेपर अपना मन प्रसन्न हो जाय, वह निश्चय ही अपना हितैषी है और जिसके दीखनेपर मन व्याकुल हो जाय, वह शत्रु ही है। आचारसे कुलका, शरीरसे भोजनका, वार्तालापसे शास्त्रज्ञानका और नेत्रसे स्नेहका परिचय मिलता है। आकारसे, चालढालसे, चेष्टासे, बोलनेसे तथा नेत्र और मुखके विकारसे मनके भीतरका भाव जाना जाता है। नेत्र चार प्रकारके कहे गये हैं—उज्ज्वल, सरस, तिरछे और लाल। विद्वानोंने इनका भाव भी पृथक्-पृथक् बतलाया है। नेत्र

मित्रका संयोग होनेपर उज्ज्वल, पुत्रदर्शनके समय सरस, कामिनीके प्राप्त होनेपर वक्र और शत्रुके दीख जानेपर लाल हो जाते हैं। (इस नियमके अनुसार) इसे देखते ही मेरी सारी इन्द्रियाँ कलुषित हो उठी हैं, अतः यह निस्संदेह शत्रु ही है और मार डालने योग्य है। इधर मेरे लिये गुरुजीकी आज्ञा भी ऐसी है कि राजन्! जो तुम्हें कष्ट देनेके लिये उद्यत हो, उसे तुम बिना किसी प्रकारका विचार किये अवश्य मार डालना तथा मैंने इसीलिये आयुध भी तो धारण कर रखा है।' यों विचारकर अर्जुन बाणका संधान करके वहीं डटकर खड़े हो गये।

इसी बीच भक्तवत्सल भगवान् शंकर अर्जुनकी रक्षा, उनकी भक्तिकी परीक्षा और उस दैत्यका नाश करनेके लिये शीघ्र ही वहाँ आ पहुँचे। उस समय उनके साथ गणोंका यूथ भी था और वे महान् अद्भुत सुशिक्षित भीलका रूप धारण किये हुए थे। उनकी काछ बँधी थी और उन्होंने वल्कलखण्डोंसे ईशानध्वज बाँध रखा था। उनके शरीरपर श्वेत धारियाँ चमक रही थीं, पीठपर बाणोंसे भरा हुआ तरकस बँधा था और वे स्वयं धनुष-बाण धारण किये हुए थे। उनका गण-यूथ भी वैसी ही साज-सज्जासे युक्त था। इस प्रकार शिव भिल्लराज बने हुए थे। वे सेनाध्यक्ष होकर तरह-तरहके शब्द करते हुए आगे बढ़े। इतनेमें सूअरकी गुर्राहटका शब्द दसों दिशाओंमें गूँज उठा। उस शब्दसे पर्वत आदि सभी जड पदार्थ झन्ना उठे। तब उस वनेचरके शब्दसे घबराकर अर्जुन सोचने लगे—'अहो! क्या ये भगवान् शिव तो नहीं हैं, जो यहाँ शुभ करनेके लिये पधारे हैं; क्योंकि मैंने पहलेसे ही ऐसा सुन रखा है। पुनः श्रीकृष्ण और व्यासजीने भी ऐसा ही कहा है तथा देवताओंने भी बारंबार स्मरण करके ऐसी ही घोषणा की है कि शिवजी कल्याणकर्ता और सुखदाता हैं। वे मुक्ति प्रदान करनेके कारण मुक्तिदाता कहे जाते हैं। उनका नामस्मरण करनेसे मनुष्योंका निश्चय ही कल्याण होता है। जो लोग सर्वभावसे उनका भजन करते हैं, उन्हें स्वप्नमें भी दुःखका दर्शन नहीं होता। यदि कदाचित् कुछ दुःख आ ही जाता है तो उसे कर्मजनित समझना चाहिये। सो भी बहुतकी आशङ्का होनेपर भी थोड़ा होता है। अथवा उसे विशेषरूपसे प्रारब्धका ही दोष मानना चाहिये। अथवा कभी-कभी भगवान् शंकर अपनी इच्छासे थोड़ा या अधिक दुःख भुगताकर फिर निस्संदेह उसे दूर कर देते हैं। वे विषको अमृत और अमृतको विष बना देते हैं। यों जैसी उनकी इच्छा होती है, वैसा ये करते हैं। भला, उन समर्थको कौन मना कर सकता है। अन्यान्य प्राचीन भक्तोंकी भी ऐसी ही धारणा थी, अतः भावी भक्तोंको सदा इसी विचारपर अपने मनको स्थिर रखना चाहिये। लक्ष्मी रहे अथवा चली जाय, मृत्यु आँखोंके सामने ही क्यों न उपस्थित हो जाय, लोग निन्दा करें अथवा प्रशंसा; परंतु शिवभक्तिसे दुःखोंका विनाश होता ही है। शंकर अपने भक्तोंको, चाहे वे पापी हों या पुण्यात्मा, सदा सुख देते हैं। यदि कभी वे परीक्षाके लिये भक्तको कष्टमें डाल देते हैं तो अन्तमें दयालुस्वभाव होनेके कारण वे ही उसके सुखदाता भी होते हैं। फिर तो वह भक्त उसी प्रकार निर्मल हो जाता है, जैसे आगमें तपाया हुआ सोना शुद्ध हो जाता है।

इसी तरहकी बातें मैंने पहले भी मुनियोंके मुखसे सुन रखी हैं; अतः मैं शिवजीका भजन करके उसीसे उत्तम सुख प्राप्त करूँगा।'

अर्जुन यों विचार कर ही रहे थे, तबतक बाणका लक्ष्यभूत वह सूअर वहाँ आ पहुँचा। उधर शिवजी भी उस सूअरके पीछे लगे हुए दीख पड़े। उस समय उन दोनोंके मध्यमें वह शूकर अद्भुत शिखर-सा दीख रहा था। उसकी बड़ी महिमा भी कही गयी है। तब भक्तवत्सल भगवान् शंकर अर्जुनकी रक्षाके लिये बड़े वेगसे आगे बढ़े। इसी समय उन दोनोंने उस शूकरपर बाण चलाया। शिवजीके बाणका लक्ष्य उसका पुच्छभाग था और अर्जुनने उसके मुखको अपना निशाना बनाया था। शिवजीका बाण उसके पुच्छभागसे प्रवेश करके मुखके रास्ते निकल गया और शीघ्र ही भूमिमें विलीन हो गया। तथा अर्जुनका बाण उसके पिछले भागसे निकलकर बगलमें ही गिर पड़ा। तब वह शूकर-रूपधारी दैत्य उसी क्षण मरकर भूतलपर गिर पड़ा। उस समय देवताओंको महान् हर्ष प्राप्त हुआ। उन्होंने पहले तो जय-जयकार करते हुए पुष्पोंकी वृष्टि की, फिर वे बारंबार नमस्कार करके स्तुति करने लगे। उस समय उन दोनोंने दैत्यके उस क्रूर रूपकी ओर

दृष्टिपात किया। उसे देखकर शिवजीका मन संतुष्ट हो गया और अर्जुनको महान् सुख प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् अर्जुन मन-ही-मन विशेषरूपसे सुखका अनुभव करते हुए कहने लगे—'अहो! यह श्रेष्ठ दैत्य परम अद्भुत रूप धारण करके मुझे मारनेके लिये ही आया था, परंतु शिवजीने ही मेरी रक्षा की है। निस्संदेह उन परमेश्वरने ही आज (इसे मारनेके लिये) मेरी बुद्धिको प्रेरित किया है।' ऐसा विचारकर अर्जुनने शिव-नामसंकीर्तन किया और फिर बारंबार उनके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी स्तुति की।

(अध्याय ३९)

☆

अर्जुन और शिवदूतका वार्तालाप, किरातवेषधारी शिवजीके साथ अर्जुनका युद्ध, पहचाननेपर अर्जुनद्वारा शिव-स्तुति, शिवजीका अर्जुनको वरदान देकर अन्तर्धान होना, अर्जुनका आश्रमपर लौटकर भाइयोंसे मिलना, श्रीकृष्णका अर्जुनसे मिलनेके लिये वहाँ पधारना

नन्दीश्वरजी कहते हैं—महाज्ञानी सनत्कुमारजी! अब परमात्मा शिवकी उस लीलाको श्रवण करो, जो भक्तवत्सलतासे युक्त तथा उनकी दृढ़तासे भरी हुई है। तदनन्तर

शिवजीने उस बाणको लानेके लिये तुरंत ही अपने अनुचरको भेजा। उधर अर्जुन भी उसी निमित्त वहाँ आये। इस प्रकार एक ही समयमें रुद्रानुचर तथा अर्जुन दोनों बाण उठानेके लिये वहाँ पहुँचे। तब अर्जुनने उसे डरा-धमकाकर अपना बाण उठा लिया। यह देखकर उस अनुचरने कहा—'ऋषिसत्तम ! आप क्यों इस बाणको ले रहे हैं ? यह हमारा सायक है, इसे छोड़ दीजिये।' भिल्लराजके उस अनुचरद्वारा यों कहे जानेपर मुनिश्रेष्ठ अर्जुनने शंकरजीका स्मरण किया और इस प्रकार कहा।

अर्जुन बोले—वनेचर ! तू बड़ा मूर्ख है। तू बिना समझे-बूझे क्या बक रहा है ? इस बाणको तो मैंने अभी-अभी छोड़ा है, फिर यह तेरा कैसे ? इसकी धारियों तथा पिच्छोंपर मेरा ही नाम अङ्कित है, फिर यह तेरा कैसे हो गया ? ठीक है, तेरा कुटिल-स्वभाव छूटना कठिन है।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! अर्जुनका यह कथन सुनकर भिल्लरूपी गणेश्वरको हँसी आ गयी। तब वह ऋषिरूपमें वर्तमान अर्जुनको यों उत्तर देते हुए बोला—'रे तापस ! सुन। जान पड़ता है, तू तपस्या नहीं कर रहा है, केवल तेरा वेष ही तपस्वीका है; क्योंकि सच्चा तपस्वी छल-कपट नहीं करता। भला, जो मनुष्य तपस्यामें निरत होगा, वह कैसे मिथ्या भाषण करेगा एवं कैसे छल करेगा। अरे तू मुझे अकेला मत समझ। तुझे ज्ञात होना चाहिये कि मैं एक सेनाका अधिपति हूँ। हमारे स्वामी बहुत-से वनचारी भीलोंके साथ वहाँ बैठे हैं। वे विग्रह तथा अनुग्रह करनेमें सर्वथा समर्थ हैं। यह बाण, जिसे तूने अभी उठा लिया है, उन्हींका है। यह बाण कभी तेरे पास टिक नहीं सकेगा। तापस ! तू क्यों अपनी तपस्याका फल नष्ट करना चाहता है ? मैंने तो ऐसा सुन रखा है कि चोरी करनेसे, छलपूर्वक किसीको कष्ट पहुँचानेसे, विस्मय करनेसे तथा सत्यका त्याग करनेसे प्राणीका तप क्षीण हो जाता है—यह बिलकुल सत्य है।* ऐसी दशामें तुझे अब तपका फल कैसे प्राप्त होगा ? उस बाणको ले लेनेसे तू तपसे च्युत तथा कृतघ्न हो जायगा; क्योंकि निश्चय ही यह मेरे स्वामीका बाण है और तेरी रक्षाके लिये ही उन्होंने इसे छोड़ा था। इस बाणसे तो उन्होंने शत्रुको मार ही डाला और फिर बाणको भी सुरक्षित रखा। तू तो महान् कृतघ्न तथा तपस्यामें अमङ्गल करनेवाला है। जब तू सत्य नहीं बोल रहा है, तब फिर इस तपसे सिद्धिकी अभिलाषा कैसे करता है ? अथवा यदि तुझे बाणसे ही प्रयोजन है तो मेरे स्वामीसे माँग ले। वे स्वयं इस प्रकारके बहुत-से बाण तुझे दे सकते हैं। मेरे स्वामी आज यहाँ वर्तमान हैं। तू उनसे क्यों नहीं याचना करता ? तू जो उपकारका परित्याग करके अपकार करना चाहता है तथा अभी-अभी कर रहा है, यह तेरे लिये उचित नहीं है। तू चपलता छोड़ दे।'

इसपर कुपित होकर अर्जुनने उससे कई बातें कहीं। दोनोंमें बड़ा विवाद हुआ। अन्तमें अर्जुनने कहा—'वनचारी भील ! तू

* चौर्याच्छलप्रदानाच्च विस्मयात्सत्यभञ्जनात्। तपसा क्षीयते सत्यमेतदेव मया श्रुतम्॥

(शि० पु० शतरुद्रसंहिता ४० । १३-१४)

मेरी सार बात सुन ले। जिस समय तेरा स्वामी आयेगा, उस समय मैं उसे उसका फल चखाऊँगा। तेरे साथ युद्ध करना तो मुझे शोभा नहीं देता, अतः मैं तेरे स्वामीके साथ ही लोहा लूँगा; क्योंकि सिंह और गीदड़का युद्ध उपहासास्पद ही माना जाता है। भील ! तूने मेरी बात तो सुन ही ली, अब तू मेरे महान् बलको भी देखेगा। जा, अपने स्वामीके पास लौट जा अथवा जैसी तेरी इच्छा हो, वैसा कर।'

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! अर्जुनके यों कहनेपर वह भील जहाँ शिवावतार सेनापति किरात विराजमान थे, वहाँ गया और उन भिल्लराजसे अर्जुनका सारा वचन विस्तारपूर्वक कह सुनाया। उसकी बात सुनकर उन किरातेश्वरको महान् हर्ष हुआ। तब भीलरूपधारी भगवान् शंकर अपनी सेनाके साथ वहाँ गये। उधर पाण्डुपुत्र अर्जुनने भी जब किरातकी उस सेनाको देखा, तब वे भी धनुषबाण ले सामने आकर डट गये। तदनन्तर किरातने पुनः उस दूतको भेजा और उसके द्वारा भरतवंशी महात्मा अर्जुनसे यों कहलवाया।

किरातने कहा—तपस्विन् ! तनिक इस सेनाकी ओर तो दृष्टिपात करो। अरे ! अब तुम बाण छोड़कर जल्दी भाग जाओ। क्यों तुम इस समय एक सामान्य कामके लिये प्राण गँवाना चाहते हो ? तुम्हारे भाई दुःखसे पीड़ित हैं, स्त्री तो उनसे भी बढ़कर दुःखी है। मेरा तो ऐसा विचार है कि ऐसा करनेसे पृथ्वी भी तुम्हारे हाथसे चली जायगी।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! जब अर्जुनकी सब तरहसे रक्षा करनेके लिये किरातरूपधारी परमेश्वर शम्भुने उनकी भक्तिकी दृढ़ताकी परीक्षाके निमित्त ऐसी बात कही, तब वह शिव-दूत उसी समय अर्जुनके पास पहुँचा और उसने यह सारा वृत्तान्त उनसे विस्तारपूर्वक कह सुनाया। उसकी बात सुनकर अर्जुनने उस समागत दूतसे पुनः कहा—'दूत ! तुम जाकर अपने सेनापतिसे कहो कि तुम्हारे कथनानुसार करनेसे सारी बातें विपरीत हो जायँगी। यदि मैं तुम्हें अपना बाण दे देता हूँ तो निस्संदेह मैं अपने कुलको दूषित करनेवाला सिद्ध होऊँगा। इसलिये भले ही मेरे भाई दुःखार्त हो जायँ तथा मेरी सारी विद्याएँ निष्फल हो जायँ, परंतु तुम आओ तो सही। मैंने ऐसा कभी नहीं सुना है कि कहीं सिंह गीदड़से डर गया हो। इसी प्रकार राजा (क्षत्रिय) कभी भी वनेचरसे भयभीत नहीं हो सकता।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! अर्जुनके यों कहनेपर वह दूत पुनः अपने स्वामीके पास लौट गया और उसने अर्जुनकी कही हुई सारी बातें उसके सामने विशेषरूपसे निवेदन कर दीं। उन्हें सुनकर किरातवेषधारी सेनानायक महादेवजी अपनी सेनाके साथ

अर्जुनके सम्मुख आये। उन्हें आया हुआ देखकर अर्जुनने शिवजीका ध्यान किया। फिर निकट जाकर उनके साथ अत्यन्त भीषण संग्राम छेड़ दिया। इस प्रकार गणोंसहित महादेवजीके साथ अर्जुनका घोर युद्ध हुआ। अन्तमें अर्जुनने शिवजीके चरणकमलका ध्यान किया। उनका ध्यान करनेसे अर्जुनका बल बढ़ गया। तब वे शंकरजीके दोनों पैर पकड़कर उन्हें घुमाने लगे। उस समय भक्तवत्सल महादेवजी हँस रहे थे। मुने! भक्तपराधीन होनेके कारण वे अर्जुनको अपनी दासता प्रदान करना चाहते थे, इसीलिये उन्होंने ऐसी लीला रची थी; अन्यथा ऐसा होना सर्वथा असम्भव था। तत्पश्चात् शंकरजीने भक्तपरवशताके कारण मुसकराकर वहीं अपना सौम्य एवं अद्भुत रूप सहसा प्रकट कर दिया। पुरुषोत्तम! शिवजीका जो स्वरूप वेदों, शास्त्रों तथा पुराणोंमें वर्णित है तथा व्यासजीने अर्जुनको ध्यान करनेके लिये जिस सर्वसिद्धिदाता रूपका उपदेश दिया था, शिवजीने वही रूप दिखाया। तब ध्यानद्वारा प्राप्त होनेवाले शिवजीके उस सुन्दर रूपको देखकर अर्जुनको महान् विस्मय हुआ। फिर वे लज्जित होकर स्वयं पश्चात्ताप करने लगे—'अहो! जिनको मैंने प्रमुखरूपसे वरण किया है, वे त्रिलोकीके अधीश्वर कल्याणकर्ता साक्षात् स्वयं शिव तो ये ही हैं। हाय! इस समय मैंने यह क्या कर डाला? अहो! भगवान् शिवकी माया बड़ी बलवती है। यह बड़े-बड़े मायावियोंको भी मोहमें डाल देती है (फिर मेरी तो बिसात ही क्या है)। उन्हीं प्रभुने अपने रूपको छिपाकर यह कौन-सी लीला रची है? मैं तो उनके द्वारा छला गया।' इस प्रकार अपनी बुद्धिसे भलीभाँति विचार करके अर्जुनने प्रेमपूर्वक हाथ जोड़ एवं मस्तक झुकाकर भगवान् शिवको प्रणाम किया, फिर खिन्नमनसे यों कहा।

अर्जुन बोले—देवाधिदेव महादेव! आप तो बड़े कृपालु तथा भक्तोंके कल्याणकर्ता हैं। सर्वेश! आपको मेरा अपराध क्षमा कर देना चाहिये। इस समय आपने अपने रूपको छिपाकर यह कौन-सा खेल किया है? आपने तो मुझे छल लिया। प्रभो! आप स्वामीके साथ युद्ध करनेवाले मुझको धिक्कार है!

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! इस प्रकार पाण्डुपुत्र अर्जुनको महान् पश्चात्ताप हुआ। तत्पश्चात् वे शीघ्र ही महाप्रभु शंकरजीके चरणोंमें लोट गये। यह देखकर भक्तवत्सल महेश्वरका चित्त प्रसन्न हो गया। तब वे अर्जुनको अनेकों प्रकारसे आश्वासन देकर यों बोले।

शंकरजीने कहा—पार्थ! तुम तो मेरे परम भक्त हो, अतः खेद न करो। यह तो मैंने आज तुम्हारी परीक्षा लेनेके लिये ऐसी लीला रची थी, इसलिये तुम शोक त्याग दो।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! यों कहकर भगवान् शिवने अपने दोनों हाथोंसे पकड़कर अर्जुनको उठा लिया और अपने तथा गणोंके समक्ष उनकी लाजका निवारण किया। फिर भक्तवत्सल भगवान् शंकर वीरोंमें मान्य पाण्डुपुत्र अर्जुनको सब तरहसे हर्ष प्रदान करते हुए प्रेमपूर्वक बोले।

शिवजीने कहा—पाण्डवोंमें श्रेष्ठ अर्जुन! मैं तुमपर परम प्रसन्न हूँ, अतः अब तुम वर माँगो। इस समय तुमने जो मुझपर

प्रहार एवं आघात किया है, उसे मैंने अपनी पूजा मान लिया है। साथ ही यह सब तो मैंने अपनी इच्छासे किया है। इसमें तुम्हारा अपराध ही क्या है। अतः तुम्हारी जो लालसा हो, वह माँग लो; क्योंकि मेरे पास कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जो तुम्हारे लिये अदेय हो। यह जो कुछ हुआ है, वह शत्रुओंमें तुम्हारे यश और राज्यकी स्थापनाके लिये अच्छा ही हुआ है। तुम्हें इसका दुःख नहीं मानना चाहिये। अब तुम अपनी सारी घबराहट छोड़ दो।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! भगवान् शंकरके यों कहनेपर अर्जुन भक्तिपूर्वक सावधानीसे खड़े होकर शंकरजीसे बोले।

अर्जुनने कहा—'शम्भो! आप तो बड़े उत्तम स्वामी हैं, आपको भक्त बहुत प्रिय हैं। देव! भला, मैं आपकी करुणाका क्या वर्णन कर सकता हूँ। सदाशिव! आप तो बड़े कृपालु हैं।' यों कहकर अर्जुनने महाप्रभु शंकरकी सद्भक्तियुक्त एवं वेदसम्मत स्तुति आरम्भ की।

अर्जुन बोले—आप देवाधिदेवको नमस्कार है। कैलासवासिन्! आपको प्रणाम है। सदाशिव! आपको अभिवादन है। पञ्चमुख परमेश्वर! आपको मैं सिर झुकाता हूँ। आप जटाधारी तथा तीन नेत्रोंसे विभूषित हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। आप प्रसन्नरूपवाले तथा सहस्रों मुखोंसे युक्त हैं, आपको प्रणाम है। नीलकण्ठ! आपको मेरा नमस्कार प्राप्त हो। मैं सद्योजातको अभिवादन करता हूँ। वामाङ्गमें गिरिजाको धारण करनेवाले वृषध्वज! आपको प्रणाम है। दस भुजाधारी आप परमात्माको पुनः-पुनः अभिवादन है। आपके हाथोंमें डमरू और कपाल शोभा पाते हैं तथा आप मुण्डोंकी माला धारण करते हैं, आपको नमस्कार है। आपका श्रीविग्रह शुद्ध स्फटिक तथा निर्मल कर्पूरके समान गौर वर्णका है, हाथमें पिनाक सुशोभित है, तथा आप उत्तम त्रिशूल धारण किये हुए हैं; आपको प्रणाम है। गङ्गाधर! आप व्याघ्रचर्मका उत्तरीय तथा गजचर्मका वस्त्र लपेटनेवाले हैं, आपके अङ्गोंमें नाग लिपटे रहते हैं; आपको बारंबार अभिवादन है। सुन्दर लाल-लाल चरणोंवाले आपको नमस्कार है। नन्दी आदि गणोंद्वारा सेवित आप गणनायकको प्रणाम है। जो गणेशस्वरूप हैं, कार्तिकेय जिनके अनुगामी हैं, जो भक्तोंको भक्ति और मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं, उन आपको पुनः-पुनः नमस्कार है। आप निर्गुण, सगुण, रूपरहित, रूपवान्, कलायुक्त तथा निष्कल हैं; आपको मैं बारंबार सिर झुकाता हूँ। जिन्होंने मुझपर अनुग्रह करनेके लिये किरातवेष धारण किया है, जो वीरोंके साथ युद्ध करनेके प्रेमी तथा नाना प्रकारकी लीलाएँ करनेवाले हैं, उन महेश्वरको प्रणाम है। जगत्में जो कुछ भी रूप दृष्टिगोचर हो रहा है, वह सब आपका ही तेज कहा जाता है। आप चिद्रूप हैं और अन्वयभेदसे त्रिलोकीमें रमण कर रहे हैं। जैसे धूलिकणोंकी, आकाशमें उदय हुई तारकाओंकी तथा बरसते हुए जलकी बूँदोंकी गणना नहीं की जा सकती, उसी प्रकार आपके गुणोंकी भी संख्या नहीं है। नाथ! आपके गुणोंकी गणना करनेमें तो वेद भी समर्थ नहीं हैं, मैं तो एक मन्दबुद्धि व्यक्ति हूँ; फिर मैं उनका वर्णन कैसे कर

सकता हूँ। महेशान ! आप जो कोई भी हों, आपको मेरा नमस्कार है। महेश्वर ! आप मेरे स्वामी हैं और मैं आपका दास हूँ; अतः आपको मुझपर कृपा करनी ही चाहिये।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! अर्जुनद्वारा किये गये इस स्तवनको सुनकर भगवान् शंकरका मन परम प्रसन्न हो गया। तब वे हँसते हुए पुनः अर्जुनसे बोले।

शंकरजीने कहा—वत्स ! अब अधिक कहनेसे क्या लाभ, तुम मेरी बात सुनो और अपना अभीष्ट वर माँग लो। इस समय तुम जो कुछ कहोगे, वह सब मैं तुम्हें प्रदान करूँगा।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—महर्षे ! शंकरजीके यों कहनेपर अर्जुनने हाथ जोड़कर नतमस्तक हो सदाशिवको प्रणाम किया और फिर प्रेमपूर्वक गद्गद वाणीमें कहना आरम्भ किया।

अर्जुनने कहा—विभो ! आप तो स्वयं ही अन्तर्यामीरूपसे सबके अंदर विराजमान हैं (अतः घट-घटकी जाननेवाले हैं), ऐसी दशामें मैं क्या कहूँ; तथापि मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे आप सुनिये। भगवन् ! मुझपर शत्रुओंद्वारा जो संकट प्राप्त हुआ था, वह तो आपके दर्शनसे ही विनष्ट हो गया। अब जिस प्रकार मुझे इस लोककी परासिद्धि प्राप्त हो सके, वैसी कृपा कीजिये।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! इतना कहकर अर्जुनने भक्तवत्सल भगवान् शंकरको नमस्कार किया और फिर वे हाथ जोड़कर मस्तक झुकाये हुए उनके निकट खड़े हो गये। जब स्वामी शिवजीको यह ज्ञात हो गया कि यह पाण्डुपुत्र अर्जुन मेरा अनन्य भक्त है, तब वे भी परम प्रसन्न हुए। फिर उन महेश्वरने अपने पाशुपत नामक अस्त्रको, जो सर्वथा समस्त प्राणियोंके लिये दुर्जय है, अर्जुनको दे दिया और इस प्रकार कहा।

शिवजी बोले—वत्स ! मैंने ! तुम्हें अपना महान् अस्त्र दे दिया। इसे धारण करनेसे अब तुम समस्त शत्रुओंके लिये अजेय हो जाओगे। जाओ, विजय-लाभ करो। साथ ही मैं श्रीकृष्णसे भी कहूँगा, वे

तुम्हारी सहायता करेंगे; क्योंकि श्रीकृष्ण मेरे आत्मस्वरूप, भक्त और मेरा कार्य करनेवाले हैं। भारत ! मेरे प्रभावसे तुम निष्कण्टक राज्य भोगो और अपने भाई युधिष्ठिरसे सर्वदा नाना प्रकारके धर्मकार्य कराते रहो।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! यों कहकर शंकरजीने अर्जुनके मस्तकपर अपना कर-कमल रख दिया और अर्जुनद्वारा पूजित हो वे शीघ्र ही अन्तर्धान हो गये। इस प्रकार भगवान् शंकरसे वरदान और अस्त्र पाकर अर्जुनका मन प्रसन्न हो गया। तब वे अपने मुख्य गुरु शिवका भक्तिपूर्वक स्मरण

करते हुए अपने आश्रमको लौट गये। वहाँ अर्जुनसे मिलकर सभी भाइयोंको ऐसा आनन्द प्राप्त हुआ मानो मृतक शरीरमें प्राणका संचार हो गया हो। उत्तम व्रतका पालन करनेवाली द्रौपदीको अत्यन्त सुख मिला। जब उन पाण्डवोंको यह ज्ञात हुआ कि शिवजी परम संतुष्ट हो गये हैं, तब उनके हर्षका पार नहीं रहा। उन्हें उस सम्पूर्ण वृत्तान्तके सुननेसे तृप्ति ही नहीं होती थी। उस समय उस आश्रममें महामनस्वी पाण्डवोंका भला करनेके लिये चन्दनयुक्त पुष्पोंकी वृष्टि होने लगी। तब उन्होंने हर्षपूर्वक सम्पत्तिदाता तथा कल्याणकर्ता शिवको नमस्कार किया और (तेरह वर्षकी) अवधिको समाप्त हुई जानकर यह निश्चय किया कि अवश्य ही हमारी विजय होगी। इसी अवसरपर जब श्रीकृष्णको पता चला कि अर्जुन लौटकर आ गये हैं, तब यह समाचार सुनकर उन्हें बड़ा सुख मिला और वे अर्जुनसे मिलनेके लिये वहाँ पधारे तथा कहने लगे कि 'इसीलिये मैंने कहा था कि शंकरजी सम्पूर्ण कष्टोंका विनाश करनेवाले हैं। मैं नित्य उनकी सेवा करता हूँ, अतः आपलोग भी उनकी सेवा करें।' मुने! इस प्रकार मैंने शंकरजीके किरात नामक अवतारका वर्णन किया। जो इसे सुनता अथवा दूसरेको सुनाता है, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। (अध्याय ४०-४१)

शिवजीके द्वादश ज्योतिर्लिङ्गावतारोंका सविस्तर वर्णन

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! अब तुम सर्वव्यापी भगवान् शंकरके बारह अन्य ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपी अवतारोंका वर्णन श्रवण करो, जो अनेक प्रकारके मङ्गल करनेवाले हैं। (उनके नाम ये हैं—) सौराष्ट्रमें सोमनाथ, श्रीशैलपर मल्लिकार्जुन, उज्जयिनीमें महाकाल, ओंकारमें अमरेश्वर, हिमालयपर केदार, डाकिनीमें भीमशंकर, काशीमें विश्वनाथ, गौतमीके तटपर त्र्यम्बकेश्वर, चिताभूमिमें वैद्यनाथ, दारुकवनमें नागेश्वर, सेतुबन्धपर रामेश्वर और शिवालयमें घुश्मेश्वर। मुने! परमात्मा शम्भुके ये ही वे बारह अवतार हैं। ये दर्शन और स्पर्श करनेसे मनुष्योंको सब प्रकारका आनन्द प्रदान करते हैं। मुने! उनमें पहला अवतार सोमनाथका है। यह चन्द्रमाके दुःखका विनाश करनेवाला है। इनका पूजन करनेसे क्षय और कुष्ठ आदि रोगोंका नाश हो जाता है। यह सोमेश्वर नामक शिवावतार सौराष्ट्र नामक पावन प्रदेशमें लिङ्गरूपसे स्थित है। पूर्वकालमें चन्द्रमाने इनकी पूजा की थी। वहीं सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाला एक चन्द्रकुण्ड है, जिसमें स्नान करनेसे बुद्धिमान् मनुष्य सम्पूर्ण रोगोंसे मुक्त हो जाता है। परमात्मा शिवके सोमेश्वर नामक महालिङ्गका दर्शन करनेसे मनुष्य पापसे छूट जाता है और उसे भोग और मोक्ष सुलभ हो जाते हैं। तात! शंकरजीका मल्लिकार्जुन नामक दूसरा अवतार श्रीशैलपर हुआ। वह भक्तोंको अभीष्ट फल प्रदान करनेवाला है। मुने! भगवान् शिव परम प्रसन्नतापूर्वक अपने निवासभूत कैलासगिरिसे लिङ्गरूपमें श्रीशैलपर पधारे हैं। पुत्र-प्राप्तिके लिये इनकी स्तुति की जाती

है। मुने ! यह जो दूसरा ज्योतिर्लिङ्ग है, वह दर्शन और पूजन करनेसे महा सुखकारक होता है और अन्तमें मुक्ति भी प्रदान कर देता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है। तात ! शंकरजीका महाकाल नामक तीसरा अवतार उज्जयिनी नगरीमें हुआ। वह अपने भक्तोंकी रक्षा करनेवाला है। एक बार रत्नमाल-निवासी दूषण नामक असुर, जो वैदिक धर्मका विनाशक, विप्रद्रोही तथा सब कुछ नष्ट करनेवाला था, उज्जयिनीमें जा पहुँचा। तब वेद नामक ब्राह्मणके पुत्रने शिवजीका ध्यान किया। फिर तो शंकरजीने तुरंत ही प्रकट होकर हुंकारद्वारा उस असुरको भस्म कर दिया। तत्पश्चात् अपने भक्तोंका सर्वथा पालन करनेवाले शिव देवताओंके प्रार्थना करनेपर महाकाल नामक ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपसे वहीं प्रतिष्ठित हो गये। इन महाकाल नामक लिङ्गका प्रयत्न-पूर्वक दर्शन और पूजन करनेसे मनुष्यकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं और अन्तमें उसे परम गति प्राप्त होती है। परम आत्मबलसे सम्पन्न परमेश्वर शम्भुने भक्तोंको अभीष्ट फल प्रदान करनेवाला ओंकार नामक चौथा अवतार धारण किया। मुने ! विन्ध्यगिरिने भक्तिपूर्वक विधि-विधानसे शिवजीका पार्थिवलिङ्ग स्थापित किया। उसी लिङ्गसे विन्ध्यका मनोरथ पूर्ण करनेवाले महादेव प्रकट हुए। तब देवताओंके प्रार्थना करनेपर भुक्ति-मुक्तिके प्रदाता भक्तवत्सल लिङ्गरूपी शंकर वहाँ दो रूपोंमें विभक्त हो गये। मुनीश्वर ! उनमें एक भाग ओंकारमें ओंकारेश्वर नामक उत्तम लिङ्गके रूपमें प्रतिष्ठित हुआ और दूसरा पार्थिवलिङ्ग परमेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुआ। मुने ! इन दोनोंमें जिस किसीका भी दर्शन-पूजन किया जाय, उसे भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाला समझना चाहिये। महामुने ! इस प्रकार मैंने तुम्हें इन दोनों महादिव्य ज्योतिर्लिङ्गोंका वर्णन सुना दिया। परमात्मा शिवके पाँचवें अवतारका नाम है केदारेश। वह केदारमें ज्योतिर्लिङ्ग-रूपसे स्थित है। मुने ! वहाँ श्रीहरिके जो नर-नारायण नामक अवतार हैं, उनके प्रार्थना करनेपर शिवजी हिमगिरिके केदारशिखरपर स्थित हो गये। वे दोनों उस केदारेश्वर लिङ्गकी नित्य पूजा करते हैं। वहाँ शम्भु दर्शन और पूजन करनेवाले भक्तोंको अभीष्ट प्रदान करते हैं। तात ! सर्वेश्वर होते हुए भी शिव इस खण्डके विशेषरूपसे स्वामी हैं। शिवजीका यह अवतार सम्पूर्ण अभीष्टोंको प्रदान करनेवाला है। महाप्रभु शम्भुके छठे अवतारका नाम भीमशंकर है। इस अवतारमें उन्होंने बड़ी-बड़ी लीलाएँ की हैं और भीमासुरका विनाश किया है। कामरूप देशके अधिपति राजा सुदक्षिण शिवजीके भक्त थे। भीमासुर उन्हें पीड़ित कर रहा था। तब शंकरजीने अपने भक्तको दुःख देनेवाले उस अद्भुत असुरका वध करके उनकी रक्षा की। फिर राजा सुदक्षिणके प्रार्थना करनेपर स्वयं शंकरजी डाकिनीमें भीमशंकर नामक ज्योतिर्लिङ्ग-स्वरूपसे स्थित हो गये। मुने ! जो समस्त ब्रह्माण्डस्वरूप तथा भोग-मोक्षका प्रदाता है, वह विश्वेश्वर नामक सातवाँ अवतार काशीमें हुआ। मुक्तिदाता सिद्धस्वरूप स्वयं भगवान् शंकर अपनी पुरी काशीमें ज्योतिर्लिङ्गरूपमें स्थित हैं। विष्णु आदि सभी देवता, कैलासपति शिव और भैरव नित्य उनकी

पूजा करते हैं। जो काशी-विश्वनाथके भक्त हैं और नित्य उनके नामोंका जप करते रहते हैं, वे कर्मोंसे निर्लिप्त होकर कैवल्य-पदके भागी होते हैं। चन्द्रशेखर शिवका जो त्र्यम्बक नामक आठवाँ अवतार है, वह गौतम ऋषिके प्रार्थना करनेपर गौतमी नदीके तटपर प्रकट हुआ था। गौतमकी प्रार्थनासे उन मुनिको प्रसन्न करनेके लिये शंकरजी प्रेमपूर्वक ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपसे वहाँ अचल होकर स्थित हो गये। अहो! उन महेश्वरका दर्शन और स्पर्श करनेसे सारी कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं। तत्पश्चात् मुक्ति भी मिल जाती है। शिवजीके अनुग्रहसे शंकरप्रिया परम पावनी गङ्गा गौतमके स्नेहवश वहाँ गौतमी नामसे प्रवाहित हुई। उनमें नवाँ अवतार वैद्यनाथ नामसे प्रसिद्ध है। इस अवतारमें बहुत-सी विचित्र लीलाएँ करनेवाले भगवान् शंकर रावणके लिये आविर्भूत हुए थे। उस समय रावणद्वारा अपने लाये जानेको ही कारण मानकर महेश्वर ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपसे चिता-भूमिमें प्रतिष्ठित हो गये। उस समयसे वे त्रिलोकीमें वैद्यनाथेश्वर नामसे विख्यात हुए। वे भक्तिपूर्वक दर्शन और पूजन करनेवालेको भोग-मोक्षके प्रदाता हैं। मुने! जो लोग इन वैद्यनाथेश्वर शिवके माहात्म्यको पढ़ते अथवा सुनते हैं, उन्हें यह भुक्ति-मुक्तिका भागी बना देता है। दसवाँ नागेश्वरावतार कहलाता है। यह अपने भक्तोंकी रक्षाके लिये प्रादुर्भूत हुआ था। यह सदा दुष्टोंको दण्ड देता रहता है। इस अवतारमें शिवजीने दारुक नामक राक्षसको, जो धर्मघाती था, मारकर वैश्योंके स्वामी अपने सुप्रिय नामक भक्तकी रक्षा की थी। तत्पश्चात् बहुत-सी लीलाएँ करनेवाले वे परात्पर प्रभु शम्भु लोकोंका उपकार करनेके लिये अम्बिका-सहित ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपसे स्थित हो गये। मुने! नागेश्वर नामक उस शिवलिङ्गका दर्शन तथा अर्चन करनेसे राशि-के-राशि महान् पातक तुरंत विनष्ट हो जाते हैं। मुने! शिवजीका ग्यारहवाँ अवतार रामेश्वरावतार कहलाता है। वह श्रीरामचन्द्रका प्रिय करनेवाला है। उसे श्रीरामने ही स्थापित किया था। जिन भक्तवत्सल शंकरने परम प्रसन्न होकर श्रीरामको प्रेमपूर्वक विजयका वरदान दिया, वे ही लिङ्गरूपमें आविर्भूत हुए। मुने! तब श्रीरामके अत्यन्त प्रार्थना करनेपर वे सेतुबन्धपर ज्योतिर्लिङ्गरूपसे स्थित हो गये! उस समय श्रीरामने उनकी भलीभाँति सेवा-पूजा की। रामेश्वरकी अद्भुत महिमाकी भूतलपर किसीसे तुलना नहीं की जा सकती। यह सर्वदा भुक्ति-मुक्तिकी प्रदायिनी तथा भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाली है। जो मनुष्य सद्भक्तिपूर्वक रामेश्वर लिङ्गको गङ्गाजलसे स्नान करायेगा, वह जीवन्मुक्त ही है। वह इस लोकमें जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ हैं, ऐसे सम्पूर्ण भोगोंको भोगनेके पश्चात् परम ज्ञानको प्राप्त होगा। फिर उसे कैवल्य मोक्ष मिल जायगा। घुश्मेश्वरावतार शंकरजीका बारहवाँ अवतार है। वह नाना प्रकारकी लीलाओंका कर्ता, भक्तवत्सल तथा घुश्माको आनन्द देनेवाला है। मुने! घुश्माका प्रिय करनेके लिये भगवान् शंकर दक्षिण दिशामें स्थित

देवशैलके निकटवर्ती एक सरोवरमें प्रकट हुए। मुने ! घुश्माके पुत्रको सुदेष्णने मार डाला था। (उसे जीवित करनेके लिये घुश्माने शिवजीकी आराधना की।) तब उनकी भक्तिसे संतुष्ट होकर भक्तवत्सल शम्भुने उनके पुत्रको बचा लिया। तदनन्तर कामनाओंके पूरक शम्भु घुश्माकी प्रार्थनासे उस तड़ागमें ज्योतिर्लिङ्गरूपसे स्थित हो गये ! उस समय उनका नाम घुश्मेश्वर हुआ। जो मनुष्य उस शिवलिङ्गका भक्ति-पूर्वक दर्शन तथा पूजन करता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण सुखोंको भोगकर अन्तमें मुक्ति-लाभ करता है। सनत्कुमारजी ! इस प्रकार मैंने तुमसे इस बारह दिव्य ज्योतिर्लिङ्गोंका वर्णन किया। ये सभी भोग और मोक्षके प्रदाता हैं। जो मनुष्य ज्योतिर्लिङ्गोंकी इस कथाको पढ़ता अथवा सुनता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा भोग-मोक्षको प्राप्त करता है। इस प्रकार मैंने इस शतरुद्रनामकी संहिताका वर्णन कर दिया। यह शिवके सौ अवतारोंकी उत्तम कीर्तिसे सम्पन्न तथा सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाली है। जो मनुष्य इसे नित्य समाहितचित्तसे पढ़ता अथवा सुनता है, उसकी सारी लालसाएँ पूर्ण हो जाती हैं और अन्तमें उसे निश्चय ही मुक्ति मिल जाती है।

(अध्याय ४२)

☆

॥ शतरुद्रसंहिता सम्पूर्ण ॥

☆

कोटिरुद्रसंहिता

द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों तथा उनके उपलिङ्गोंका वर्णन एवं उनके दर्शन-पूजनकी महिमा

यो धत्ते निजमाययैव भुवनाकारं विकारोज्झितो
यस्याहुः करुणाकटाक्षविभवौ स्वर्गापवर्गाभिधौ।
प्रत्यग्बोधसुखाद्वयं हृदि सदा पश्यन्ति यं योगिन-
स्तस्मै शैलसुताञ्चितार्धवपुषे शश्वन्नमस्तेजसे ॥ १ ॥

जो निर्विकार होते हुए भी अपनी मायासे ही विराट् विश्वका आकार धारण कर लेते हैं, स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) जिनके कृपा-कटाक्षके ही वैभव बताये जाते हैं तथा योगीजन जिन्हें सदा अपने हृदयके भीतर अद्वितीय आत्मज्ञानानन्दस्वरूपमें ही देखते हैं, उन तेजोमय भगवान् शंकरको, जिनका आधा शरीर शैलराजकुमारी पार्वतीसे सुशोभित है, निरन्तर मेरा नमस्कार है ॥ १ ॥

कृपाललितवीक्षणं स्मितमनोज्ञवक्त्राम्बुजं
शशाङ्ककलयोज्ज्वलं शमितघोरतापत्रयम्।
करोतु किमपि स्फुरत्परमसौख्यसच्चिद्वपु-
र्धराधरसुताभुजोद्वलयितं महो मङ्गलम् ॥ २ ॥

जिसकी कृपापूर्ण चितवन बड़ी ही सुन्दर है, जिसका मुखारविन्द मन्द मुस्कानकी छटासे अत्यन्त मनोहर दिखायी देता है, जो चन्द्रमाकी कलासे परम उज्ज्वल है, जो आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंको शान्त कर देनेमें समर्थ है, जिसका स्वरूप सच्चिन्मय एवं परमानन्दरूपसे प्रकाशित होता है तथा जो गिरिराजनन्दिनी पार्वतीके भुजपाशसे आवेष्टित है, वह शिवनामक कोई अनिर्वचनीय तेजःपुञ्ज सबका मङ्गल करे ॥ २ ॥

ऋषि बोले—सूतजी! आपने सम्पूर्ण लोकोंके हितकी कामनासे नाना प्रकारके आख्यानोंसे युक्त जो शिवावतारका माहात्म्य बताया है, वह बहुत ही उत्तम है। तात! आप पुनः शिवके परम उत्तम माहात्म्यका तथा शिवलिङ्गकी महिमाका प्रसन्नतापूर्वक वर्णन कीजिये। आप शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ हैं, अतः धन्य हैं। प्रभो! आपके मुखारविन्दसे निकले हुए भगवान् शिवके सुरम्य यशरूपी अमृतका अपने कर्णपुटोंद्वारा पान करके हम तृप्त नहीं हो रहे हैं, अतः फिर उसीका वर्णन कीजिये। व्यासशिष्य! भूमण्डलमें, तीर्थ-तीर्थमें जो-जो शुभ लिङ्ग हैं अथवा अन्य स्थलोंमें भी जो-जो प्रसिद्ध शिवलिङ्ग विराजमान हैं, परमेश्वर शिवके उन सभी दिव्य लिङ्गोंका समस्त लोकोंके हितकी इच्छासे आप वर्णन कीजिये।

सूतजीने कहा—महर्षियो! सम्पूर्ण तीर्थ लिङ्गमय हैं। सब कुछ लिङ्गमें ही प्रतिष्ठित है। उन शिवलिङ्गोंकी कोई गणना नहीं है, तथापि मैं उनका किंचित् वर्णन करता हूँ। जो कोई भी दृश्य देखा जाता है तथा जिसका वर्णन एवं स्मरण किया जाता है, वह सब भगवान् शिवका ही रूप है; कोई भी वस्तु शिवके स्वरूपसे भिन्न नहीं है। साधुशिरोमणियो! भगवान् शम्भुने सब लोगोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही देवता, असुर और मनुष्योंसहित तीनों लोकोंको लिङ्गरूपसे व्याप्त कर रखा है। समस्त लोकोंपर कृपा करनेके उद्देश्यसे ही भगवान् महेश्वर तीर्थ-तीर्थमें और अन्य स्थलोंमें भी नाना प्रकारके लिङ्ग धारण करते हैं। जहाँ-जहाँ जब-जब भक्तोंने भक्तिपूर्वक भगवान् शम्भुका स्मरण किया, तहाँ-तहाँ तब-तब अवतार ले कार्य करके वे स्थित हो गये; लोकोंका उपकार करनेके लिये उन्होंने

स्वयं अपने स्वरूपभूत लिङ्गकी कल्पना की। उस लिङ्गकी पूजा करके शिवभक्त पुरुष अवश्य सिद्धि प्राप्त कर लेता है। ब्राह्मणो! भूमण्डलमें जो लिङ्ग हैं, उनकी गणना नहीं हो सकती; तथापि मैं प्रधान-प्रधान शिवलिङ्गोंका परिचय देता हूँ। मुनिश्रेष्ठ-शौनक! इस भूतलपर जो मुख्य-मुख्य ज्योतिर्लिङ्ग हैं, उनका आज मैं वर्णन करता हूँ। उनका नाम सुनने-मात्रसे पाप दूर हो जाता है। सौराष्ट्रमें सोमनाथ[१], श्रीशैलपर मल्लिकार्जुन[२], उज्जैनीमें महाकाल[३], ओंकारतीर्थमें परमेश्वर[४], हिमालयके शिखरपर केदार[५], डाकिनीमें भीमशङ्कर[६], वाराणसीमें विश्वनाथ[७], गोदावरीके तटपर त्र्यम्बक[८], चिताभूमिमें वैद्यनाथ[९], दारुकावनमें नागेश[१०], सेतुबन्धमें रामेश्वर[११] तथा शिवालयमें घुश्मेश्वर[१२] का

---

१. श्रीसोमनाथका दर्शन करनेके लिये काठियावाड़ प्रदेशके अन्तर्गत प्रभासक्षेत्रमें जाना चाहिये। २. श्रीमल्लिकार्जुन नामक ज्योतिर्लिङ्ग जिस पर्वतपर विराजमान है, उसका नाम श्रीशैल या श्रीपर्वत है। यह स्थान मद्रास प्रान्तके कृष्णा जिलेमें कृष्णानदीके तटपर है। इसे दक्षिणका कैलास कहते हैं। ३. महाकाल या महाकालेश्वर मालवा प्रदेशमें शिप्रा नदीके तटपर उज्जैन नामक नगरमें विराजमान है। उज्जैनको अवन्तिकापुरी भी कहते हैं। ४. इस शिवलिङ्गको ओंकारेश्वर भी कहते हैं। ओंकारेश्वरका स्थान मालवा प्रान्तमें नर्मदा नदीके तटपर है। उज्जैनसे खंडवा जानेवाली रेलवेकी छोटी लाइनपर मोरटक्का नामक स्टेशन है। वहाँसे यह स्थान ७ मील दूर है। यहाँ ओंकारेश्वर और अमलेश्वर नामक दो पृथक्-पृथक् लिङ्ग हैं। परंतु दोनों एक ही ज्योतिर्लिङ्गके दो स्वरूप माने गये हैं। ५. श्रीकेदारनाथ या केदारेश्वर हिमालयके केदार नामक शिखरपर स्थित हैं। शिखरसे पूर्वकी ओर अलकनन्दाके तटपर श्रीबदरीनाथ अवस्थित हैं और पश्चिममें मन्दाकिनीके किनारे श्रीकेदारनाथ विराजमान हैं। यह स्थान हरिद्वारसे १५० मील और ऋषिकेशसे १३२ मील दूर है। ६. श्रीभीमशङ्करका स्थान बम्बईसे पूर्व और पूनासे उत्तर भीमानदीके किनारे उसके उद्गमस्थान सह्य पर्वतपर है। यह स्थान नासिकसे लगभग १२० मील दूर है। सह्य पर्वतके उस शिखरका नाम, जहाँ इस ज्योतिर्लिङ्गका प्राचीन मन्दिर है, डाकिनी है। इससे अनुमान होता है कि कभी यहाँ डाकिनी और भूतोंका निवास था। शिवपुराणकी एक कथाके आधारपर भीमशङ्कर ज्योतिर्लिङ्ग आसामके कामरूप जिलेमें गौहाटीके पास ब्रह्मपुर पहाड़ीपर स्थित बताया जाता है। कुछ लोग कहते हैं कि नैनीताल जिलेके उज्जनक नामक स्थानमें एक विशाल शिवमन्दिर है, वही भीमशङ्करका स्थान है। ७. काशीके श्रीविश्वनाथजी तो प्रसिद्ध ही हैं। ८. यह ज्योतिर्लिङ्ग त्र्यम्बक या त्र्यम्बकेश्वरके नामसे प्रसिद्ध है। बम्बई प्रान्तके नासिक जिलेमें नासिक पञ्चवटीसे १८ मील दूर गोदावरीके उद्गमस्थान ब्रह्मगिरिके निकट गोदावरीके तटपर ही इसकी स्थिति है। ९. यह स्थान संथाल परगनेमें ई० आई० रेलवेके जसीडीह स्टेशनके पास वैद्यनाथधामके नामसे प्रसिद्ध है। पुराणोंके अनुसार यही चिताभूमि है। कहीं-कहीं 'परल्यां वैद्यनाथं च' ऐसा पाठ मिलता है। इसके अनुसार परलीमें वैद्यनाथकी स्थिति है। दक्षिण हैदराबाद नगरसे इधर परभनी नामक एक जंक्शन है। वहाँसे परलीतक एक ब्रांच लाइन गयी है। इस परली स्टेशनसे थोड़ी दूरपर परली गाँवके निकट श्रीवैद्यनाथ नामक ज्योतिर्लिङ्ग है। १०. नागेश नामक ज्योतिर्लिङ्गका स्थान बड़ौदा राज्यके अन्तर्गत गोमतीद्वारकासे ईशानकोणमें बारह-तेरह मीलकी दूरीपर है। दारुकावन इसीका नाम है। कोई-कोई दारुकावनके स्थानमें 'द्वारकावन' पाठ मानते हैं। इस पाठके अनुसार भी यही स्थान सिद्ध होता है; क्योंकि यह द्वारकाके निकट और उस क्षेत्रके अन्तर्गत है। कोई-कोई दक्षिण हैदराबादके अन्तर्गत औढ़ा ग्राममें स्थित शिवलिङ्गको ही नागेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग मानते हैं। कुछ लोगोंके मतसे अल्मोड़ासे १७ मील उत्तर पूर्वमें स्थित यागेश (जागेश्वर) शिवलिङ्ग ही नागेश ज्योतिर्लिङ्ग है। ११. श्रीरामेश्वर तीर्थको ही सेतुबन्ध तीर्थ भी कहते हैं। यह स्थान मद्रास प्रान्तके रामनाथम् या रामनाद जिलेमें है। यहाँ समुद्रके तटपर रामेश्वरका विशाल मन्दिर शोभा पाता है। १२. श्रीघुश्मेश्वरको घुसृणेश्वर या घृष्णेश्वर भी कहते हैं। इनका स्थान हैदराबाद राज्यके अन्तर्गत दौलताबाद स्टेशनसे १२ मील दूर बेरूल गाँवके पास है। इस स्थानको ही शिवालय कहते हैं।

स्मरण करे। जो प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर इन बारह नामोंका पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो सम्पूर्ण सिद्धियोंका फल प्राप्त कर लेता है।*

मुनीश्वरो! जिस-जिस मनोरथको पानेकी इच्छा रखकर श्रेष्ठ मनुष्य इन बारह नामोंका पाठ करेंगे, वे इस लोक और परलोकमें उस मनोरथको अवश्य प्राप्त करेंगे। जो शुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुष निष्काम भावसे इन नामोंका पाठ करेंगे, उन्हें कभी माताके गर्भमें निवास नहीं करना पड़ेगा। इन सबके पूजनमात्रसे ही इहलोकमें समस्त वर्णोंके लोगोंके दुःखोंका नाश हो जाता है और परलोकमें उन्हें अवश्य मोक्ष प्राप्त होता है। इन बारह ज्योतिर्लिङ्गोंका नैवेद्य यत्नपूर्वक ग्रहण करना (खाना) चाहिये। ऐसा करनेवाले पुरुषके सारे पाप उसी क्षण जलकर भस्म हो जाते हैं।†

यह मैंने ज्योतिर्लिङ्गोंके दर्शन और पूजनका फल बताया। अब ज्योतिर्लिङ्गोंके उपलिङ्ग बताये जाते हैं। मुनीश्वरो! ध्यान देकर सुनो। सोमनाथका जो उपलिङ्ग है, उसका नाम अन्तकेश्वर है। वह उपलिङ्ग मही नदी और समुद्रके संगमपर स्थित है। मल्लिकार्जुनसे प्रकट उपलिङ्ग रुद्रेश्वरके नामसे प्रसिद्ध है। वह भृगुकक्षमें स्थित है और उपासकोंको सुख देनेवाला है। महाकालसम्बन्धी उपलिङ्ग दुग्धेश्वर या दूधनाथके नामसे प्रसिद्ध है। वह नर्मदाके तटपर है तथा समस्त पापोंका निवारण करनेवाला कहा गया है। ओंकारेश्वरसम्बन्धी उपलिङ्ग कर्दमेश्वरके नामसे प्रसिद्ध है। वह बिन्दु सरोवरके तटपर है और उपासकको सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फल प्रदान करता है। केदारेश्वरसम्बन्धी उपलिङ्ग भूतेश्वरके नामसे प्रसिद्ध है और यमुना-तटपर स्थित है। जो लोग उसका दर्शन और पूजन करते हैं, उनके बड़े-से-बड़े पापोंका वह निवारण करनेवाला बताया गया है। भीमशंकरसम्बन्धी उपलिङ्ग भीमेश्वरके नामसे प्रसिद्ध है। वह भी सह्य पर्वतपर ही स्थित है और महान् बलकी वृद्धि करनेवाला है। नागेश्वरसम्बन्धी उपलिङ्गका नाम भी भूतेश्वर ही है, वह मल्लिका सरस्वतीके तटपर स्थित है और दर्शन करनेमात्रसे सब पापोंको हर लेता है। रामेश्वरसे प्रकट हुए उपलिङ्गको गुप्तेश्वर और घुश्मेश्वरसे प्रकट हुए उपलिङ्गको व्याघ्रेश्वर कहा गया है। ब्राह्मणो! इस प्रकार यहाँ मैंने ज्योतिर्लिङ्गोंके उपलिङ्गोंका परिचय दिया।

---

* सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्। उज्जयिन्यां महाकालमोंकारे परमेश्वरम्॥
केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशंकरम्। वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे॥
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने। सेतुबन्धे च रामेशं घुश्मेशं तु शिवालये॥
द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्। सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः सर्वसिद्धिफलं लभेत्॥
(शि॰ पु॰ कोटि॰ सं॰ १। २१—२४)

† एतेषां च नैवेद्यं भोजनीयं प्रयत्नतः। तत्क्षणात् सर्वपापानि भस्मसाद्यान्ति वै क्षणात्॥
(शि॰ पु॰ को॰ रु॰ सं॰ १। २८)

ये दर्शनमात्रसे पापहारी तथा सम्पूर्ण अभीष्टके दाता होते हैं। मुनिवरो ! ये मुख्यताको प्राप्त हुए प्रधान-प्रधान शिवलिङ्ग बताये गये। अब अन्य प्रमुख शिवलिङ्गोंका वर्णन सुनो।

(अध्याय १)

☆

काशी आदिके विभिन्न लिङ्गोंका वर्णन तथा अत्रीश्वरकी उत्पत्तिके प्रसङ्गमें गङ्गा और शिवके अत्रिके तपोवनमें नित्य निवास करनेकी कथा

सूतजी कहते हैं—मुनीश्वरो ! गङ्गाजीके तटपर मुक्तिदायिनी काशीपुरी सुप्रसिद्ध है। वह भगवान् शिवकी निवासस्थली मानी गयी है। उसे शिवलिङ्ग-मयी ही समझना चाहिये। इतना कहकर सूतजीने काशीके अविमुक्त कृत्तिवासेश्वर, तिलभाण्डेश्वर, दशाश्वमेध आदि और गङ्गासागर आदिके संगमेश्वर, भूतेश्वर, नारीश्वर, वटुकेश्वर, पूरेश्वर, सिद्धनाथेश्वर, दूरेश्वर, शृङ्गेश्वर, वैद्यनाथ, जप्येश्वर, गोपेश्वर, रंगेश्वर, वामेश्वर, नागेश, कामेश, विमलेश्वर; प्रयागके ब्रह्मेश्वर, सोमेश्वर, भारद्वाजेश्वर, शूलटङ्केश्वर, माधवेश तथा अयोध्याके नागेश आदि अनेक प्रसिद्ध शिवलिङ्गोंका वर्णन करके अत्रीश्वरकी कथाके प्रसङ्गमें यह बतलाया कि अत्रिपत्नी अनसूयापर कृपा करके गङ्गाजी वहाँ पधारीं। अनसूयाने गङ्गाजीसे सदा वहाँ निवास करनेके लिये प्रार्थना की।

तब गङ्गाजीने कहा—अनसूये ! यदि तुम एक वर्षतक की हुई शंकरजीकी पूजा और पतिसेवाका फल मुझे दे दो तो मैं देवताओंका उपकार करनेके लिये यहाँ सदा ही स्थित रहूँगी। पतिव्रताका दर्शन करके मेरे मनको जैसी प्रसन्नता होती है, वैसी दूसरे उपायोंसे नहीं होती। सती अनसूये ! यह मैंने तुमसे सच्ची बात कही है। पतिव्रता स्त्रीका दर्शन करनेसे मेरे पापोंका नाश हो जाता है और मैं विशेष शुद्ध हो जाती हूँ; क्योंकि पतिव्रता नारी पार्वतीके समान पवित्र होती

है। अतः यदि तुम जगत्का कल्याण करना चाहती हो और लोकहितके लिये मेरी माँगी हुई वस्तु मुझे देती हो तो मैं अवश्य यहाँ स्थिररूपसे निवास करूँगी।

सूतजी कहते हैं—मुनियो ! गङ्गाजीकी यह बात सुनकर पतिव्रता अनसूयाने वर्षभरका वह सारा पुण्य उन्हें दे दिया। अनसूयाके पतिव्रतसम्बन्धी उस महान् कर्मको देखकर भगवान् महादेवजी प्रसन्न हो गये और पार्थिवलिङ्गसे तत्काल प्रकट हो उन्होंने साक्षात् दर्शन दिया।

शम्भु बोले—साध्वि अनसूये ! तुम्हारा यह कर्म देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। प्रिय पतिव्रते ! वर माँगो। क्योंकि तुम मुझे बहुत ही प्रिय हो।

उस समय वे दोनों पति-पत्नी अद्भुत सुन्दर आकृति एवं पञ्चमुख आदिसे युक्त भगवान् शिवको वहाँ प्रकट हुआ देख बड़े विस्मित हुए। उन्होंने हाथ जोड़ नमस्कार और स्तुति करके बड़े भक्तिभावसे भगवान् शंकरका पूजन किया। फिर उन लोककल्याणकारी शिवसे कहा।

ब्राह्मणदम्पति बोले—देवेश्वर ! यदि आप प्रसन्न हैं और जगदम्बा गङ्गा भी प्रसन्न हैं तो आप इस तपोवनमें निवास कीजिये और समस्त लोकोंके लिये सुखदायक हो जाइये।

तब गङ्गा और शिव दोनों ही प्रसन्न हो उस स्थानपर, जहाँ वे ऋषिशिरोमणि रहते थे, प्रतिष्ठित हो गये। इन्हीं शिवका नाम वहाँ अत्रीश्वर हुआ। (अध्याय २—४)

☆

ऋषिकापर भगवान् शिवकी कृपा, एक असुरसे उसके धर्मकी रक्षा करके उसके आश्रममें 'नन्दिकेश' नामसे निवास करना और वर्षमें एक दिन गङ्गाका भी वहाँ आना

तदनन्तर श्रीसूतजीने जब बहुत-से शिवलिङ्गोंके कथाप्रसङ्ग सुना दिये, तब ऋषियोंने पूछा—'महामते सूतजी ! वैशाख शुक्ला सप्तमीके दिन गङ्गाजी नर्मदामें कैसे आयीं ? इसका विशेषरूपसे वर्णन कीजिये। वहाँ महादेवजीका नाम नन्दिकेश्वर कैसे हुआ ? इस बातको भी प्रसन्नतापूर्वक बताइये।'

सूतजीने कहा—महर्षियो ! एक ब्राह्मणी थी, जिसका नाम ऋषिका था। वह किसी ब्राह्मणकी पुत्री थी और एक ब्राह्मणको ही विधिपूर्वक ब्याही गयी थी। विप्रवरो ! यद्यपि वह द्विजपत्नी उत्तम व्रतका पालन करनेवाली थी, तथापि अपने पूर्वजन्मके किसी अशुभ कर्मके प्रभावसे 'बालवैधव्य' को प्राप्त हो गयी। तब वह ब्राह्मणपत्नी ब्रह्मचर्यव्रतके पालनमें तत्पर हो पार्थिवपूजनपूर्वक अत्यन्त कठोर तपस्या करने लगी। उस समय अवसर पाकर मूढ़ नामसे प्रसिद्ध एक दुष्ट और बलवान् असुर, जो बड़ा मायावी था, कामबाणसे पीड़ित होकर वहाँ गया। उस अत्यन्त सुन्दरी कामिनीको तपस्या करती देख वह असुर उसे नाना प्रकारके लोभ दिखाता हुआ उसके साथ सम्भोगकी याचना करने लगा। मुनीश्वरो ! परंतु उत्तम व्रतका पालन करने तथा शिवके ध्यानमें तत्पर रहनेवाली वह साध्वी नारी कामभावसे उसपर दृष्टि न डाल सकी। तपस्यामें लगी हुई उस ब्राह्मणीने उस असुरका सम्मान नहीं किया; क्योंकि वह अत्यन्त तपोनिष्ठ और शिवध्यानपरायणा थी। उस कृशाङ्गी युवतीसे तिरस्कृत हो उस दैत्यराज मूढ़ने उसके ऊपर क्रोध प्रकट किया और फिर अपना विकट रूप उसे दिखाया। इसके बाद उस दुष्टात्माने भयदायक दुर्वचन कहा और उस ब्राह्मणपत्नीको बारंबार त्रास

देना आरम्भ किया। उस समय वह उसके भयसे थर्रा उठी और अनेक बार स्नेहपूर्वक शिव-शिवकी पुकार करने लगी। उस तन्वङ्गी द्विजपत्नीने भगवान् शिवका पूर्णतया आश्रय ले रखा था। शिवका नाम जपनेवाली वह नारी अत्यन्त विह्वल हो अपने धर्मकी रक्षाके लिये भगवान् शम्भुकी ही शरणमें गयी।

तब शरणागतकी रक्षा, सदाचारकी

प्रतिष्ठा तथा उस ब्राह्मणीको आनन्द प्रदान करनेके लिये भगवान् शिव वहाँ प्रकट हो गये। भक्तवत्सल परमेश्वर शंकरने उस कामविह्वल दैत्यराज मूढ़को तत्काल भस्म कर दिया और ब्राह्मणीकी ओर कृपादृष्टिसे देखकर भक्तकी रक्षाके लिये दत्तचित्त हो कहा—'वर माँगो।' महेश्वरका यह वचन सुनकर उस साध्वी ब्राह्मणपत्नीने उनके उस आनन्दजनक मङ्गलमय स्वरूपका दर्शन किया। फिर सबको सुख देनेवाले परमेश्वर शम्भुको प्रणाम करके शुद्ध अन्तःकरणवाली उस साध्वीने हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर उनकी स्तुति की।

ऋषिका बोली—देवदेव महादेव! शरणागतवत्सल! आप दीनबन्धु हैं। भक्तोंकी सदा रक्षा करनेवाले ईश्वर हैं। आपने मूढ़ नामक असुरसे मेरे धर्मकी रक्षा की है; क्योंकि आपके द्वारा यह दुष्ट असुर मारा गया। ऐसा करके आपने सम्पूर्ण जगत्‌की रक्षा की है। अब आप मुझे अपने चरणोंकी परम उत्तम एवं अनन्य भक्ति प्रदान कीजिये। नाथ! यही मेरे लिये वर है। इससे अधिक और क्या हो सकता है? प्रभो! महेश्वर! मेरी दूसरी प्रार्थना भी सुनिये। आप लोगोंके उपकारके लिये यहाँ सदा स्थित रहिये।

महादेवजीने कहा—ऋषिके! तुम सदाचारिणी और विशेषतः मुझमें भक्ति रखनेवाली हो। तुमने मुझसे जो-जो वर माँगे हैं, वे सब मैंने तुम्हें दे दिये।

ब्राह्मणो! इसी बीचमें श्रीविष्णु और ब्रह्मा आदि देवता वहाँ भगवान् शिवका आविर्भाव हुआ जान हर्षसे भरे हुए आये और अत्यन्त प्रेमपूर्वक शिवको प्रणाम करके उन सबने उनका भलीभाँति पूजन किया। फिर शुद्ध हृदयसे हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर उनकी स्तुति भी की। इसी समय साध्वी देवनदी गङ्गा उस ऋषिकासे उसके भाग्यकी सराहना करती हुई प्रसन्नचित्त हो बोली।

गङ्गाने कहा—ऋषिके! वैशाखमासमें एक दिन यहाँ रहनेके लिये मुझे भी तुम्हें वचन देना चाहिये। उस दिन मैं भी इस तीर्थमें निवास करना चाहती हूँ।

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! गङ्गाजीकी यह बात सुनकर उत्तम व्रतका

पालन करनेवाली सती साध्वी ऋषिकाने लोकहितके लिये प्रसन्नतापूर्वक कहा—'बहुत अच्छा, ऐसा हो।' भगवान् शिव ऋषिकाको आनन्द प्रदान करनेके लिये अत्यन्त प्रसन्न हो उस पार्थिवलिङ्गमें अपने पूर्ण अंशसे विलीन हो गये। यह देख सब देवता आनन्दित हो शिव तथा ऋषिकाकी प्रशंसा करने लगे और अपने-अपने धामको चले गये। उस दिनसे नर्मदाका वह तीर्थ ऐसा उत्तम और पावन हो गया तथा सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाले शिव वहाँ नन्दिकेश्वरके नामसे विख्यात हुए। गङ्गा भी प्रतिवर्ष वैशाखमासकी सप्तमीके दिन शुक्लकी इच्छासे अपने उस पापको धोनेके लिये वहाँ जाती हैं, जो मनुष्योंसे वे ग्रहण किया करती हैं। (अध्याय ५—७)

☆

प्रथम ज्योतिर्लिङ्ग सोमनाथके प्रादुर्भावकी कथा और उसकी महिमा

तदनन्तर कपिला नगरीके कालेश्वर, रामेश्वर आदिकी महिमा बताते हुए सूतजीने समुद्रके तटपर स्थित गोकर्णक्षेत्रके शिवलिङ्गोंकी महिमाका वर्णन किया। फिर महाबल नामक शिवलिङ्गका अद्भुत माहात्म्य सुनाकर अन्य बहुत-से शिवलिङ्गोंकी विचित्र माहात्म्य-कथाका वर्णन करनेके पश्चात् ऋषियोंके पूछनेपर वे ज्योतिर्लिङ्गोंका वर्णन करने लगे।

सूतजी बोले—ब्राह्मणो! मैंने सद्गुरुसे जो कुछ सुना है, वह ज्योतिर्लिङ्गोंका माहात्म्य तथा उनके प्राकट्यका प्रसङ्ग अपनी बुद्धिके अनुसार संक्षेपसे ही सुनाऊँगा। तुम सब लोग सुनो। मुने! ज्योतिर्लिङ्गोंमें सबसे पहले सोमनाथका नाम आता है; अतः पहले उन्हींके माहात्म्यको सावधान होकर सुनो। मुनीश्वरो! महामना प्रजापति दक्षने अपनी अश्विनी आदि सत्ताईस कन्याओंका विवाह चन्द्रमाके साथ किया था। चन्द्रमाको स्वामीके रूपमें पाकर वे दक्षकन्याएँ विशेष शोभा पाने लगीं तथा चन्द्रमा भी उन्हें पत्नीके रूपमें पाकर निरन्तर सुशोभित होने लगे। उन सब पत्नियोंमें भी जो रोहिणी नामकी पत्नी थी, एकमात्र वही चन्द्रमाको जितनी प्रिय थी, उतनी दूसरी कोई पत्नी कदापि प्रिय नहीं हुई। इससे दूसरी स्त्रियोंको बड़ा दुःख हुआ। वे सब अपने पिताकी शरणमें गयीं। वहाँ जाकर उन्होंने जो भी दुःख था, उसे पिताको निवेदन किया। द्विजो! वह सब सुनकर दक्ष भी दुःखी हो गये और चन्द्रमाके पास आकर शान्तिपूर्वक बोले।

दक्षने कहा—कलानिधे! तुम निर्मल कुलमें उत्पन्न हुए हो। तुम्हारे आश्रयमें रहनेवाली जितनी स्त्रियाँ हैं, उन सबके प्रति तुम्हारे मनमें न्यूनाधिकभाव क्यों है? तुम किसीको अधिक और किसीको कम प्यार क्यों करते हो? अबतक जो किया, सो किया, अब आगे फिर कभी ऐसा विषमता-पूर्ण बर्ताव तुम्हें नहीं करना चाहिये; क्योंकि उसे नरक देनेवाला बताया गया है।

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! अपने दामाद चन्द्रमासे स्वयं ऐसी प्रार्थना करके प्रजापति दक्ष घरको चले गये। उन्हें पूर्ण निश्चय हो गया था कि अब फिर आगे ऐसा नहीं होगा। पर चन्द्रमाने प्रबल भावीसे

विवश होकर उनकी बात नहीं मानी। वे रोहिणीमें इतने आसक्त हो गये थे कि दूसरी किसी पत्नीका कभी आदर नहीं करते थे। इस बातको सुनकर दक्ष दुःखी हो फिर स्वयं आकर चन्द्रमाको उत्तम नीतिसे समझाने तथा न्यायोचित बर्तावके लिये प्रार्थना करने लगे।

दक्ष बोले—चन्द्रमा ! सुनो, मैं पहले अनेक बार तुमसे प्रार्थना कर चुका हूँ। फिर भी तुमने मेरी बात नहीं मानी। इसलिये आज शाप देता हूँ कि तुम्हें क्षयका रोग हो जाय।

सूतजी कहते हैं—दक्षके इतना कहते ही क्षणभरमें चन्द्रमा क्षयरोगसे ग्रस्त हो गये। उनके क्षीण होते ही उस समय सब ओर महान् हाहाकार मच गया। सब देवता और ऋषि कहने लगे कि 'हाय ! हाय ! अब क्या करना चाहिये, चन्द्रमा कैसे ठीक होंगे ?' मुने ! इस प्रकार दुःखमें पड़कर वे सब लोग विह्वल हो गये। चन्द्रमाने इन्द्र आदि सब देवताओं तथा ऋषियोंको अपनी अवस्था सूचित की। तब इन्द्र आदि देवता तथा वसिष्ठ आदि ऋषि ब्रह्माजीकी शरणमें गये।

उनकी बात सुनकर ब्रह्माजीने कहा—देवताओ ! जो हुआ, सो हुआ। अब वह निश्चय ही पलट नहीं सकता। अतः उसके निवारणके लिये मैं तुम्हें एक उत्तम उपाय बताता हूँ। आदरपूर्वक सुनो। चन्द्रमा देवताओंके साथ प्रभास नामक शुभ क्षेत्रमें जायँ और वहाँ मृत्युञ्जयमन्त्रका विधिपूर्वक अनुष्ठान करते हुए भगवान् शिवकी आराधना करें। अपने सामने शिवलिङ्गकी स्थापना करके वहाँ चन्द्रदेव नित्य तपस्या करें। इससे प्रसन्न होकर शिव उन्हें क्षयरहित कर देंगे।

तब देवताओं तथा ऋषियोंके कहनेसे ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार चन्द्रमाने वहाँ छः महीनेतक निरन्तर तपस्या की, मृत्युञ्जय-मन्त्रसे भगवान् वृषभध्वजका पूजन किया। दस करोड़ मन्त्रका जप और मृत्युञ्जयका ध्यान करते हुए चन्द्रमा वहाँ स्थिरचित्त होकर लगातार खड़े रहे। उन्हें तपस्या करते देख भक्तवत्सल भगवान् शंकर प्रसन्न हो उनके सामने प्रकट हो गये और अपने भक्त चन्द्रमासे बोले।

शंकरजीने कहा—चन्द्रदेव ! तुम्हारा कल्याण हो; तुम्हारे मनमें जो अभीष्ट हो, वह वर माँगो ! मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हें सम्पूर्ण उत्तम वर प्रदान करूँगा।

चन्द्रमा बोले—देवेश्वर ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मेरे लिये क्या असाध्य हो सकता है; तथापि प्रभो ! शंकर ! आप मेरे शरीरके इस क्षयरोगका निवारण कीजिये। मुझसे जो अपराध बन गया हो, उसे क्षमा कीजिये।

शिवजीने कहा—चन्द्रदेव ! एक पक्षमें

प्रतिदिन तुम्हारी कला क्षीण हो और दूसरे पक्षमें फिर वह निरन्तर बढ़ती रहे।

तदनन्तर चन्द्रमाने भक्तिभावसे भगवान् शंकरकी स्तुति की। इससे पहले निराकार होते हुए भी वे भगवान् शिव फिर साकार हो गये। देवताओंपर प्रसन्न हो उस क्षेत्रके माहात्म्यको बढ़ाने तथा चन्द्रमाके यशका विस्तार करनेके लिये भगवान् शंकर उन्हींके नामपर वहाँ सोमेश्वर कहलाये और सोमनाथके नामसे तीनों लोकोंमें विख्यात हुए। ब्राह्मणो! सोमनाथका पूजन करनेसे वे उपासकके क्षय तथा कोढ़ आदि रोगोंका नाश कर देते हैं। ये चन्द्रमा धन्य हैं, कृतकृत्य हैं, जिनके नामसे तीनों लोकोंके स्वामी साक्षात् भगवान् शंकर भूतलको पवित्र करते हुए प्रभासक्षेत्रमें विराजमान हैं। वहीं सम्पूर्ण देवताओंने सोमकुण्डकी भी स्थापना की है, जिसमें शिव और ब्रह्माका सदा निवास माना जाता है। चन्द्रकुण्ड इस भूतलपर पापनाशन तीर्थके रूपमें प्रसिद्ध है। जो मनुष्य उसमें स्नान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। क्षय आदि जो असाध्य रोग होते हैं, वे सब उस कुण्डमें छः मासतक स्नान करनेमात्रसे नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य जिस फलके उद्देश्यसे इस उत्तम तीर्थका सेवन करता है, उस फलको सर्वथा प्राप्त कर लेता है—इसमें संशय नहीं है।

चन्द्रमा नीरोग होकर अपना पुराना कार्य सँभालने लगे। इस प्रकार मैंने सोमनाथकी उत्पत्तिका सारा प्रसङ्ग सुना दिया। मुनीश्वरो! इस तरह सोमेश्वरलिङ्गका प्रादुर्भाव हुआ है। जो मनुष्य सोमनाथके प्रादुर्भावकी इस कथाको सुनता अथवा दूसरोंको सुनाता है, वह सम्पूर्ण अभीष्टको पाता और सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

(अध्याय ८—१४)

☆

मल्लिकार्जुन और महाकालनामक ज्योतिर्लिङ्गोंके आविर्भावकी कथा तथा उनकी महिमा

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! अब मैं मल्लिकार्जुनके प्रादुर्भावका प्रसङ्ग सुनाता हूँ, जिसे सुनकर बुद्धिमान् पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जब महाबली तारकशत्रु शिवापुत्र कुमार कार्तिकेय सारी पृथ्वीकी परिक्रमा करके फिर कैलास पर्वतपर आये और गणेशके विवाह आदिकी बात सुनकर क्रौञ्च पर्वतपर चले गये, पार्वती और शिवजीके वहाँ जाकर अनुरोध करनेपर भी नहीं लौटे तथा वहाँसे भी बारह कोस दूर चले गये, तब शिव और पार्वती ज्योतिर्मय स्वरूप धारण करके वहाँ प्रतिष्ठित हो गये। वे दोनों पुत्रस्नेहसे आतुर हो पर्वके दिन अपने पुत्र कुमारको देखनेके लिये उनके पास जाया करते हैं। अमावस्याके दिन भगवान् शंकर स्वयं वहाँ जाते हैं और पौर्णमासीके दिन पार्वतीजी निश्चय ही वहाँ पदार्पण करती हैं। उसी दिनसे लेकर भगवान् शिवका मल्लिकार्जुन नामक एक लिङ्ग तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हुआ। (उसमें पार्वती और शिव दोनोंकी ज्योतियाँ प्रतिष्ठित हैं। 'मल्लिका'का अर्थ पार्वती है और 'अर्जुन' शब्द शिवका वाचक है।) उस लिङ्गका जो दर्शन करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो

जाता है और सम्पूर्ण अभीष्टको प्राप्त कर लेता है। इसमें संशय नहीं है। इस प्रकार मल्लिकार्जुन नामक द्वितीय ज्योतिर्लिङ्गका वर्णन किया गया, जो दर्शनमात्रसे लोगोंके लिये सब प्रकारका सुख देनेवाला बताया गया है।

ऋषियोंने कहा—प्रभो! अब आप विशेष कृपा करके तीसरे ज्योतिर्लिङ्गका वर्णन कीजिये।

सूतजीने कहा—ब्राह्मणो! मैं धन्य हूँ, कृतकृत्य हूँ, जो आप श्रीमानोंका सङ्ग मुझे प्राप्त हुआ। साधु पुरुषोंका सङ्ग निश्चय ही धन्य है। अतः मैं अपना सौभाग्य समझकर पापनाशिनी परम पावनी दिव्य कथाका वर्णन करता हूँ। तुमलोग आदरपूर्वक सुनो। अवन्ति नामसे प्रसिद्ध एक रमणीय नगरी है, जो समस्त देहधारियोंको मोक्ष प्रदान करनेवाली है। वह भगवान् शिवको बहुत ही प्रिय, परम पुण्यमयी और लोकपावनी है। उस पुरीमें एक श्रेष्ठ ब्राह्मण रहते थे, जो शुभकर्मपरायण, वेदोंके स्वाध्यायमें संलग्न तथा वैदिक कर्मोंके अनुष्ठानमें सदा तत्पर रहनेवाले थे। वे घरमें अग्निकी स्थापना करके प्रतिदिन अग्निहोत्र करते और शिवकी पूजामें सदा तत्पर रहते थे। वे ब्राह्मण देवता प्रतिदिन पार्थिव शिवलिङ्ग बनाकर उसकी पूजा किया करते थे। वेदप्रिय नामक वे ब्राह्मण देवता सम्यक् ज्ञानार्जनमें लगे रहते थे; इसलिये उन्होंने सम्पूर्ण कर्मोंका फल पाकर वह सद्गति प्राप्त कर ली, जो संतोंको ही सुलभ होती है। उनके शिवपूजापरायण चार तेजस्वी पुत्र थे, जो पिता-मातासे सद्गुणोंमें कम नहीं थे। उनके नाम थे—देवप्रिय, प्रियमेधा, सुकृत और सुव्रत। उनके सुखदायक गुण वहाँ सदा बढ़ने लगे। उनके कारण अवन्ति नगरी ब्रह्मतेजसे परिपूर्ण हो गयी थी।

उसी समय रत्नमाल पर्वतपर दूषण नामक एक धर्मद्वेषी असुरने ब्रह्माजीसे वर पाकर वेद, धर्म तथा धर्मात्माओंपर आक्रमण किया। अन्तमें उसने सेना लेकर अवन्ति (उज्जैन) के ब्राह्मणोंपर भी चढ़ाई कर दी। उसकी आज्ञासे चार भयानक दैत्य चारों दिशाओंमें प्रलयाग्निके समान प्रकट हो गये, परंतु वे शिवविश्वासी ब्राह्मण-बन्धु उनसे डरे नहीं। जब नगरके ब्राह्मण बहुत घबरा गये, तब उन्होंने उनको आश्वासन देते हुए कहा—'आपलोग भक्तवत्सल भगवान् शंकरपर भरोसा रखें।' यों कह शिव-लिङ्गका पूजन करके वे भगवान् शिवका ध्यान करने लगे।

इतनेमें ही सेनासहित दूषणने आकर उन ब्राह्मणोंको देखा और कहा—'इन्हें मार डालो, बाँध लो।' वेदप्रियके पुत्र उन ब्राह्मणोंने उस समय उस दैत्यकी कही हुई वह बात नहीं सुनी; क्योंकि वे भगवान् शम्भुके ध्यान-मार्गमें स्थित थे। उस दुष्टात्मा दैत्यने ज्यों ही उन ब्राह्मणोंको मारनेकी इच्छा की, त्यों ही उनके द्वारा पूजित पार्थिव शिवलिङ्गके स्थानमें बड़ी भारी आवाजके साथ एक गड्ढा प्रकट हो गया। उस गड्ढेसे तत्काल विकटरूपधारी भगवान् शिव प्रकट हो गये, जो महाकाल नामसे विख्यात हुए। वे दुष्टोंके विनाशक तथा सत्पुरुषोंके आश्रयदाता हैं। उन्होंने उन दैत्योंसे कहा—'अरे खल! मैं तुझ-जैसे दुष्टोंके लिये महाकाल प्रकट हुआ हूँ। तुम इन ब्राह्मणोंके निकटसे दूर भाग जाओ।'

ऐसा कहकर महाकाल शंकरने सेनासहित दूषणको अपने हुंकारमात्रसे तत्काल भस्म कर दिया। कुछ सेना उनके द्वारा मारी गयी और कुछ भाग खड़ी हुई। परमात्मा शिवने दूषणका वध कर डाला। जैसे सूर्यको देखकर सम्पूर्ण अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार भगवान् शिवको देखकर उसकी सारी सेना अदृश्य हो गयी। देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। उन ब्राह्मणोंको आश्वासन दे सुप्रसन्न हुए स्वयं महाकाल महेश्वर शिवने उनसे कहा—'तुमलोग वर माँगो।' उनकी यह बात सुनकर वे सब ब्राह्मण हाथ जोड़ भक्ति-भावसे भलीभाँति प्रणाम करके नतमस्तक हो बोले।

द्विजोंने कहा—महाकाल ! महादेव ! दुष्टोंको दण्ड देनेवाले प्रभो ! शम्भो ! आप हमें संसारसागरसे मोक्ष प्रदान करें। शिव ! आप जनसाधारणकी रक्षाके लिये सदा यहीं रहें। प्रभो ! शम्भो ! अपना दर्शन करनेवाले मनुष्योंका आप सदा ही उद्धार करें।

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! उनके ऐसा कहनेपर उन्हें सद्गति दे भगवान् शिव अपने भक्तोंकी रक्षाके लिये उस परम सुन्दर गड्ढेमें स्थित हो गये। वे ब्राह्मण मोक्ष पा गये और वहाँ चारों ओरकी एक-एक कोस भूमि लिङ्गरूपी भगवान् शिवका स्थल बन गयी। वे शिव भूतलपर महाकालेश्वरके नामसे विख्यात हुए। ब्राह्मणो ! उनका दर्शन करनेसे स्वप्नमें भी कोई दुःख नहीं होता। जिस-जिस कामनाको लेकर कोई उस लिङ्गकी उपासना करता है, उसे वह अपना मनोरथ प्राप्त हो जाता है तथा परलोकमें मोक्ष भी मिल जाता है।

(अध्याय १५-१६)

☆

महाकालके माहात्म्यके प्रसङ्गमें शिवभक्त राजा चन्द्रसेन तथा गोप-बालक श्रीकरकी कथा

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! भक्तोंकी रक्षा करनेवाले महाकाल नामक ज्योतिर्लिङ्गका माहात्म्य भक्तिभावको बढ़ानेवाला है। उसे आदरपूर्वक सुनो। उज्जयिनीमें चन्द्रसेन नामक एक महान् राजा थे, जो सम्पूर्ण शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ, शिवभक्त और जितेन्द्रिय थे। शिवके पार्षदोंमें प्रधान तथा सर्वलोकवन्दित मणिभद्रजी राजा चन्द्रसेनके सखा हो गये थे। एक समय उन्होंने राजापर प्रसन्न होकर उन्हें चिन्तामणि नामक महामणि प्रदान की, जो कौस्तुभ-मणि तथा सूर्यके समान देदीप्यमान थी। वह

देखने, सुनने अथवा ध्यान करनेपर भी मनुष्योंको निश्चय ही मङ्गल प्रदान करती थी। भगवान् शिवके आश्रित रहनेवाले राजा चन्द्रसेन उस चिन्तामणिको कण्ठमें धारण करके जब सिंहासनपर बैठते, तब देवताओंमें सूर्य नारायणकी भाँति उनकी शोभा होती थी। नृपश्रेष्ठ चन्द्रसेनके कण्ठमें चिन्तामणि शोभा देती है, यह सुनकर समस्त राजाओंके मनमें उस मणिके प्रति लोभकी मात्रा बढ़ गयी और वे क्षुब्ध रहने लगे। तदनन्तर वे सब राजा चतुरङ्गिणी सेनाके साथ आकर युद्धमें चन्द्रसेनको जीतनेके लिये उद्यत हो गये। वे सब परस्पर मिल गये थे और उसके साथ बहुत-से सैनिक थे। उन्होंने आपसमें संकेत और सलाह करके आक्रमण किया और उज्जयिनीके चारों द्वारोंको घेर लिया। अपनी पुरीको सम्पूर्ण राजाओंद्वारा घिरी हुई देख राजा चन्द्रसेन उन्हीं भगवान् महाकालेश्वरकी शरणमें गये और मनको संदेहरहित करके दृढ़ निश्चयके साथ उपवासपूर्वक दिन-रात अनन्यभावसे महाकालकी आराधना करने लगे।

उन्हीं दिनों उस श्रेष्ठ नगरमें कोई ग्वालिन रहती थी, जिसके एकमात्र पुत्र था। वह विधवा थी और उज्जयिनीमें बहुत दिनोंसे रहती थी। वह अपने पाँच वर्षके बालकको लिये हुए महाकालके मन्दिरमें गयी और उसने राजा चन्द्रसेनद्वारा की हुई महाकालकी पूजाका आदरपूर्वक दर्शन किया। राजाके शिवपूजनका वह आश्चर्यमय उत्सव देखकर उसने भगवान्‌को प्रणाम किया और फिर वह अपने निवास-स्थानपर लौट आयी। ग्वालिनके उस बालकने भी वह सारी पूजा देखी थी। अतः घर आनेपर उसने कौतूहलवश शिवजीकी पूजा करनेका विचार किया। एक सुन्दर पत्थर लाकर उसे अपने शिविरसे थोड़ी ही दूरपर दूसरे शिविरके एकान्त स्थानमें रख दिया और उसीको शिवलिङ्ग माना। फिर उसने भक्तिपूर्वक कृत्रिम गन्ध, अलंकार, वस्त्र, धूप, दीप और अक्षत आदि द्रव्य जुटाकर उनके द्वारा पूजन करके मनःकल्पित दिव्य नैवेद्य भी अर्पित किया। सुन्दर-सुन्दर पत्तों और फूलोंसे बारंबार पूजन करके भाँति-भाँतिसे नृत्य किया और बारंबार भगवान्‌के चरणोंमें मस्तक झुकाया। इसी समय ग्वालिनने भगवान् शिवमें आसक्तचित्त हुए अपने पुत्रको बड़े प्यारसे भोजनके लिये बुलाया। परंतु उसका मन तो भगवान् शिवकी पूजामें लगा हुआ था। अतः जब बारंबार बुलानेपर भी उस बालकको भोजन करनेकी इच्छा नहीं हुई, तब उसकी माँ स्वयं उसके पास गयी और उसे शिवके आगे आँख बंद करके ध्यान लगाये बैठा देख उसका हाथ पकड़कर खींचने लगी। इतनेपर भी जब वह न उठा, तब उसने क्रोधमें आकर उसे खूब पीटा। खींचने और मारने-पीटनेपर भी जब उसका पुत्र नहीं आया, तब उसने वह शिवलिङ्ग उठाकर दूर फेंक दिया और उसपर चढ़ायी हुई सारी पूजा-सामग्री नष्ट कर दी। यह देख बालक 'हाय-हाय' करके रो उठा। रोषसे भरी हुई ग्वालिन अपने बेटेको डाँट-फटकारकर पुनः घरमें चली गयी। भगवान् शिवकी पूजाको माताके द्वारा नष्ट की गयी देख वह बालक 'देव! देव! महादेव!' की पुकार करते हुए सहसा मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। उसके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा प्रवाहित होने

लगी। दो घड़ी बाद जब उसे चेत हुआ, तब उसने आँखें खोलीं।

आँख खुलनेपर उस शिशुने देखा, उसका वही शिविर भगवान् शिवके अनुग्रहसे तत्काल महाकालका सुन्दर मन्दिर बन गया, मणियोंके चमकीले खंभे उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। वहाँकी भूमि स्फटिकमणिसे जड़ दी गयी थी। तपाये हुए सोनेके बहुत-से विचित्र कलश उस शिवालयको सुशोभित करते थे। उसके विशाल द्वार, कपाट और प्रधान द्वार सुवर्णमय दिखायी देते थे। वहाँ बहुमूल्य नीलमणि तथा हीरेके बने हुए चबूतरे शोभा दे रहे थे। उस शिवालयके मध्यभागमें दयानिधान शंकरका रत्नमय लिङ्ग प्रतिष्ठित था। ग्वालिनके उस पुत्रने देखा, उस शिवलिङ्गपर उसकी अपनी ही चढ़ायी हुई पूजन-सामग्री सुसज्जित है। यह सब देख वह बालक सहसा उठकर खड़ा हो गया। उसे मन-ही-मन बड़ा आश्चर्य हुआ और वह परमानन्दके समुद्रमें निमग्न-सा हो गया। तदनन्तर भगवान् शिवकी स्तुति करके उसने बारंबार उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और सूर्यास्त होनेके पश्चात् वह गोप-बालक शिवालयसे बाहर निकला। बाहर आकर उसने अपने शिविरको देखा। वह इन्द्रभवनके समान शोभा पा रहा था। वहाँ सब कुछ तत्काल सुवर्णमय होकर विचित्र एवं परम उज्ज्वल वैभवसे प्रकाशित होने लगा। फिर वह उस भवनके भीतर गया, जो सब प्रकारकी शोभाओंसे सम्पन्न था। उस भवनमें सर्वत्र मणि, रत्न और सुवर्ण ही जड़े गये थे। प्रदोषकालमें सानन्द भीतर प्रवेश करके बालकने देखा, उसकी माँ दिव्य लक्षणोंसे लक्षित हो एक सुन्दर पलंगपर सो रही है। रत्नमय अलंकारोंसे उसके सभी अंग उद्दीप्त हो रहे हैं और वह साक्षात् देवाङ्गनाके समान दिखायी देती है। सुखसे विह्वल हुए उस बालकने अपनी माताको बड़े वेगसे उठाया। वह भगवान् शिवकी कृपापात्र हो चुकी थी। ग्वालिनने उठकर देखा, सब कुछ अपूर्व-सा हो गया था। उसने महान् आनन्दमें निमग्न हो अपने बेटेको छातीसे लगा लिया। पुत्रके मुखसे गिरिजापतिके कृपाप्रसादका वह सारा वृत्तान्त सुनकर ग्वालिनने राजाको सूचना दी, जो निरन्तर भगवान् शिवके भजनमें लगे रहते थे। राजा अपना नियम पूरा करके रातमें सहसा वहाँ आये और ग्वालिनके पुत्रका वह प्रभाव, जो शंकरजीको संतुष्ट करनेवाला था, देखा। मन्त्रियों और पुरोहितोंसहित राजा चन्द्रसेन वह सब कुछ देख परमानन्दके समुद्रमें डूब गये और नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बहाते तथा प्रसन्नतापूर्वक शिवके नामका कीर्तन करते हुए उन्होंने उस बालकको हृदयसे लगा लिया। ब्राह्मणो! उस समय वहाँ बड़ा भारी उत्सव होने लगा। सब लोग आनन्दविभोर होकर महेश्वरके नाम और यशका कीर्तन करने लगे। इस प्रकार शिवका यह अद्भुत माहात्म्य देखनेसे पुरवासियोंको बड़ा हर्ष हुआ और इसीकी चर्चामें वह सारी रात एक क्षणके समान व्यतीत हो गयी।

युद्धके लिये नगरको चारों ओरसे घेरकर खड़े हुए राजाओंने भी प्रातःकाल अपने गुप्तचरोंके मुखसे वह सारा अद्भुत चरित्र सुना। उसे सुनकर सब आश्चर्यसे चकित हो गये और वहाँ आये हुए सब नरेश

एकत्र हो आपसमें इस प्रकार बोले—'ये राजा चन्द्रसेन बड़े भारी शिवभक्त हैं; अतएव इनपर विजय पाना कठिन है। ये सर्वथा निर्भय होकर महाकालकी नगरी उज्जयिनीका पालन करते हैं। जिसकी पुरीके बालक भी ऐसे शिवभक्त हैं, वे राजा चन्द्रसेन तो महान् शिवभक्त हैं ही। इनके साथ विरोध करनेसे निश्चय ही भगवान् शिव क्रोध करेंगे और उनके क्रोधसे हम सब लोग नष्ट हो जायँगे। अतः इन नरेशके साथ हमें मेल-मिलाप ही कर लेना चाहिये। ऐसा होनेपर महेश्वर हमपर बड़ी कृपा करेंगे।'

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! ऐसा निश्चय करके शुद्ध हृदयवाले उन सब भूपालोंने हथियार डाल दिये। उनके मनसे वैरभाव निकल गया। वे सभी राजा अत्यन्त प्रसन्न हो चन्द्रसेनकी अनुमति ले महाकालकी उस रमणीय नगरीके भीतर गये। वहाँ उन्होंने महाकालका पूजन किया। फिर वे सब-के-सब उस ग्वालिनके महान् अभ्युदयपूर्ण दिव्य सौभाग्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए उनके घरपर गये। वहाँ राजा चन्द्रसेनने आगे बढ़कर उनका स्वागत-सत्कार किया। वे बहुमूल्य आसनोंपर बैठे और आश्चर्यचकित एवं आनन्दित हुए। गोपबालकके ऊपर कृपा करनेके लिये स्वतः प्रकट हुए शिवालय और शिवलिङ्गका दर्शन करके उन सब राजाओंने अपनी उत्तम बुद्धि भगवान् शिवके चिन्तनमें लगायी। तदनन्तर उन सारे नरेशोंने भगवान् शिवकी कृपा प्राप्त करनेके लिये उस गोपशिशुको बहुत-सी वस्तुएँ प्रसन्नतापूर्वक भेंट कीं। सम्पूर्ण जनपदोंमें जो बहुसंख्यक गोप रहते थे, उन सबका राजा उन्होंने उसी बालकको बना दिया।

इसी समय समस्त देवताओंसे पूजित परम तेजस्वी वानरराज हनुमान्‌जी वहाँ प्रकट हुए। उनके आते ही सब राजा बड़े वेगसे उठकर खड़े हो गये। उन सबने भक्तिभावसे विनम्र होकर उन्हें मस्तक झुकाया। राजाओंसे पूजित हो वानरराज हनुमान्‌जी उन सबके बीचमें बैठे और उस गोपबालक-को हृदयसे लगाकर उन नरेशोंकी ओर देखते हुए बोले—'राजाओ! तुम सब लोग तथा दूसरे देहधारी भी मेरी बात सुनें। इससे तुम लोगोंका भला होगा। भगवान् शिवके सिवा देहधारियोंके लिये दूसरी कोई गति नहीं है। यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि इस गोपबालकने शिवकी पूजाका दर्शन करके उससे प्रेरणा ली और बिना मन्त्रके भी शिवका पूजन करके उन्हें पा लिया। गोपवंशकी कीर्ति बढ़ानेवाला यह बालक भगवान् शंकरका श्रेष्ठ भक्त है। इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करके अन्तमें यह मोक्ष प्राप्त कर लेगा। इसकी वंशपरम्पराके

अन्तर्गत आठवीं पीढ़ीमें महायशस्वी नन्द उत्पन्न होंगे, जिनके यहाँ साक्षात् भगवान् नारायण उनके पुत्ररूपसे प्रकट हो श्रीकृष्ण नामसे प्रसिद्ध होंगे। आजसे यह गोपकुमार इस जगत्में श्रीकरके नामसे विशेष ख्याति प्राप्त करेगा।'

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! ऐसा कहकर अञ्जनीनन्दन शिवस्वरूप वानरराज हनुमान्‌जीने समस्त राजाओं तथा महाराज चन्द्रसेनको भी कृपादृष्टिसे देखा। तदनन्तर उन्होंने उस बुद्धिमान् गोपबालक श्रीकरको बड़ी प्रसन्नताके साथ शिवोपासनाके उस आचार-व्यवहारका उपदेश दिया, जो भगवान् शिवको बहुत प्रिय है। इसके बाद परम प्रसन्न हुए हनुमान्‌जी चन्द्रसेन और श्रीकरसे विदा ले उन सब राजाओंके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये। वे सब राजा हर्षमें भरकर सम्मानित हो महाराज चन्द्रसेनकी आज्ञा ले जैसे आये थे, वैसे ही लौट गये। महातेजस्वी श्रीकर भी हनुमान्‌जीका उपदेश पाकर धर्मज्ञ ब्राह्मणोंके साथ शंकरजीकी उपासना करने लगा। महाराज चन्द्रसेन और गोपबालक श्रीकर दोनों ही बड़ी प्रसन्नताके साथ महाकालकी सेवा करते थे। उन्हींकी आराधना करके उन दोनोंने परम पद प्राप्त कर लिया। इस प्रकार महाकाल नामक शिवलिङ्ग सत्पुरुषोंका आश्रय है। भक्तवत्सल शंकर दुष्ट पुरुषोंका सर्वथा हनन करनेवाले हैं। यह परम पवित्र रहस्यमय आख्यान कहा गया है, जो सब प्रकारका सुख देनेवाला है। यह शिवभक्तिको बढ़ाने तथा स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला है।

(अध्याय १७)

☆

विन्ध्यकी तपस्या, ओंकारमें परमेश्वरलिङ्गके प्रादुर्भाव और उसकी महिमाका वर्णन

ऋषियोंने कहा—महाभाग सूतजी! आपने अपने भक्तकी रक्षा करनेवाले महाकाल नामक शिवलिङ्गकी बड़ी अद्भुत कथा सुनायी है। अब कृपा करके चौथे ज्योतिर्लिङ्गका परिचय दीजिये—ओंकार तीर्थमें सर्वपातकहारी परमेश्वरका जो ज्योतिर्लिङ्ग है, उसके आविर्भावकी कथा सुनाइये।

सूतजी बोले—महर्षियो! ओंकार तीर्थमें परमेशसंज्ञक ज्योतिर्लिङ्ग जिस प्रकार प्रकट हुआ, वह बताता हूँ; प्रेमसे सुनो। एक समयकी बात है, भगवान् नारद मुनि गोकर्ण नामक शिवके समीप जा बड़ी भक्तिके साथ उनकी सेवा करने लगे। कुछ कालके बाद वे मुनिश्रेष्ठ वहाँसे गिरिराज विन्ध्यपर आये और विन्ध्यने वहाँ बड़े आदरके साथ उनका पूजन किया। मेरे यहाँ सब कुछ है, कभी किसी बातकी कमी नहीं होती है, इस भावको मनमें लेकर विन्ध्याचल नारदजीके सामने खड़ा हो गया। उसकी वह अभिमानभरी बात सुनकर अहंकारनाशक नारद मुनि लंबी साँस खींचकर चुपचाप खड़े रह गये। यह देख विन्ध्य पर्वतने पूछा—'आपने मेरे यहाँ कौन-सी कमी देखी है? आपके इस तरह लंबी साँस खींचनेका क्या कारण है?'

नारदजीने कहा—भैया ! तुम्हारे यहाँ सब कुछ है। फिर भी मेरु पर्वत तुमसे बहुत ऊँचा है। उसके शिखरोंका विभाग देवताओंके लोकोंमें भी पहुँचा हुआ है। किंतु तुम्हारे शिखरका भाग वहाँ कभी नहीं पहुँच सका है।

सूतजी कहते हैं—ऐसा कहकर नारदजी वहाँसे जिस तरह आये थे, उसी तरह चल दिये। परंतु विन्ध्य पर्वत 'मेरे जीवन आदिको धिक्कार है' ऐसा सोचता हुआ मन-ही-मन संतप्त हो उठा। अच्छा, 'अब मैं विश्वनाथ भगवान् शम्भुकी आराधनापूर्वक तपस्या करूँगा' ऐसा हार्दिक निश्चय करके वह भगवान् शंकरकी शरणमें गया। तदनन्तर जहाँ साक्षात् ओंकारकी स्थिति है, वहाँ प्रसन्नतापूर्वक जाकर उसने शिवकी पार्थिवमूर्ति बनायी और छः मासतक निरन्तर शम्भुकी आराधना करके शिवके ध्यानमें तत्पर हो वह अपनी तपस्याके स्थानसे हिलातक नहीं। विन्ध्याचलकी ऐसी तपस्या देखकर पार्वतीपति प्रसन्न हो गये। उन्होंने विन्ध्याचलको अपना वह स्वरूप दिखाया, जो योगियोंके लिये भी दुर्लभ है। वे प्रसन्न हो उस समय उससे बोले—'विन्ध्य ! तुम मनोवाञ्छित वर माँगो। मैं भक्तोंको अभीष्ट वर देनेवाला हूँ और तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न हूँ।'

विन्ध्य बोला—देवेश्वर शम्भो ! आप सदा ही भक्तवत्सल हैं। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे वह अभीष्ट बुद्धि प्रदान कीजिये, जो अपने कार्यको सिद्ध करनेवाली हो।

भगवान् शम्भुने उसे वह उत्तम वर दे दिया और कहा—'पर्वतराज विन्ध्य ! तुम जैसा चाहो, वैसा करो।' इसी समय देवता तथा निर्मल अन्तःकरणवाले ऋषि वहाँ आये और शंकरजीकी पूजा करके बोले—'प्रभो ! आप यहाँ स्थिररूपसे निवास करें।'

देवताओंकी यह बात सुनकर परमेश्वर शिव प्रसन्न हो गये और लोकोंको सुख देनेके लिये उन्होंने सहर्ष वैसा ही किया। वहाँ जो एक ही ओंकारलिङ्ग था, वह दो स्वरूपोंमें विभक्त हो गया। प्रणवमें जो सदाशिव थे, वे ओंकार नामसे विख्यात हुए और पार्थिवमूर्तिमें जो शिव-ज्योति प्रतिष्ठित हुई, उसकी परमेश्वर संज्ञा हुई (परमेश्वरको ही अमलेश्वर भी कहते हैं)। इस प्रकार ओंकार और परमेश्वर—ये दोनों शिवलिङ्ग भक्तोंको अभीष्ट फल प्रदान करनेवाले हैं। उस समय देवताओं और ऋषियोंने उन दोनों लिङ्गोंकी पूजा की और भगवान् वृषभध्वजको संतुष्ट करके अनेक वर प्राप्त किये। तत्पश्चात् देवता अपने-अपने स्थानको गये और विन्ध्याचल भी अधिक प्रसन्नताका अनुभव करने लगा। उसने अपने अभीष्ट कार्यको सिद्ध किया और मानसिक परितापको त्याग दिया। जो पुरुष

इस प्रकार भगवान् शंकरका पूजन करता है, वह माताके गर्भमें फिर नहीं आता और अपने अभीष्ट फलको प्राप्त कर लेता है—इसमें संशय नहीं।

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! ओंकारमें जो ज्योतिर्लिङ्ग प्रकट हुआ और उसकी आराधनासे जो फल मिलता है, वह सब यहाँ तुम्हें बता दिया। इसके बाद मैं उत्तम केदार नामक ज्योतिर्लिङ्गका वर्णन करूँगा।

(अध्याय १८)

☆

केदारेश्वर तथा भीमशंकर नामक ज्योतिर्लिङ्गोंके आविर्भावकी कथा तथा उनके माहात्म्यका वर्णन

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! भगवान् विष्णुके जो नर-नारायण नामक दो अवतार हैं और भारतवर्षके बदरिकाश्रमतीर्थमें तपस्या करते हैं, उन दोनोंने पार्थिव शिवलिङ्ग बनाकर उसमें स्थित हो पूजा ग्रहण करनेके लिये भगवान् शम्भुसे प्रार्थना की। शिवजी भक्तोंके अधीन होनेके कारण प्रतिदिन उनके बनाये हुए पार्थिवलिङ्गमें पूजित होनेके लिये आया करते थे। जब उन दोनोंके पार्थिव-पूजन करते बहुत दिन बीत गये, तब एक समय परमेश्वर शिवने प्रसन्न होकर कहा—'मैं तुम्हारी आराधनासे बहुत संतुष्ट हूँ। तुम दोनों मुझसे वर माँगो।' उस समय उनके ऐसा कहनेपर नर और नारायणने लोगोंके हितकी कामनासे कहा—'देवेश्वर ! यदि आप प्रसन्न हैं और यदि मुझे वर देना चाहते हैं तो अपने स्वरूपसे पूजा ग्रहण करनेके लिये यहीं स्थित हो जाइये।'

उन दोनों बन्धुओंके इस प्रकार अनुरोध करनेपर कल्याणकारी महेश्वर हिमालयके उस केदारतीर्थमें स्वयं ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें स्थित हो गये। उन दोनोंसे पूजित होकर

सम्पूर्ण दुःख और भयका नाश करनेवाले शम्भु लोगोंका उपकार करने और भक्तोंको दर्शन देनेके लिये स्वयं केदारेश्वरके नामसे प्रसिद्ध हो वहाँ रहते हैं। वे दर्शन और पूजन करनेवाले भक्तोंको सदा अभीष्ट वस्तु प्रदान करते हैं। उसी दिनसे लेकर जिसने भी भक्तिभावसे केदारेश्वरका पूजन किया, उसके लिये स्वप्नमें भी दुःख दुर्लभ हो गया। जो भगवान् शिवका प्रिय भक्त वहाँ शिवलिङ्गके निकट शिवके रूपसे अङ्कित वलय (कङ्कण या कड़ा) चढ़ाता है, वह उस वलययुक्त स्वरूपका दर्शन करके समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है, साथ ही जीवन्मुक्त भी हो जाता है। जो बदरीवनकी यात्रा करता है, उसे भी जीवन्मुक्ति प्राप्त होती है। नर और नारायणके तथा केदारेश्वर शिवके रूपका दर्शन करके मनुष्य मोक्षका भागी होता है, इसमें संशय नहीं है। केदारेश्वरमें भक्ति रखनेवाले जो पुरुष वहाँकी यात्रा आरम्भ करके उनके पासतक पहुँचनेके पहले मार्गमें ही मर जाते हैं, वे भी मोक्ष पा जाते हैं—इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।* केदारतीर्थमें पहुँचकर वहाँ प्रेमपूर्वक केदारेश्वरकी पूजा करके वहाँका जल पी लेनेके पश्चात् मनुष्यका फिर जन्म नहीं होता। ब्राह्मणो! इस भारतवर्षमें सम्पूर्ण जीवोंको भक्तिभावसे भगवान् नर-नारायणकी तथा केदारेश्वर शम्भुकी पूजा करनी चाहिये।

अब मैं भीमशंकर नामक ज्योतिर्लिङ्गका माहात्म्य कहूँगा। कामरूप देशमें लोकहितकी कामनासे साक्षात् भगवान् शंकर ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें अवतीर्ण हुए थे। उनका वह स्वरूप कल्याण और सुखका आश्रय है। ब्राह्मणो! पूर्वकालमें एक महापराक्रमी राक्षस हुआ था, जिसका नाम भीम था। वह सदा धर्मका विध्वंस करता और समस्त प्राणियोंको दुःख देता था। वह महाबली राक्षस कुम्भकर्णके वीर्य और कर्कटीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था तथा अपनी माताके साथ सह्य पर्वतपर निवास करता था। एक दिन समस्त लोकोंको दुःख देनेवाले भयानक पराक्रमी दुष्ट भीमने अपनी मातासे पूछा—'माँ! मेरे पिताजी कहाँ हैं? तुम अकेली क्यों रहती हो? मैं यह सब जानना चाहता हूँ। अतः यथार्थ बात बताओ।'

कर्कटी बोली—बेटा! रावणके छोटे भाई कुम्भकर्ण तेरे पिता थे। भाईसहित उस महाबली वीरको श्रीरामने मार डाला। मेरे पिताका नाम कर्कट और माताका नाम पुष्कसी था। विराध मेरे पति थे, जिन्हें पूर्वकालमें रामने मार डाला। अपने प्रिय स्वामीके मारे जानेपर मैं अपने माता-पिताके पास रहती थी। एक दिन मेरे माता-पिता अगस्त्य मुनिके शिष्य सुतीक्ष्णको अपना आहार बनानेके लिये गये। वे बड़े तपस्वी और महात्मा थे। उन्होंने कुपित होकर मेरे माता-पिताको भस्म कर डाला। वे दोनों मर गये। तबसे मैं अकेली होकर बड़े दुःखके साथ इस पर्वतपर रहने लगी। मेरा कोई अवलम्ब नहीं रह गया। मैं असहाय और

---

* केदारेशस्य भक्ता ये मार्गस्थास्तत्र वै मृताः। तेऽपि मुक्ता भवन्त्येव नात्र कार्या विचारणा॥
(शि० पु० कोटिरुद्रसंहिता १९। २२)

दुःखसे आतुर होकर यहाँ निवास करती थी। इसी समय महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न राक्षस कुम्भकर्ण जो रावणके छोटे भाई थे, यहाँ आये। उन्होंने बलात् मेरे साथ समागम किया। फिर वे मुझे छोड़कर लङ्का चले गये। तत्पश्चात् तुम्हारा जन्म हुआ। तुम भी पिताके समान ही महान् बलवान् और पराक्रमी हो। अब मैं तुम्हारा ही सहारा लेकर यहाँ कालक्षेप करती हूँ।

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! कर्कटीकी यह बात सुनकर भयानक पराक्रमी भीम कुपित हो यह विचार करने लगा कि 'मैं विष्णुके साथ कैसा बर्ताव करूँ? इन्होंने मेरे पिताको मार डाला। मेरे नाना-नानी भी उनके भक्तके हाथसे मारे गये। विराधको भी इन्होंने ही मार डाला और इस प्रकार मुझे बहुत दुःख दिया। यदि मैं अपने पिताका पुत्र हूँ तो श्रीहरिको अवश्य पीड़ा दूँगा।'

ऐसा निश्चय करके भीम महान् तप करनेके लिये चला गया। उसने ब्रह्माजीकी प्रसन्नताके लिये एक हजार वर्षोंतक महान् तप किया। तपस्याके साथ-साथ वह मन-ही-मन इष्टदेवका ध्यान किया करता था। तब लोकपितामह ब्रह्मा उसे वर देनेके लिये गये और इस प्रकार बोले।

ब्रह्माजीने कहा—भीम! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ; तुम्हारी जो इच्छा हो, उसके अनुसार वर माँगो।

भीम बोला—देवेश्वर! कमलासन! यदि आप प्रसन्न हैं और मुझे वर देना चाहते हैं तो आज मुझे ऐसा बल दीजिये, जिसकी कहीं तुलना न हो।

सूतजी कहते हैं—ऐसा कहकर उस राक्षसने ब्रह्माजीको नमस्कार किया और ब्रह्माजी भी उसे अभीष्ट वर देकर अपने धामको चले गये। ब्रह्माजीसे अत्यन्त बल पाकर राक्षस अपने घर आया और माताको प्रणाम करके शीघ्रतापूर्वक बड़े गर्वसे बोला—'माँ! अब तुम मेरा बल देखो। मैं इन्द्र आदि देवताओं तथा इनकी सहायता करनेवाले श्रीहरिका महान् संहार कर डालूँगा।' ऐसा कहकर भयानक पराक्रमी भीमने पहले इन्द्र आदि देवताओंको जीता और उन सबको अपने-अपने स्थानसे निकाल बाहर किया। तदनन्तर देवताओंकी प्रार्थनासे उनका पक्ष लेनेवाले श्रीहरिको भी उसने युद्धमें हराया। फिर प्रसन्नतापूर्वक पृथ्वीको जीतना प्रारम्भ किया। सबसे पहले वह कामरूप देशके राजा सुदक्षिणको जीतनेके लिये गया। वहाँ राजाके साथ उसका भयंकर युद्ध हुआ। दुष्ट असुर भीमने ब्रह्माजीके दिये हुए वरके प्रभावसे शिवके आश्रित रहनेवाले महावीर महाराज सुदक्षिणको परास्त कर दिया और सब सामग्रियोंसहित उनका राज्य तथा सर्वस्व अपने अधिकारमें कर लिया। भगवान् शिवके प्रिय भक्त धर्मप्रेमी परम धर्मात्मा राजाको भी उसने कैद कर लिया और उनके पैरोंमें बेड़ी डालकर उन्हें एकान्त स्थानमें बंद कर दिया। वहाँ उन्होंने भगवान्‌की प्रीतिके लिये शिवकी उत्तम पार्थिवमूर्ति बनाकर उन्हींका भजन-पूजन आरम्भ कर दिया। उन्होंने बारंबार गङ्गाजीकी स्तुति की और मानसिक स्नान आदि करके पार्थिव-पूजनकी विधिसे शंकरजीकी पूजा सम्पन्न की। विधिपूर्वक भगवान् शिवका ध्यान करके वे प्रणवयुक्त पञ्चाक्षरमन्त्र (ॐ नमः

शिवाय) का जप करने लगे। अब उन्हें दूसरा कोई काम करनेके लिये अवकाश नहीं मिलता था। उन दिनों उनकी साध्वी पत्नी राजवल्लभा दक्षिणा प्रेमपूर्वक पार्थिव-पूजन किया करती थीं। वे दम्पति अनन्यभावसे भक्तोंका कल्याण करनेवाले भगवान् शंकरका भजन करते और प्रतिदिन उन्हींकी आराधनामें तत्पर रहते थे। इधर वह राक्षस वरके अभिमानसे मोहित हो यज्ञकर्म आदि सब धर्मोंका लोप करने लगा और सबसे कहने लगा—'तुम लोग सब कुछ मुझे ही दो।' महर्षियो ! दुरात्मा राक्षसोंकी बहुत बड़ी सेना साथ ले उसने सारी पृथ्वीको अपने वशमें कर लिया। वह वेदों, शास्त्रों, स्मृतियों और पुराणोंमें बताये हुए धर्मका लोप करके शक्तिशाली होनेके कारण सबका स्वयं ही उपभोग करने लगा।

तब सब देवता तथा ऋषि अत्यन्त पीड़ित हो महाकोशीके तटपर गये और शिवका आराधन तथा स्तवन करने लगे। उनके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् शिव अत्यन्त प्रसन्न हो देवताओंसे बोले—'देवगण तथा महर्षियो ! मैं प्रसन्न हूँ। वर माँगो। तुम्हारा कौन-सा कार्य सिद्ध करूँ ?'

देवता बोले—देवेश्वर ! आप अन्तर्यामी हैं, अतः सबके मनकी सारी बातें जानते हैं। आपसे कुछ भी अज्ञात नहीं है। प्रभो ! महेश्वर ! कुम्भकर्णसे उत्पन्न कर्कटीका बलवान् पुत्र राक्षस भीम ब्रह्माजीके दिये हुए वरसे शक्तिशाली हो देवताओंको निरन्तर पीड़ा दे रहा है। अतः आप इस दुःखदायी राक्षसका नाश कर दीजिये। हमपर कृपा कीजिये, विलम्ब न कीजिये।

शम्भुने कहा—देवताओ ! कामरूप देशके राजा सुदक्षिण मेरे श्रेष्ठ भक्त हैं। उनसे मेरा एक संदेश कह दो। फिर तुम्हारा सारा कार्य शीघ्र ही पूरा हो जायगा। उनसे कहना—'कामरूप देशके अधिपति महाराज सुदक्षिण ! प्रभो ! तुम मेरे विशेष भक्त हो। अतः प्रेमपूर्वक मेरा भजन करो। दुष्ट राक्षस भीम ब्रह्माजीका वर पाकर प्रबल हो गया है। इसीलिये उसने तुम्हारा तिरस्कार किया है। परंतु अब मैं उस दुष्टको मार डालूँगा, इसमें संदेह नहीं है।'

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! तब उन सब देवताओंने प्रसन्नतापूर्वक वहाँ जाकर उन महाराजसे शम्भुकी कही हुई सारी बात कह सुनायी। उनसे यह संदेश कहकर देवताओं और महर्षियोंको बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ और वे सब-के-सब शीघ्र ही अपने-अपने आश्रमको चले गये।

इधर भगवान् शिव भी अपने गणोंके साथ लोकहितकी कामनासे अपने भक्तकी रक्षा करनेके लिये सादर उसके निकट गये और गुप्तरूपसे वहीं ठहर गये। इसी समय कामरूपनरेशने पार्थिव शिवके सामने गाढ़ ध्यान लगाना आरम्भ किया। इतनेमें ही किसीने राक्षससे जाकर कह दिया कि राजा तुम्हारे (नाशके) लिये कोई पुरश्चरण कर रहे हैं।

यह समाचार सुनते ही वह राक्षस कुपित हो उठा और उनको मार डालनेकी इच्छासे नंगी तलवार हाथमें लिये राजाके पास गया। वहाँ पार्थिव आदि जो सामग्री स्थित थी, उसे देखकर तथा उसके प्रयोजन और स्वरूपको समझकर राक्षसने यही माना कि राजा मेरे लिये कुछ कर रहा है।

अतः 'सब सामग्रियोंसहित इस नरेशको मैं बलपूर्वक अभी नष्ट कर देता हूँ, ऐसा विचारकर उस महाक्रोधी राक्षसने राजाको बहुत डाँटा और पूछा 'क्या कर रहे हो ?' राजाने भगवान् शंकरपर रक्षाका भार सौंपकर कहा—'मैं चराचर जगत्के स्वामी भगवान् शिवका पूजन करता हूँ।' तब राक्षस भीमने भगवान् शंकरके प्रति बहुत तिरस्कारयुक्त दुर्वचन कहकर राजाको धमकाया और भगवान् शंकरके पार्थिव-लिङ्गपर तलवार चलायी। वह तलवार उस पार्थिवलिङ्गका स्पर्श भी नहीं करने पायी कि उससे साक्षात् भगवान् हर वहाँ प्रकट हो गये और बोले—'देखो, मैं भीमेश्वर हूँ और अपने भक्तकी रक्षाके लिये प्रकट हुआ हूँ। मेरा पहलेसे ही यह व्रत है कि मैं सदा अपने भक्तकी रक्षा करूँ। इसलिये भक्तोंको सुख देनेवाले मेरे बलकी ओर दृष्टिपात करो।'

ऐसा कहकर भगवान् शिवने पिनाकसे उसकी तलवारके दो टुकड़े कर दिये। तब उस राक्षसने फिर अपना त्रिशूल चलाया, परंतु शम्भुने उस दुष्टके त्रिशूलके भी सैकड़ों टुकड़े कर डाले। तदनन्तर शंकरजीके साथ उसका घोर युद्ध हुआ जिससे सारा जगत् क्षुब्ध हो उठा। तब नारदजीने आकर भगवान् शंकरसे प्रार्थना की।

नारद बोले—लोगोंको भ्रममें डालनेवाले महेश्वर ! मेरे नाथ ! आप क्षमा करें, क्षमा करें। तिनकेको काटनेके लिये कुल्हाड़ा चलानेकी क्या आवश्यकता है। शीघ्र ही इसका संहार कर डालिये।

नारदजीके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भगवान् शम्भुने हुंकारमात्रसे उस समय समस्त राक्षसोंको भस्म कर डाला। मुने ! सब देवताओंके देखते-देखते शिवजीने उन सारे राक्षसोंको दग्ध कर दिया। तदनन्तर भगवान् शंकरकी कृपासे इन्द्र आदि समस्त देवताओं और मुनीश्वरोंको शान्ति मिली तथा सम्पूर्ण जगत् स्वस्थ हुआ। उस समय देवताओं और विशेषतः मुनियोंने भगवान् शंकरसे प्रार्थना की कि 'प्रभो ! आप यहाँ लोगोंको सुख देनेके लिये सदा निवास करें। यह देश निन्दित माना गया है। यहाँ आनेवाले स्त्रीगोंको प्रायः दुःख ही प्राप्त होता है। परंतु आपका दर्शन करनेसे यहाँ सबका कल्याण होगा। आप भीमशंकरके नामसे विख्यात होंगे और सबके सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि करेंगे। आपका यह ज्योतिर्लिङ्ग सदा पूजनीय और समस्त आपत्तियोंका निवारण करनेवाला होगा।'

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! उनके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर लोकहितकारी एवं भक्तवत्सल परम स्वतन्त्र शिव प्रसन्नतापूर्वक वहीं स्थित हो गये। (अध्याय १९—२१)

☆

विश्वेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग और उनकी महिमाके प्रसङ्गमें पञ्चक्रोशीकी महत्ताका प्रतिपादन

सूतजी कहते हैं—मुनिवरो ! अब मैं काशीके विश्वेश्वर नामक ज्योतिर्लिङ्गका माहात्म्य बताऊँगा, जो महापातकोंका भी नाश करनेवाला है। तुमलोग सुनो, इस भूतलपर जो कोई भी वस्तु दृष्टिगोचर होती है, वह सच्चिदानन्दस्वरूप, निर्विकार एवं

सनातन ब्रह्मरूप है। अपने कैवल्य (अद्वैत) भावमें ही रमनेवाले उन अद्वितीय परमात्मामें कभी एकसे दो हो जानेकी इच्छा जाग्रत् हुई *। फिर वे ही परमात्मा सगुणरूपमें प्रकट हो शिव कहलाये। वे शिव ही पुरुष और स्त्री दो रूपोंमें प्रकट हो गये। उनमें जो पुरुष था, उसका 'शिव' नाम हुआ और जो स्त्री हुई, उसे 'शक्ति' कहते हैं। उन चिदानन्दस्वरूप शिव और शक्तिने स्वयं अदृष्ट रहकर स्वभावसे ही दो चेतनों (प्रकृति और पुरुष) की सृष्टि की। मुनिवरो! उन दोनों माता-पिताओंको उस समय सामने न देखकर वे दोनों प्रकृति और पुरुष महान् संशयमें पड़ गये। उस समय निर्गुण परमात्मासे आकाशवाणी प्रकट हुई—'तुम दोनोंको तपस्या करनी चाहिये। फिर तुमसे परम उत्तम सृष्टिका विस्तार होगा।'

वे प्रकृति और पुरुष बोले—'प्रभो! शिव! तपस्याके लिये तो कोई स्थान है ही नहीं। फिर हम दोनों इस समय कहाँ स्थित होकर आपकी आज्ञाके अनुसार तप करें।'

तब निर्गुण शिवने तेजके सारभूत पाँच कोस लंबे-चौड़े शुभ एवं सुन्दर नगरका निर्माण किया, जो उनका अपना ही स्वरूप था। वह सभी आवश्यक उपकरणोंसे युक्त था। उस नगरका निर्माण करके उन्होंने उसे उन दोनोंके लिये भेजा। वह नगर आकाशमें पुरुषके समीप आकर स्थित हो गया। तब पुरुष—श्रीहरिने उस नगरमें स्थित हो सृष्टिकी कामनासे शिवका ध्यान करते हुए बहुत वर्षोंतक तप किया। उस समय परिश्रमके कारण उनके शरीरसे श्वेत जलकी अनेक धाराएँ प्रकट हुईं, जिनसे सारा शून्य आकाश व्याप्त हो गया। वहाँ दूसरा कुछ भी दिखायी नहीं देता था। उसे देखकर भगवान् विष्णु मन-ही-मन बोल उठे—यह कैसी अद्भुत वस्तु दिखायी देती है? उस समय इस आश्चर्यको देखकर उन्होंने अपना सिर हिलाया, जिससे उन प्रभुके सामने ही उनके एक कानसे मणि गिर पड़ी। जहाँ यह मणि गिरी, वह स्थान मणिकर्णिका नामक महान् तीर्थ हो गया। जब पूर्वोक्त जलराशिमें वह सारी पञ्चक्रोशी डूबने और बहने लगी, तब निर्गुण शिवने शीघ्र ही उसे अपने त्रिशूलके द्वारा धारण कर लिया। फिर विष्णु अपनी पत्नी प्रकृतिके साथ वहीं सोये। तब उनकी नाभिसे एक कमल प्रकट हुआ और उस कमलसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उनकी उत्पत्तिमें भी शंकरका आदेश ही कारण था। तदनन्तर

* 'स द्वितीयमैच्छत्' (बृहदारण्यक उ०—१।४।३) इस श्रुतिसे भी यही बात सिद्ध होती है।

उन्होंने शिवकी आज्ञा पाकर अद्भुत सृष्टि आरम्भ की। ब्रह्माजीने ब्रह्माण्डमें चौदह भुवन बनाये। ब्रह्माण्डका विस्तार महर्षियोंने पचास करोड़ योजनका बताया है। फिर भगवान् शिवने यह सोचा कि 'ब्रह्माण्डके भीतर कर्मपाशसे बँधे हुए प्राणी मुझे कैसे प्राप्त कर सकेंगे?' यह सोचकर उन्होंने मुक्तिदायिनी पञ्चक्रोशीको इस जगत्में छोड़ दिया।

"यह पञ्चक्रोशी काशी लोकमें कल्याण-दायिनी, कर्मबन्धनका नाश करनेवाली, ज्ञानदात्री तथा मोक्षको प्रकाशित करनेवाली मानी गयी है। अतएव मुझे परम प्रिय है। यहाँ स्वयं परमात्माने 'अविमुक्त' लिङ्गकी स्थापना की है। अतः मेरे अंशभूत हरे! तुम्हें कभी इस क्षेत्रका त्याग नहीं करना चाहिये।" ऐसा कहकर भगवान् हरने काशीपुरीको स्वयं अपने त्रिशूलसे उतार कर मर्त्यलोकके जगत्में छोड़ दिया। ब्रह्माजीका एक दिन पूरा होनेपर जब सारे जगत्का प्रलय हो जाता है, तब भी निश्चय ही इस काशीपुरीका नाश नहीं होता। उस समय भगवान् शिव इसे त्रिशूलपर धारण कर लेते हैं और जब ब्रह्माद्वारा पुनः नयी सृष्टि की जाती है, तब इसे फिर वे इस भूतलपर स्थापित कर देते हैं। कर्मोंका कर्षण करनेसे ही इस पुरीको 'काशी' कहते हैं। काशीमें अविमुक्तेश्वरलिङ्ग सदा विराजमान रहता है। वह महापातकी पुरुषोंको भी मोक्ष प्रदान करनेवाला है। मुनीश्वरो! अन्य मोक्षदायक धामोंमें सारूप्य आदि मुक्ति प्राप्त होती है। केवल इस काशीमें ही जीवोंको सायुज्य नामक सर्वोत्तम मुक्ति सुलभ होती है। जिनकी कहीं भी गति नहीं है, उनके लिये वाराणसी पुरी ही गति है। महापुण्यमयी पञ्चक्रोशी करोड़ों हत्याओंका विनाश करनेवाली है। यहाँ समस्त अमरगण भी मरणकी इच्छा करते हैं। फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या है। यह शंकरकी प्रिय नगरी काशी सदा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है।

कैलासके पति, जो भीतरसे सत्त्वगुणी और बाहरसे तमोगुणी कहे गये हैं, कालाग्नि रुद्रके नामसे विख्यात हैं। वे निर्गुण होते हुए भी सगुणरूपमें प्रकट हुए शिव हैं। उन्होंने बारंबार प्रणाम करके निर्गुण शिवसे इस प्रकार कहा।

रुद्र बोले—विश्वनाथ! महेश्वर! मैं आपका ही हूँ, इसमें संशय नहीं है। साम्ब महादेव! मुझ आत्मजपर कृपा कीजिये। जगत्पते! लोकहितकी कामनासे आपको सदा यहीं रहना चाहिये। जगन्नाथ! मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ। आप यहाँ रहकर जीवोंका उद्धार करें।

सूतजी कहते हैं—तदनन्तर मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले अविमुक्तने भी शंकरसे बारंबार प्रार्थना करके नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए ही प्रसन्नतापूर्वक उनसे कहा।

अविमुक्त बोले—कालरूपी रोगके सुन्दर औषध देवाधिदेव महादेव! आप वास्तवमें तीनों लोकोंके स्वामी तथा ब्रह्मा और विष्णु आदिके द्वारा भी सेवनीय हैं। देव! काशीपुरीको आप अपनी राजधानी स्वीकार करें। मैं अचिन्त्य सुखकी प्राप्तिके लिये यहाँ सदा आपका ध्यान लगाये स्थिरभावसे बैठा रहूँगा। आप ही मुक्ति देनेवाले तथा सम्पूर्ण कामनाओंके पूरक हैं, दूसरा कोई नहीं। अतः आप परोपकारके

लिये उमासहित सदा यहाँ विराजमान रहें। सदाशिव ! आप समस्त जीवोंको संसार-सागरसे पार करें। हर ! मैं बारंबार प्रार्थना करता हूँ कि आप अपने भक्तोंका कार्य सिद्ध करें।

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! जब विश्वनाथने भगवान् शंकरसे इस प्रकार प्रार्थना की, तब सर्वेश्वर शिव समस्त लोकोंका उपकार करनेके लिये वहाँ विराजमान हो गये। जिस दिनसे भगवान् शिव काशीमें आ गये, उसी दिनसे काशी सर्वश्रेष्ठ पुरी हो गयी। (अध्याय २२)

☆

वाराणसी तथा विश्वेश्वरका माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—मुनीश्वरो ! मैं संक्षेपसे ही वाराणसी तथा विश्वेश्वरके परम सुन्दर माहात्म्यका वर्णन करता हूँ, सुनो। एक समयकी बात है कि पार्वती देवीने लोक-हितकी कामनासे बड़ी प्रसन्नताके साथ भगवान् शिवसे अविमुक्त क्षेत्र और अविमुक्त लिङ्गका माहात्म्य पूछा।

तब परमेश्वर शिवने कहा—यह वाराणसीपुरी सदाके लिये मेरा गुह्यतम क्षेत्र है और सभी जीवोंकी मुक्तिका सर्वथा हेतु है। इस क्षेत्रमें सिद्धगण सदा मेरे व्रतका आश्रय ले नाना प्रकारके वेष धारण किये मेरे लोकको पानेकी इच्छा रखकर जितात्मा और जितेन्द्रिय हो नित्य महायोगका अभ्यास करते हैं। उस उत्तम महायोगका नाम है पाशुपत योग। उसका श्रुतियोंद्वारा प्रतिपादन हुआ है। वह भोग और मोक्षरूप फल प्रदान करनेवाला है। महेश्वरि ! वाराणसी पुरीमें निवास करना मुझे सदा ही अच्छा लगता है। जिस कारणसे मैं सब कुछ छोड़कर काशीमें रहता हूँ, उसे बताता हूँ, सुनो। जो मेरा भक्त तथा मेरे तत्त्वका ज्ञानी है, वे दोनों अवश्य ही मोक्षके भागी होते हैं। उनके लिये तीर्थकी अपेक्षा नहीं है। विहित और अविहित दोनों प्रकारके कर्म उनके लिये समान हैं। उन्हें जीवन्मुक्त ही समझना चाहिये। वे दोनों कहीं भी मरें, तुरंत ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। यह मैंने निश्चित बात कही है। सर्वोत्तमशक्ति देवी उमे ! इस परम उत्तम अविमुक्त तीर्थमें जो विशेष बात है, उसे तुम मन लगाकर सुनो। सभी वर्ण और समस्त आश्रमोंके लोग चाहे वे बालक, जवान या बूढ़े, कोई भी क्यों न हो—यदि इस पुरीमें मर जायँ तो मुक्त हो ही जाते हैं, इसमें संशय नहीं है। स्त्री अपवित्र हो या पवित्र, कुमारी हो या विवाहिता, विधवा हो या वन्ध्या, रजस्वला, प्रसूता, संस्कारहीना अथवा जैसी-तैसी—कैसी ही क्यों न हो, यदि इस क्षेत्रमें मरी हो तो अवश्य मोक्षकी भागिनी होती है—इसमें संदेह नहीं है। स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज अथवा जरायुज प्राणी जैसे यहाँ मरनेपर मोक्ष पाता है, वैसे और कहीं नहीं पाता। देवि ! यहाँ मरनेवालेके लिये न ज्ञानकी अपेक्षा है न भक्तिकी; न कर्मकी आवश्यकता है न दानकी; न कभी संस्कृतिकी अपेक्षा है और न धर्मकी ही; यहाँ नामकीर्तन, पूजन तथा उत्तम जातिकी भी अपेक्षा नहीं होती। जो मनुष्य मेरे इस मोक्षदायक क्षेत्रमें निवास करता है, वह चाहे जैसे मरे, उसके लिये मोक्षकी प्राप्ति

सुनिश्चित है। प्रिये ! मेरा यह दिव्य पुर गुह्यसे भी गुह्यतर है। ब्रह्मा आदि देवता भी इसके माहात्म्यको नहीं जानते। इसलिये यह महान् क्षेत्र अविमुक्त नामसे प्रसिद्ध है; क्योंकि नैमिष आदि सभी तीर्थोंसे यह श्रेष्ठ है। यह मरनेपर अवश्य मोक्ष देनेवाला है। धर्मका सार सत्य है, मोक्षका सार समता है तथा समस्त क्षेत्रों एवं तीर्थोंका सार यह 'अविमुक्त' तीर्थ (काशी) है—ऐसी विद्वानोंकी मान्यता है। इच्छानुसार भोजन, शयन, क्रीड़ा तथा विविध कर्मोंका अनुष्ठान करता हुआ भी मनुष्य यदि इस अविमुक्त तीर्थमें प्राणोंका परित्याग करता है तो उसे मोक्ष मिल जाता है। जिसका चित्त विषयोंमें आसक्त है और जिसने धर्मकी रुचि त्याग दी है, वह भी यदि इस क्षेत्रमें मृत्युको प्राप्त होता है तो पुनः संसार-बन्धनमें नहीं पड़ता। फिर जो ममतासे रहित, धीर, सत्त्वगुणी, दम्भहीन, कर्मकुशल और कर्तापनके अभिमानसे रहित होनेके कारण किसी भी कर्मका आरम्भ न करनेवाले हैं, उनकी तो बात ही क्या है। वे सब मुझमें ही स्थित हैं।

इस काशीपुरीमें शिवभक्तोंद्वारा अनेक शिवलिङ्ग स्थापित किये गये हैं। पार्वति ! वे सम्पूर्ण अभीष्टोंको देनेवाले और मोक्षदायक हैं। चारों दिशाओंमें पाँच-पाँच कोस फैला हुआ यह क्षेत्र 'अविमुक्त' कहा गया है, वह सब ओरसे मोक्षदायक है। जीवको मृत्यु-कालमें यह क्षेत्र उपलब्ध हो जाय तो उसे अवश्य मोक्षकी प्राप्ति होती है। यदि निष्पाप मनुष्य काशीमें मरे तो उसका तत्काल मोक्ष हो जाता है और जो पापी मनुष्य मरता है, वह कायव्यूहोंको प्राप्त होता है। उसे पहले यातनाका अनुभव करके ही पीछे मोक्षकी प्राप्ति होती है। सुन्दरि ! जो इस अविमुक्त क्षेत्रमें पातक करता है, वह हजारों वर्षोंतक भैरवी यातना पाकर पापका फल भोगनेके पश्चात् ही मोक्ष पाता है। शतकोटि कल्पोंमें भी अपने किये हुए कर्मका क्षय नहीं होता। जीवको अपने द्वारा किये गये शुभाशुभ कर्मका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। केवल अशुभ कर्म नरक देनेवाला होता है, केवल शुभ कर्म स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला होता है तथा शुभ और अशुभ दोनों कर्मोंसे मनुष्य-योनिकी प्राप्ति बतायी गयी है। अशुभ कर्मकी कमी और शुभ कर्मकी अधिकता होनेपर उत्तम जन्म प्राप्त होता है। शुभ कर्मकी कमी और अशुभ कर्मकी अधिकता होनेपर यहाँ अधम जन्मकी प्राप्ति होती है। पार्वति ! जब शुभ और अशुभ दोनों ही कर्मोंका क्षय हो जाता है, तभी जीवको सच्चा मोक्ष प्राप्त होता है। यदि किसीने पूर्वजन्ममें आदरपूर्वक काशीका दर्शन किया है, तभी उसे इस जन्ममें काशीमें पहुँचकर मृत्युकी प्राप्ति होती है। जो मनुष्य काशी जाकर गङ्गामें स्नान करता है, उसके क्रियमाण और संचित कर्मका नाश हो जाता है। परंतु प्रारब्ध कर्म भोगे बिना नष्ट नहीं होता, यह निश्चित बात है। जिसकी काशीमें मुक्ति हो जाती है, उसके प्रारब्ध कर्मका भी क्षय हो जाता है। प्रिये ! जिसने एक ब्राह्मणको भी काशीवास करवाया है, वह स्वयं भी काशीवासका अवसर पाकर मोक्ष लाभ करता है।

सूतजी कहते हैं—मुनिवरो ! इस तरह काशीका तथा विश्वेश्वरलिङ्गका प्रचुर माहात्म्य बताया गया है, जो सत्पुरुषोंको भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। इसके बाद मैं त्र्यम्बक नामक ज्योतिर्लिङ्गका माहात्म्य बताऊँगा, जिसे सुनकर मनुष्य क्षणभरमें समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।

(अध्याय २३)

☆

त्र्यम्बक ज्योतिर्लिङ्गके प्रसङ्गमें महर्षि गौतमके द्वारा किये गये परोपकारकी कथा, उनका तपके प्रभावसे अक्षय जल प्राप्त करके ऋषियोंकी अनावृष्टिके कष्टसे रक्षा करना; ऋषियोंका छलपूर्वक उन्हें गोहत्यामें फँसाकर आश्रमसे निकालना और शुद्धिका उपाय बताना

सूतजी कहते हैं—मुनिवरो ! सुनो, मैंने सद्गुरु व्यासजीके मुखसे जैसी सुनी है, उसी रूपमें एक पापनाशक कथा तुम्हें सुना रहा हूँ। पूर्वकालकी बात है, गौतम नामसे विख्यात एक श्रेष्ठ ऋषि रहते थे, जिनकी परम धार्मिक पत्नीका नाम अहल्या था। दक्षिण दिशामें जो ब्रह्मगिरि है, वहीं उन्होंने दस हजार वर्षोंतक तपस्या की थी। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महर्षियो ! एक समय वहाँ सौ वर्षोंतक बड़ा भयानक अवर्षण हो गया। सब लोग महान् दुःखमें पड़ गये। इस भूतलपर कहीं गीला पत्ता भी नहीं दिखायी देता था। फिर जीवोंका आधारभूत जल कहाँसे दृष्टिगोचर होता। उस समय मुनि, मनुष्य, पशु, पक्षी और मृग—सब वहाँसे दसों दिशाओंको चले गये। तब गौतम ऋषिने छः महीनेतक तप करके वरुणको प्रसन्न किया। वरुणने प्रकट होकर वर माँगनेको कहा—ऋषिने वृष्टिके लिये प्रार्थना की। वरुणने कहा—'देवताओंके विधानके विरुद्ध वृष्टि न करके मैं तुम्हारी इच्छाके अनुसार तुम्हें सदा अक्षय रहनेवाला जल देता हूँ। तुम एक गड्ढा तैयार करो।'

उनके ऐसा कहनेपर गौतमने एक हाथ गहरा गड्ढा खोदा और वरुणने उसे दिव्य जलके द्वारा भर दिया तथा परोपकारसे सुशोभित होनेवाले मुनिश्रेष्ठ गौतमसे कहा—'महामुने ! कभी क्षीण न होनेवाला यह जल तुम्हारे लिये तीर्थरूप होगा और पृथ्वीपर तुम्हारे ही नामसे इसकी ख्याति होगी। यहाँ किये हुए दान, होम, तप, देवपूजन तथा पितरोंका श्राद्ध—सभी अक्षय होंगे।'

ऐसा कहकर उन महर्षिसे प्रशंसित हो वरुणदेव अन्तर्धान हो गये। उस जलके द्वारा दूसरोंका उपकार करके महर्षि गौतमको भी बड़ा सुख मिला। महात्मा पुरुषका आश्रय मनुष्योंके लिये महत्त्वकी ही प्राप्ति करानेवाला होता है। महान् पुरुष ही महात्माके उस स्वरूपको देखते और समझते हैं, दूसरे अधम मनुष्य नहीं। मनुष्य जैसे पुरुषका सेवन करता है, वैसा ही फल पाता है। महान् पुरुषकी सेवासे महत्ता मिलती है और क्षुद्रकी सेवासे क्षुद्रता। उत्तम पुरुषोंका यह स्वभाव ही है कि वे दूसरोंके दुःखको नहीं सहन कर पाते। अपनेको दुःख प्राप्त हो

जाय, इसे भी स्वीकार कर लेते हैं। किंतु दूसरोंके दुःखका निवारण ही करते हैं। दयालु, अभिमानशून्य, उपकारी और जितेन्द्रिय—ये पुण्यके चार खंभे हैं, जिनके आधारपर यह पृथ्वी टिकी हुई है।*

तदनन्तर गौतमजी वहाँ उस परम दुर्लभ जलको पाकर विधिपूर्वक नित्य नैमित्तिक कर्म करने लगे। उन मुनीश्वरने वहाँ नित्य-होमकी सिद्धिके लिये धान, जौ और अनेक प्रकारके नीवार बोआ दिये। तरह-तरहके धान्य, भाँति-भाँतिके वृक्ष और अनेक प्रकारके फल-फूल वहाँ लहलहा उठे। यह समाचार सुनकर वहाँ दूसरे-दूसरे सहस्रों ऋषि-मुनि, पशु-पक्षी तथा बहुसंख्यक जीव जाकर रहने लगे। वह वन इस भूमण्डलमें बड़ा सुन्दर हो गया। उस अक्षय जलके संयोगसे अनावृष्टि वहाँके लिये दुःखदायिनी नहीं रह गयी। उस वनमें अनेक शुभकर्म-परायण ऋषि अपने शिष्य, भार्या और पुत्र आदिके साथ वास करने लगे। उन्होंने कालक्षेप करनेके लिये वहाँ धान बोआ दिये। गौतमजीके प्रभावसे उस वनमें सब ओर आनन्द छा गया।

एक बार वहाँ गौतमके आश्रममें जाकर बसे हुए ब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ जलके प्रसङ्गको लेकर अहल्यापर नाराज हो गयीं। उन्होंने अपने पतियोंको उकसाया। उन लोगोंने गौतमका अनिष्ट करनेके लिये गणेशजीकी आराधना की। भक्तपराधीन गणेशजीने प्रकट होकर वर माँगनेके लिये कहा—तब ये बोले—'भगवन्! यदि आप हमें वर देना चाहते हैं तो ऐसा कोई उपाय कीजिये, जिससे समस्त ऋषि डाँट-फटकारकर गौतमको आश्रमसे बाहर निकाल दें।'

गणेशजीने कहा—ऋषियो! तुम सब लोग सुनो। इस समय तुम उचित कार्य नहीं कर रहे हो। बिना किसी अपराधके उनपर क्रोध करनेके कारण तुम्हारी हानि ही होगी। जिन्होंने पहले उपकार किया हो, उन्हें यदि दुःख दिया जाय तो वह अपने लिये हितकारक नहीं होता। जब उपकारीको दुःख दिया जाता है, तब उससे इस जगत्में अपना ही नाश होता है।† ऐसी तपस्या करके उत्तम फलकी सिद्धि की जाती है। स्वयं ही शुभ फलका परित्याग करके अहितकारक फलको नहीं ग्रहण किया जाता। ब्रह्माजीने जो यह कहा है कि असाधु कभी साधुताको और साधु कभी असाधुताको नहीं ग्रहण

---

* उत्तमानां स्वभावोऽयं परदुःखासहिष्णुता॥
स्वयं दुःखं च सम्प्राप्तं मन्यतेऽन्यस्य वार्यते।
दयालुरमदस्पर्शी उपकारी जितेन्द्रियः॥
एतैश्च पुण्यस्तम्भैस्तु चतुर्भिर्धार्यते मही।
(शि० पु० कोटि० सं० २४। २४—२६)

† अपराधं बिना तस्मै दुष्यतो हानिरेव च॥
उपस्कृतं पुरा यैस्तु तेभ्यो दुःखं हितं नहि।
यदा च दीयते दुःखं तदा नाशो भवेदिह॥
(शि० पु० को० रु० सं० २५। १४-१५)

करता, यह बात निश्चय ही ठीक जान पड़ती है। पहले उपवासके कारण जब तुमलोगोंको दुःख भोगना पड़ा था, तब महर्षि गौतमने जलकी व्यवस्था करके तुम्हें सुख दिया। परंतु इस समय तुम सब लोग उन्हें दुःख दे रहे हो। संसारमें ऐसा कार्य करना कदापि उचित नहीं। इस बातपर तुम सब लोग सर्वथा विचार कर लो। स्त्रियोंकी शक्तिसे मोहित हुए तुमलोग यदि मेरी बात नहीं मानोगे तो तुम्हारा यह बर्ताव गौतमके लिये अत्यन्त हितकारक ही होगा, इसमें संशय नहीं है। ये मुनिश्रेष्ठ गौतम तुम्हें पुनः निश्चय ही सुख देंगे। अतः उनके साथ छल करना कदापि उचित नहीं। इसलिये तुमलोग कोई दूसरा वर माँगो।

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! महात्मा गणेशने ऋषियोंसे जो यह बात कही, वह यद्यपि उनके लिये हितकर थी, तो भी उन्होंने इसे नहीं स्वीकार किया। तब भक्तोंके अधीन होनेके कारण उन शिवकुमारने कहा—'तुमलोगोंने जिस वस्तुके लिये प्रार्थना की है, उसे मैं अवश्य करूँगा। पीछे जो होनहार होगी, वह होकर ही रहेगी।' ऐसा कहकर वे अन्तर्धान हो गये। मुनीश्वरो! उसके बाद उन दुष्ट ऋषियोंके प्रभावसे तथा उन्हें प्राप्त हुए वरके कारण जो घटना घटित हुई, उसे सुनो। वहाँ गौतमके खेतमें जो धान और जौ थे, उनके पास गणेशजी एक दुर्बल गाय बनकर गये। दिये हुए वरके कारण वह गौ काँपती हुई वहाँ जाकर धान और जौ चरने लगी। इसी समय दैववश गौतमजी वहाँ आ गये। वे दयालु ठहरे, इसलिये मुट्ठीभर तिनके लेकर उन्हींसे उस गौको हाँकने लगे। उन तिनकोंका स्पर्श होते ही वह गौ पृथ्वीपर गिर पड़ी और ऋषिके देखते-देखते उसी क्षण मर गयी।

ये दूसरे-दूसरे (द्वेषी) ब्राह्मण और उनकी दुष्ट स्त्रियाँ वहाँ छिपे हुए सब कुछ देख रहे थे। उस गौके गिरते ही वे सब-के-सब बोल उठे—'गौतमने यह क्या कर डाला?' गौतम भी आश्चर्यचकित हो, अहल्याको बुलाकर व्यथित हृदयसे दुःखपूर्वक बोले—'देवि! यह क्या हुआ, कैसे हुआ? जान पड़ता है परमेश्वर मुझपर कुपित हो गये हैं। अब क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? मुझे हत्या लग गयी।'

इसी समय ब्राह्मण और उनकी पत्नियाँ गौतमको डाँटने और दुर्वचनोंद्वारा अहल्याको पीड़ित करने लगीं। उनके दुर्बुद्धि शिष्य और पुत्र भी गौतमको बारंबार फटकारने और धिक्कारने लगे।

ब्राह्मण बोले—अब तुम्हें अपना मुँह नहीं दिखाना चाहिये। यहाँसे जाओ, जाओ। गोहत्यारेका मुँह देखनेपर तत्काल वस्त्रसहित स्नान करना चाहिये। जबतक तुम इस आश्रममें रहोगे, तबतक अग्निदेव और पितर हमारे दिये हुए किसी भी हव्य-कव्यको ग्रहण नहीं करेंगे। इसलिये पापी गोहत्यारे! तुम परिवारसहित यहाँसे अन्यत्र चले जाओ। विलम्ब न करो।

सूतजी कहते हैं—ऐसा कहकर उन सबने उन्हें पत्थरोंसे मारना आरम्भ किया। वे गालियाँ दे-देकर गौतम और अहल्याको सताने लगे। उन दुष्टोंके मारने और धमकानेपर गौतम बोले—'मुनियो! मैं यहाँसे अन्यत्र जाकर रहूँगा' ऐसा कहकर गौतम उस स्थानसे तत्काल निकल गये और उन सबकी आज्ञासे एक कोस दूर जाकर

उन्होंने अपने लिये आश्रम बनाया। वहाँ भी जाकर उन ब्राह्मणोंने कहा—'जबतक तुम्हारे ऊपर हत्या लगी है, तबतक तुम्हें कोई यज्ञ-यागादि कर्म नहीं करना चाहिये। किसी भी वैदिक देवयज्ञ या पितृयज्ञके अनुष्ठानका तुम्हें अधिकार नहीं रह गया है।' मुनिवर गौतम उनके कथनानुसार किसी तरह एक पक्ष बिताकर उस दुःखसे दुःखी हो बारंबार उन मुनियोंसे अपनी शुद्धिके लिये प्रार्थना करने लगे। उनके दीनभावसे प्रार्थना करनेपर उन ब्राह्मणोंने कहा—'गौतम! तुम अपने पापको प्रकट करते हुए तीन बार सारी पृथ्वीकी परिक्रमा करो। फिर लौटकर यहाँ एक महीनेतक व्रत करो। उसके बाद इस ब्रह्मगिरिकी एक सौ एक परिक्रमा करनेके पश्चात् तुम्हारी शुद्धि होगी। अथवा यहाँ गङ्गाजीको ले आकर उन्हींके जलसे स्नान करो तथा एक करोड़ पार्थिवलिङ्ग बनाकर महादेवजीकी आराधना करो। फिर गङ्गामें स्नान करके इस पर्वतकी ग्यारह बार परिक्रमा करो। तत्पश्चात् सौ घड़ोंके जलसे पार्थिव शिवलिङ्गको स्नान करानेपर तुम्हारा उद्धार होगा।' उन ऋषियोंके इस प्रकार कहनेपर गौतमने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी बात मान ली। वे बोले—'मुनिवरो! मैं आप श्रीमानोंकी आज्ञासे यहाँ पार्थिवपूजन तथा ब्रह्मगिरिकी परिक्रमा करूँगा।' ऐसा कहकर मुनिश्रेष्ठ गौतमने उस पर्वतकी परिक्रमा करनेके पश्चात् पार्थिवलिङ्गोंका निर्माण करके उनका पूजन किया। साध्वी अहल्याने भी साथ रहकर वह सब कुछ किया। उस समय शिष्य-प्रशिष्य उन दोनोंकी सेवा करते थे।

(अध्याय २४-२५)

☆

पत्नीसहित गौतमकी आराधनासे संतुष्ट हो भगवान् शिवका उन्हें दर्शन देना, गङ्गाको वहाँ स्थापित करके स्वयं भी स्थिर होना, देवताओंका वहाँ बृहस्पतिके सिंहराशिपर आनेपर गङ्गाजीके विशेष माहात्म्यको स्वीकार करना, गङ्गाका गौतमी (या गोदावरी) नामसे और शिवका त्र्यम्बक ज्योतिर्लिङ्गके नामसे विख्यात होना तथा इन दोनोंकी महिमा

सूतजी कहते हैं—पत्नीसहित गौतम ऋषिके इस प्रकार आराधना करनेपर संतुष्ट हुए भगवान् शिव वहाँ शिवा और प्रमथगणोंके साथ प्रकट हो गये। तदनन्तर प्रसन्न हुए कृपानिधान शंकरने कहा—'महामुने! मैं तुम्हारी उत्तम भक्तिसे बहुत प्रसन्न हूँ। तुम कोई वर माँगो।' उस समय महात्मा शम्भुके सुन्दर रूपको देखकर आनन्दित हुए गौतमने भक्तिभावसे शंकरको प्रणाम करके उनकी स्तुति की। लंबी स्तुति और प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर वे उनके सामने खड़े हो गये और बोले—'देव! मुझे निष्पाप कर दीजिये।'

भगवान् शिवने कहा—मुने! तुम धन्य हो, कृतकृत्य हो और सदा ही निष्पाप हो। इन दुष्टोंने तुम्हारे साथ छल किया। जगत्के

लोग तुम्हारे दर्शनसे पापरहित हो जाते हैं। फिर सदा मेरी भक्तिमें तत्पर रहनेवाले तुम क्या पापी हो? मुने! जिन दुरात्माओंने तुमपर अत्याचार किया है, वे ही पापी, दुराचारी और हत्यारे हैं। उनके दर्शनसे दूसरे लोग पापिष्ठ हो जायँगे। वे सब-के-सब कृतघ्न हैं। उनका कभी उद्धार नहीं हो सकता।

महादेवजीकी यह बात सुनकर महर्षि गौतम मन-ही-मन बड़े विस्मित हुए। उन्होंने भक्तिपूर्वक शिवको प्रणाम करके हाथ जोड़ पुनः इस प्रकार कहा।

गौतम बोले—महेश्वर! उन ऋषियोंने तो मेरा बहुत बड़ा उपकार किया। यदि उन्होंने यह बर्ताव न किया होता तो मुझे आपका दर्शन कैसे होता? धन्य हैं वे महर्षि, जिन्होंने मेरे लिये परम कल्याणकारी कार्य किया है। उनके इस दुराचारसे ही मेरा महान् स्वार्थ सिद्ध हुआ है।

गौतमजीकी यह बात सुनकर महेश्वर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने गौतमको कृपादृष्टिसे देखकर उन्हें शीघ्र ही यों उत्तर दिया।

शिवजी बोले—विप्रवर! तुम धन्य हो, सभी ऋषियोंमें श्रेष्ठतर हो। मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। ऐसा जानकर तुम मुझसे उत्तम वर माँगो।

गौतम बोले—नाथ! आप सच कहते हैं, तथापि पाँच आदमियोंने जो कह दिया या कर दिया, वह अन्यथा नहीं हो सकता। अतः जो हो गया, सो रहे। देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे गङ्गा प्रदान कीजिये और ऐसा करके लोकका महान् उपकार कीजिये। आपको मेरा नमस्कार है, नमस्कार है।

यों कहकर गौतमने देवेश्वर भगवान् शिवके दोनों चरणारविन्द पकड़ लिये और लोकहितकी कामनासे उन्हें नमस्कार किया। तब शंकरदेवने पृथिवी और स्वर्गके सारभूत जलको निकालकर, जिसे उन्होंने पहलेसे ही रख छोड़ा था और विवाहमें ब्रह्माजीके दिये हुए जलमेंसे जो कुछ शेष रह गया था, वह सब भक्तवत्सल शम्भुने उन गौतम मुनिको दे दिया। उस समय गङ्गाजीका जल परम सुन्दर स्त्रीका रूप धारण करके वहाँ खड़ा हुआ। तब मुनिवर गौतमने उन गङ्गाजीकी स्तुति करके उन्हें नमस्कार किया।

गौतम बोले—गङ्गे! तुम धन्य हो, कृतकृत्य हो। तुमने सम्पूर्ण भुवनको पवित्र किया है। इसलिये निश्चित रूपसे नरकमें गिरते हुए मुझ गौतमको पवित्र करो।

तदनन्तर शिवजीने गङ्गासे कहा—देवि! तुम मुनिको पवित्र करो और तुरंत वापस न जाकर वैवस्वत मनुके अट्ठाईसवें कलियुगतक यहीं रहो।

गङ्गाने कहा—महेश्वर! यदि मेरा

माहात्म्य सब नदियोंसे अधिक हो और अम्बिका तथा गणोंके साथ आप भी यहाँ रहें, तभी मैं इस धरातलपर रहूँगी।

गङ्गाजीकी यह बात सुनकर भगवान् शिव बोले—गङ्गे! तुम धन्य हो। मेरी बात सुनो। मैं तुमसे अलग नहीं हूँ, तथापि मैं तुम्हारे कथनानुसार यहाँ स्थित रहूँगा। तुम भी स्थित होओ।

अपने स्वामी परमेश्वर शिवकी यह बात सुनकर गङ्गाने मन-ही-मन प्रसन्न हो उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। इसी समय देवता, प्राचीन ऋषि, अनेक उत्तम तीर्थ और नाना प्रकारके क्षेत्र वहाँ आ पहुँचे। उन सबने बड़े आदरसे जय-जयकार करते हुए गौतम, गङ्गा तथा गिरिशायी शिवका पूजन किया। तदनन्तर उन सब देवताओंने मस्तक झुका हाथ जोड़कर उन सबकी प्रसन्नतापूर्वक स्तुति की। उस समय प्रसन्न हुई गङ्गा और गिरीशने उनसे कहा—'श्रेष्ठ देवताओ! वर

माँगो। तुम्हारा प्रिय करनेकी इच्छासे वह वर हम तुम्हें देंगे।'

देवता बोले—देवेश्वर! यदि आप संतुष्ट हैं और सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गे! यदि आप भी प्रसन्न हैं तो हमारा तथा मनुष्योंका प्रिय करनेके लिये आपलोग कृपापूर्वक यहाँ निवास करें।

गङ्गा बोलीं—देवताओ! फिर तो सबका प्रिय करनेके लिये आपलोग स्वयं ही यहाँ क्यों नहीं रहते? मैं तो गौतमजीके पापका प्रक्षालन करके जैसे आयी हूँ, उसी तरह लौट जाऊँगी। आपके समाजमें यहाँ मेरी कोई विशेषता समझी जाती है, इस बातका पता कैसे लगे? यदि आप यहाँ मेरी विशेषता सिद्ध कर सकें तो मैं अवश्य यहाँ रहूँगी—इसमें संशय नहीं है।

सब देवताओंने कहा—सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गे! सबके परम सुहृद् बृहस्पतिजी जब-जब सिंह राशिपर स्थित होंगे, तब-तब हम सब लोग यहाँ आया करेंगे, इसमें संशय नहीं है। ग्यारह वर्षोंतक लोगोंका जो पातक यहाँ प्रक्षालित होगा, उससे मलिन हो जानेपर हम उसी पापराशिको धोनेके लिये आदरपूर्वक तुम्हारे पास आयेंगे। हमने यह सर्वथा सच्ची बात कही है। सरिद्वरे! महादेवि! अतः तुमको और भगवान् शंकरको समस्त लोकोंपर अनुग्रह तथा हमारा प्रिय करनेके लिये यहाँ नित्य निवास करना चाहिये। गुरु जबतक सिंह राशिपर रहेंगे, तभीतक हम यहाँ निवास करेंगे। उस समय तुम्हारे जलमें त्रिकालस्नान और भगवान् शंकरका दर्शन करके हम शुद्ध होंगे। फिर तुम्हारी आज्ञा लेकर अपने स्थानको लौटेंगे।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार उन देवताओं तथा महर्षि गौतमके प्रार्थना करनेपर भगवान् शंकर और सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गा दोनों वहाँ स्थित हो गये। वहाँकी गङ्गा गौतमी (गोदावरी) नामसे विख्यात हुई और भगवान् शिवका ज्योतिर्मय लिङ्ग त्र्यम्बक कहलाया। यह ज्योतिर्लिङ्ग महान् पातकोंका नाश करनेवाला है। उसी दिनसे लेकर जब-जब बृहस्पति सिंह राशिमें स्थित होते हैं, तब-तब सब तीर्थ, क्षेत्र, देवता, पुष्कर आदि सरोवर, गङ्गा आदि नदियाँ तथा श्रीविष्णु आदि देवगण अवश्य ही गौतमीके तटपर पधारते और वास करते हैं। वे सब जबतक गौतमीके किनारे रहते हैं, तबतक अपने स्थानपर उनका कोई फल नहीं होता। जब वे अपने प्रदेशमें लौट आते हैं, तभी यहाँ इनके सेवनका फल मिलता है। यह त्र्यम्बक नामसे प्रसिद्ध ज्योतिर्लिङ्ग गौतमीके तटपर स्थित है और बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। जो भक्ति-भावसे इस त्र्यम्बक लिङ्गका दर्शन, पूजन, स्तवन एवं वन्दन करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। गौतमके द्वारा पूजित त्र्यम्बक नामक ज्योतिर्लिङ्ग इस लोकमें समस्त अभीष्टोंको देनेवाला तथा परलोकमें उत्तम मोक्ष प्रदान करनेवाला है। मुनीश्वरो! इस प्रकार तुमने जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने कह सुनाया। अब और क्या सुनना चाहते हो, कहो। मैं उसे भी तुम्हें बताऊँगा, इसमें संशय नहीं है। (अध्याय २६)

☆

वैद्यनाथेश्वर ज्योतिर्लिङ्गके प्राकट्यकी कथा तथा महिमा

सूतजी कहते हैं—अब मैं वैद्यनाथेश्वर ज्योतिर्लिङ्गका पापहारी माहात्म्य बताऊँगा। सुनो! राक्षसराज रावण जो बड़ा अभिमानी और अपने अहंकारको प्रकट करनेवाला था, उत्तम पर्वत कैलासपर भक्तिभावसे भगवान् शिवकी आराधना कर रहा था। कुछ कालतक आराधना करनेपर जब महादेवजी प्रसन्न नहीं हुए, तब वह शिवकी प्रसन्नताके लिये दूसरा तप करने लगा। पुलस्त्यकुलनन्दन श्रीमान् रावणने सिद्धिके स्थानभूत हिमालय पर्वतसे दक्षिण वृक्षोंसे भरे हुए वनमें पृथ्वीपर एक बहुत बड़ा गड्ढा खोदकर उसमें अग्निकी स्थापना की और उसके पास ही भगवान् शिवको स्थापित करके हवन आरम्भ किया। ग्रीष्म ऋतुमें वह पाँच अग्नियोंके बीचमें बैठता, वर्षा ऋतुमें खुले मैदानमें चबूतरेपर सोता और शीतकालमें जलके भीतर खड़ा रहता। इस तरह तीन प्रकारसे उसकी तपस्या चलती थी। इस रीतिसे रावणने बहुत तप किया तो भी दुरात्माओंके लिये जिनको रिझाना कठिन है, वे परमात्मा महेश्वर उसपर प्रसन्न नहीं हुए। तब महामनस्वी दैत्यराज रावणने अपना मस्तक काटकर शंकरजीका पूजन आरम्भ किया। विधिपूर्वक शिवकी पूजा करके वह अपना एक-एक सिर काटता और भगवान्‌को समर्पित कर देता था। इस तरह उसने क्रमशः अपने नौ सिर काट डाले। जब एक ही सिर बाकी रह गया, तब भक्तवत्सल भगवान् शंकर संतुष्ट एवं प्रसन्न हो वहीं उसके सामने प्रकट हो गये। भगवान् शिवने उसके सभी मस्तकोंको पूर्ववत् नीरोग करके

उसे उसकी इच्छाके अनुसार अनुपम उत्तम बल प्रदान किया। भगवान् शिवका कृपाप्रसाद पाकर राक्षस रावणने नतमस्तक हो हाथ जोड़कर उनसे कहा—'देवेश्वर! प्रसन्न होइये। मैं आपको लङ्कामें ले चलता हूँ। आप मेरे इस मनोरथको सफल कीजिये। मैं आपकी शरणमें आया हूँ।'

रावणके ऐसा कहनेपर भगवान् शंकर बड़े संकटमें पड़ गये और अनमने होकर बोले—'राक्षसराज! मेरी सारगर्भित बात सुनो। तुम मेरे इस उत्तम लिङ्गको भक्तिभावसे अपने घरको ले जाओ। परंतु जब तुम इसे कहीं भूमिपर रख दोगे, तब यह वहीं सुस्थिर हो जायगा, इसमें संदेह नहीं है। अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करो।'

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! भगवान् शंकरके ऐसा कहनेपर राक्षसराज रावण 'बहुत अच्छा' कह वह शिवलिङ्ग साथ लेकर अपने घरकी ओर चला। परंतु मार्गमें भगवान् शिवकी मायासे उसे मूत्रोत्सर्गकी इच्छा हुई। पुलस्त्यनन्दन रावण सामर्थ्यशाली होनेपर भी मूत्रके वेगको रोक न सका। इसी समय वहाँ आस-पास एक ग्वालेको देखकर उसने प्रार्थनापूर्वक वह शिवलिङ्ग उसके हाथमें थमा दिया और स्वयं मूत्रत्यागके लिये बैठ गया। एक मुहूर्त बीतते-बीतते वह ग्वाला उस शिवलिङ्गके भारसे अत्यन्त पीड़ित हो व्याकुल हो गया, तब उसने उसे पृथ्वीपर रख दिया। फिर तो वह हीरकमय शिवलिङ्ग वहीं स्थित हो गया। वह दर्शन करनेमात्रसे सम्पूर्ण अभीष्टोंको देनेवाला और पापराशिको हर लेनेवाला है। मुने! वही शिवलिङ्ग तीनों लोकोंमें वैद्यनाथेश्वरके नामसे प्रसिद्ध हुआ, जो सत्पुरुषोंको भोग और मोक्ष देनेवाला है। यह दिव्य उत्तम एवं श्रेष्ठ ज्योतिर्लिङ्ग दर्शन और पूजनसे भी समस्त पापोंको हर लेता है और मोक्षकी प्राप्ति कराता है। वह शिवलिङ्ग जब सम्पूर्ण लोकोंके हितके लिये वहीं स्थित हो गया, तब रावण भगवान् शिवका परम उत्तम वर पाकर अपने घरको चला गया। वहाँ जाकर उस महान् असुरने बड़े हर्षके साथ अपनी प्रिया मन्दोदरीको

सारी बातें कह सुनायीं। इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओं और निर्मल मुनियोंने जब यह समाचार सुना, तब वे परस्पर सलाह करके वहाँ आये। उन सबका मन भगवान् शिवमें लगा हुआ था। उन सब देवताओंने उस समय वहाँ बड़ी प्रसन्नताके साथ शिवका विशेष पूजन किया। वहाँ भगवान् शंकरका प्रत्यक्ष दर्शन करके देवताओंने उस शिवलिङ्गकी विधिवत् स्थापना की और उसका वैद्यनाथ नाम रखकर उसकी वन्दना और स्तवन करके वे स्वर्गलोकको चले गये।

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! जब वह शिवलिङ्ग वहीं स्थित हो गया तथा रावण अपने घरको चला गया, तब वहाँ कौन-सी

घटना घटित हुई—यह आप बताइये।

सूतजीने कहा—ब्राह्मणो! भगवान् शिवका परम उत्तम वर पाकर महान् असुर रावण अपने घरको चला गया। वहाँ उसने अपनी प्रियासे सब बातें कहीं और वह अत्यन्त आनन्दका अनुभव करने लगा। इधर इस समाचारको सुनकर देवता घबरा गये कि पता नहीं यह देवद्रोही महादुष्ट रावण भगवान् शिवके वरदानसे बल पाकर क्या करेगा। उन्होंने नारदजीको भेजा। नारदजीने जाकर रावणसे कहा—'तुम कैलास पर्वतको उठाओ, तब पता लगेगा कि शिवजीका दिया हुआ वरदान कहाँतक सफल हुआ।' रावणको यह बात जँच गयी। उसने जाकर कैलासको उखाड़ लिया। इससे सारा कैलास हिल उठा। तब गिरिजाके कहनेसे महादेवजीने रावणको घमंडी समझकर इस प्रकार शाप दिया।

महादेवजी बोले—रे रे दुष्ट भक्त दुर्बुद्धि रावण! तू अपने बलपर इतना घमंड न कर। तेरी इन भुजाओंका घमंड चूर करनेवाला वीर पुरुष शीघ्र ही इस जगत्में अवतीर्ण होगा।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार वहाँ जो घटना हुई उसे नारदजीने सुना। रावण भी प्रसन्न चित्त हो जैसे आया था, उसी तरह अपने घरको लौट गया। इस प्रकार मैंने वैद्यनाथेश्वरका माहात्म्य बताया है। इसे सुननेवाले मनुष्योंका पाप भस्म हो जाता है। (अध्याय २७-२८)

☆

नागेश्वर नामक ज्योतिर्लिङ्गका प्रादुर्भाव और उसकी महिमा

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! अब मैं परमात्मा शिवके नागेश नामक परम उत्तम ज्योतिर्लिङ्गके आविर्भावका प्रसङ्ग सुनाऊँगा। दारुका नामसे प्रसिद्ध कोई राक्षसी थी, जो पार्वतीके वरदानसे सदा घमंडमें भरी रहती थी। अत्यन्त बलवान् राक्षस दारुक उसका पति था। उसने बहुत-से राक्षसोंको साथ लेकर वहाँ सत्पुरुषोंका संहार मचा रखा था। वह लोगोंके यज्ञ और धर्मका नाश करता फिरता था। पश्चिम समुद्रके तटपर उसका एक वन था, जो सम्पूर्ण समृद्धियोंसे भरा रहता था। उस वनका विस्तार सब ओरसे सोलह योजन था। दारुका अपने विलासके लिये जहाँ जाती थी, वहीं भूमि, वृक्ष तथा अन्य सब उपकरणोंसे युक्त यह वन भी चला जाता था। देवी पार्वतीने उस वनकी देख-रेखका भार दारुकाको सौंप दिया था। दारुका अपने पतिके साथ इच्छानुसार उसमें विचरण करती थी। राक्षस दारुक अपनी पत्नी दारुकाके साथ वहाँ रहकर सबको भय देता था। उससे पीड़ित हुई प्रजाने महर्षि और्वकी शरणमें जाकर उनको अपना दुःख सुनाया। और्वने शरणागतोंकी रक्षाके लिये राक्षसोंको यह शाप दे दिया कि 'ये राक्षस यदि पृथ्वीपर प्राणियोंकी हिंसा या यज्ञोंका विध्वंस करेंगे तो उसी समय अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठेंगे।' देवताओंने जब यह बात सुनी, तब उन्होंने दुराचारी राक्षसोंपर चढ़ाई कर दी। राक्षस घबराये। यदि वे लड़ाईमें देवताओंको मारते तो मुनिके शापसे स्वयं मर जाते हैं और यदि नहीं मारते तो पराजित

होकर भूखों मर जाते हैं। उस अवस्थामें राक्षसी दारुकाने कहा कि 'भवानीके वरदानसे मैं इस सारे वनको जहाँ चाहूँ, ले जा सकती हूँ!' यों कहकर वह समस्त वनको ज्यों-का-त्यों ले जाकर समुद्रमें जा बसी। राक्षसलोग पृथ्वीपर न रहकर जलमें निर्भय रहने लगे और वहाँ प्राणियोंको पीड़ा देने लगे।

एक बार बहुत-सी नावें उधर आ निकलीं, जो मनुष्योंसे भरी थीं। राक्षसोंने उनमें बैठे हुए सब लोगोंको पकड़ लिया और बेड़ियोंसे बाँधकर कारागारमें डाल दिया। वे उन्हें बारंबार धमकियाँ देने लगे। उनमें सुप्रिय नामसे प्रसिद्ध एक वैश्य था, जो उस दलका सरदार था। वह बड़ा सदाचारी, भस्म-रुद्राक्षधारी तथा भगवान् शिवका परम भक्त था। सुप्रिय शिवकी पूजा किये बिना भोजन नहीं करता था। वह स्वयं तो शंकरका पूजन करता ही था, बहुत-से अपने साथियोंको भी उसने शिवकी पूजा सिखा दी थी। फिर सब लोग 'नमः शिवाय' मन्त्रका जप और शंकरजीका ध्यान करने लगे। सुप्रियको भगवान् शिवका दर्शन भी होता था। दारुक राक्षसको जब इस बातका पता लगा, तब उसने आकर सुप्रियको धमकाया। उसके साथी राक्षस सुप्रियको मारने दौड़े। उन राक्षसोंको आया देख सुप्रियके नेत्र भयसे कातर हो गये, वह बड़े प्रेमसे शिवका चिन्तन और उनके नामोंका जप करने लगा।

वैश्यपतिने कहा—देवेश्वर शंकर! मेरी रक्षा कीजिये। कल्याणकारी त्रिलोकीनाथ! दुष्टहन्ता भक्तवत्सल शिव! हमें इस दुष्टसे बचाइये। देव! अब आप ही मेरे सर्वस्व हैं; प्रभो! मैं आपका हूँ, आपके अधीन हूँ और आप ही सदा मेरे जीवन एवं प्राण हैं।

सूतजी कहते हैं—सुप्रियके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भगवान् शंकर एक बिलसे निकल पड़े। उनके साथ ही चार दरवाजोंका एक उत्तम मन्दिर भी प्रकट हो गया। उसके मध्यभागमें अद्भुत ज्योतिर्मय शिवलिङ्ग प्रकाशित हो रहा था। उसके साथ शिव-परिवारके सब लोग विद्यमान थे। सुप्रियने उनका दर्शन करके पूजन किया, पूजित होनेपर भगवान् शम्भुने प्रसन्न हो स्वयं पाशुपतास्त्र लेकर प्रधान-प्रधान राक्षसों, उनके सारे उपकरणों तथा सेवकोंको भी तत्काल ही नष्ट कर दिया और उन दुष्टहन्ता शंकरने अपने भक्त सुप्रियकी रक्षा की। तत्पश्चात् अद्भुत लीला करनेवाले और लीलासे ही शरीर धारण करनेवाले शम्भुने उस वनको यह वर दिया कि आजसे इस वनमें सदा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चारों वर्णोंके धर्मोंका पालन हो। यहाँ श्रेष्ठ मुनि निवास करें और तमोगुणी राक्षस इसमें कभी न रहें। शिवधर्मके उपदेशक, प्रचारक और प्रवर्तक लोग इसमें निवास करें!

सूतजी कहते हैं—इसी समय राक्षसी दारुकाने दीनचित्तसे देवी पार्वतीकी स्तुति की। देवी पार्वती प्रसन्न हो गयीं और बोलीं—'बताओ, तेरा क्या कार्य करूँ?' उसने कहा—'मेरे वंशकी रक्षा कीजिये?' देवी बोलीं—'मैं सच कहती हूँ, तेरे कुलकी रक्षा करूँगी।' ऐसा कहकर देवी भगवान् शिवसे बोलीं—'नाथ! आपकी यह बात युगके अन्तमें सच्ची होगी। तबतक तामसी सृष्टि भी रहे, ऐसा मेरा विचार है। मैं भी

आपकी ही हूँ और आपके ही आश्रयमें रहती हूँ। अतः मेरी बातको भी प्रमाणित (सत्य) कीजिये। यह राक्षसी दारुका देवी है—मेरी ही शक्ति है और राक्षसियोंमें बलिष्ठ है। अतः यही राक्षसोंके राज्यका शासन करे। ये राक्षस-पत्नियाँ जिन पुत्रोंको पैदा करेंगी, वे सब मिलकर इस वनमें निवास करें, ऐसी मेरी इच्छा है।

शिव बोले—प्रिये! यदि तुम ऐसी बात कहती हो तो मेरा यह वचन सुनो। मैं भक्तोंका पालन करनेके लिये प्रसन्नतापूर्वक इस वनमें रहूँगा। जो पुरुष यहाँ वर्णधर्मके पालनमें तत्पर हो प्रेमपूर्वक मेरा दर्शन करेगा, वह चक्रवर्ती राजा होगा। कलियुगके अन्त और सत्ययुगके आरम्भमें महासेनका पुत्र वीरसेन राजाओंका भी राजा होगा। वह मेरा भक्त और अत्यन्त पराक्रमी होगा और यहाँ आकर मेरा दर्शन करेगा। दर्शन करते ही वह चक्रवर्ती सम्राट् हो जायगा।

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! इस प्रकार बड़ी-बड़ी लीलाएँ करनेवाले वे दम्पति परस्पर हास्ययुक्त वार्तालाप करके स्वयं वहाँ स्थित हो गये। ज्योतिर्लिङ्गस्वरूप महादेवजी वहाँ नागेश्वर कहलाये और शिवा देवी नागेश्वरीके नामसे विख्यात हुईं। वे दोनों ही सत्पुरुषोंको प्रिय हैं।

इस प्रकार ज्योतियोंके स्वामी नागेश्वर नामक महादेवजी ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें प्रकट हुए। वे तीनों लोकोंकी सम्पूर्ण कामनाओंको सदा पूर्ण करनेवाले हैं। जो प्रतिदिन आदरपूर्वक नागेश्वरके प्रादुर्भावका यह प्रसङ्ग सुनता है, वह बुद्धिमान् मानव महापातकोंका नाश करनेवाले सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है।

(अध्याय २९-३०)

☆

रामेश्वर नामक ज्योतिर्लिङ्गके आविर्भाव तथा माहात्म्यका वर्णन

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! अब मैं यह बता रहा हूँ कि रामेश्वर नामक ज्योतिर्लिङ्ग पहले किस प्रकार प्रकट हुआ। इस प्रसङ्गको तुम आदरपूर्वक सुनो। भगवान् विष्णुके रामावतारमें जब रावण सीताजीको हरकर लङ्कामें ले गया, तब सुग्रीवके साथ अठारह पद्म वानरसेना लेकर श्रीराम समुद्रतटपर आये। वहाँ वे विचार करने लगे कि कैसे हम समुद्रको पार करेंगे और किस प्रकार रावणको जीतेंगे। इतनेमें ही श्रीरामको प्यास लगी। उन्होंने जल माँगा और वानर मीठा जल ले आये। श्रीरामने प्रसन्न होकर वह जल ले लिया। तबतक उन्हें स्मरण हो आया कि 'मैंने अपने स्वामी

भगवान् शंकरका दर्शन तो किया ही नहीं। फिर यह जल कैसे ग्रहण कर सकता है?' ऐसा कहकर उन्होंने उस जलको नहीं पिया। जल रख देनेके पश्चात् रघुनन्दनने पार्थिव-पूजन किया। आवाहन आदि सोलह उपचारोंको प्रस्तुत करके विधिपूर्वक बड़े प्रेमसे शंकरजीकी अर्चना की। प्रणाम तथा दिव्य स्तोत्रोंद्वारा यत्नपूर्वक शंकरजीको संतुष्ट करके श्रीरामने भक्तिभावसे उनसे प्रार्थना की।

श्रीराम बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मेरे स्वामी देव महेश्वर! आपको मेरी सहायता करनी चाहिये। आपके सहयोगके बिना मेरे कार्यकी सिद्धि अत्यन्त कठिन है। रावण भी आपका ही भक्त है। वह सबके लिये सर्वथा दुर्जय है। परंतु आपके दिये हुए वरदानसे वह सदा दर्पमें भरा रहता है। वह त्रिभुवनविजयी महावीर है। इधर मैं भी आपका दास हूँ, सर्वथा आपके अधीन रहनेवाला हूँ। सदाशिव! यह विचारकर आपको मेरे प्रति पक्षपात करना चाहिये।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार प्रार्थना और बारंबार नमस्कार करके उन्होंने उच्चस्वरसे 'जय शंकर, जय शिव!' इत्यादिका उद्घोष करते हुए शिवका स्तवन किया। फिर उनके मन्त्रके जप और ध्यानमें तत्पर हो गये। तत्पश्चात् पुनः पूजन करके वे स्वामीके आगे नाचने लगे। उस समय उनका हृदय प्रेमसे द्रवित हो रहा था, फिर उन्होंने शिवके संतोषके लिये गाल बजाकर अव्यक्त शब्द किया। उस समय भगवान् शंकर उनपर बहुत प्रसन्न हुए और वे ज्योतिर्मय महेश्वर वामाङ्गभूता पार्वती तथा पार्षदगणोंके साथ शास्त्रोक्त निर्मल रूप धारण करके तत्काल वहाँ प्रकट हो गये। श्रीरामकी भक्तिसे संतुष्टचित होकर महेश्वरने उनसे कहा—'श्रीराम! तुम्हारा कल्याण हो, वर माँगो।' उस समय उनका रूप देखकर वहाँ उपस्थित हुए सब लोग पवित्र हो गये। शिवधर्मपरायण श्रीरामजीने स्वयं उनका पूजन किया। फिर भाँति-भाँतिकी स्तुति एवं प्रणाम करके उन्होंने भगवान् शिवसे लङ्कामें रावणके साथ होनेवाले युद्धमें अपने लिये विजयकी प्रार्थना की। तब रामभक्तिसे प्रसन्न हुए महेश्वरने कहा—'महाराज! तुम्हारी जय हो।' भगवान् शिवके दिये हुए विजयसूचक वर एवं युद्धकी आज्ञाको पाकर श्रीरामने नतमस्तक हो हाथ जोड़कर उनसे पुनः प्रार्थना की।

श्रीराम बोले—मेरे स्वामी शंकर! यदि आप संतुष्ट हैं तो जगत्के लोगोंको पवित्र करने तथा दूसरोंकी भलाई करनेके लिये सदा यहाँ निवास करें।

सूतजी कहते हैं—श्रीरामके ऐसा कहनेपर भगवान् शिव वहाँ ज्योतिर्लिङ्गके

रूपमें स्थित हो गये। तीनों लोकोंमें रामेश्वरके नामसे उनकी प्रसिद्धि हुई। उनके प्रभावसे ही अपार समुद्रको अनायास पार करके श्रीरामने रावण आदि राक्षसोंका शीघ्र ही संहार किया और अपनी प्रिया सीताको प्राप्त कर लिया। तबसे इस भूतलपर रामेश्वरकी अद्भुत महिमाका प्रसार हुआ। भगवान् रामेश्वर सदा भोग और मोक्ष देनेवाले तथा भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेवाले हैं। जो दिव्य गङ्गाजलसे रामेश्वर शिवको भक्तिपूर्वक स्नान कराता है, वह जीवन्मुक्त ही है। इस संसारमें देवदुर्लभ समस्त भोगोंका उपभोग करके अन्तमें उत्तम ज्ञान पाकर वह निश्चय ही कैवल्य मोक्षको प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार मैंने तुमलोगोंसे भगवान् शिवके रामेश्वर नामक दिव्य ज्योतिर्लिङ्गका वर्णन किया, जो अपनी महिमा सुननेवालोंके समस्त पापोंका अपहरण करनेवाला है।

(अध्याय ३१)

☆

घुश्माकी शिवभक्तिसे उसके मरे हुए पुत्रका जीवित होना, घुश्मेश्वर शिवका प्रादुर्भाव तथा उनकी महिमाका वर्णन

सूतजी कहते हैं—अब मैं घुश्मेश नामक ज्योतिर्लिङ्गके प्रादुर्भावका और उसके माहात्म्यका वर्णन करूँगा। मुनिवरो! ध्यान देकर सुनो। दक्षिण दिशामें एक श्रेष्ठ पर्वत है, जिसका नाम देवगिरि है। वह देखनेमें अद्भुत तथा नित्य परम शोभासे सम्पन्न है। उसीके निकट कोई भरद्वाज-कुलमें उत्पन्न सुधर्मा नामक ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण रहते थे। उनकी प्रिय पत्नीका नाम सुदेहा था, वह सदा शिवधर्मके पालनमें तत्पर रहती थी, घरके काम-काजमें कुशल थी और सदा पतिकी सेवामें लगी रहती थी। द्विजश्रेष्ठ सुधर्मा भी देवताओं और अतिथियोंके पूजक थे। वे वेदवर्णित मार्गपर चलते और नित्य अग्निहोत्र किया करते थे। तीनों कालकी संध्या करनेसे उनकी कान्ति सूर्यके समान उद्दीप्त थी। वे वेद-शास्त्रके मर्मज्ञ थे और शिष्योंको पढ़ाया करते थे। धनवान् होनेके साथ ही बड़े दाता थे। सौजन्य आदि सद्गुणोंके भाजन थे। शिवसम्बन्धी पूजनादि कार्यमें ही सदा लगे रहते थे। वे स्वयं तो शिवभक्त थे ही, शिवभक्तोंसे बड़ा प्रेम रखते थे। शिवभक्तोंको भी वे बहुत प्रिय थे।

यह सब कुछ होनेपर भी उनके पुत्र नहीं था। इससे ब्राह्मणको तो दुःख नहीं होता था, परंतु उनकी पत्नी बहुत दुःखी रहती थी। पड़ोसी और दूसरे लोग भी उसे ताना मारा करते थे। वह पतिसे बार-बार पुत्रके लिये प्रार्थना करती थी। पति उसको ज्ञानोपदेश देकर समझाते थे, परंतु उसका मन नहीं मानता था। अन्ततोगत्वा ब्राह्मणने कुछ उपाय भी किया, परंतु वह सफल नहीं हुआ। तब ब्राह्मणीने अत्यन्त दुःखी हो बहुत हठ करके अपनी बहिन घुश्मासे पतिका दूसरा विवाह करा दिया। विवाहसे पहले सुधर्माने उसको समझाया कि 'इस समय तो तुम बहिनसे प्यार कर रही हो; परंतु जब इसके पुत्र हो जायगा, तब इससे स्पर्धा करने लगोगी।' उसने वचन दिया कि मैं बहिनसे

कभी डाह नहीं करूँगी। विवाह हो जानेपर घुश्मा दासीकी भाँति बड़ी बहिनकी सेवा करने लगी। सुदेहा भी उसे बहुत प्यार करती रही। घुश्मा अपनी शिवभक्त बहिनकी आज्ञासे नित्य एक सौ एक पार्थिव शिव-लिङ्ग बनाकर विधिपूर्वक पूजा करने लगी। पूजा करके वह निकटवर्ती तालाबमें उनका विसर्जन कर देती थी।

शंकरजीकी कृपासे उसके एक सुन्दर सौभाग्यवान् और सद्गुणसम्पन्न पुत्र हुआ। घुश्माका कुछ मान बढ़ा। इससे सुदेहाके मनमें डाह पैदा हो गयी। समयपर उस पुत्रका विवाह हुआ। पुत्रवधू घरमें आ गयी। अब तो वह और भी जलने लगी। उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी और एक दिन उसने रातमें सोते हुए पुत्रको छुरेसे उसके शरीरके टुकड़े-टुकड़े करके मार डाला और कटे हुए अङ्गोंको उसी तालाबमें ले जाकर डाल दिया, जहाँ घुश्मा प्रतिदिन पार्थिव लिङ्गोंका विसर्जन करती थी। पुत्रके अङ्गोंको उस तालाबमें फेंककर वह लौट आयी और घरमें सुखपूर्वक सो गयी। घुश्मा सबेरे उठकर प्रतिदिनका पूजनादि कर्म करने लगी। श्रेष्ठ ब्राह्मण सुधर्मा स्वयं भी नित्यकर्ममें लग गये। इसी समय उनकी ज्येष्ठ पत्नी सुदेहा भी उठी और बड़े आनन्दसे घरके काम-काज करने लगी; क्योंकि उसके हृदयमें पहले जो ईर्ष्याकी आग जलती थी, वह अब बुझ गयी थी। प्रातःकाल जब बहूने उठकर पतिकी शय्याको देखा तो वह खूनसे भीगी दिखायी दी और उसपर शरीरके कुछ टुकड़े दृष्टिगोचर हुए, इससे उसको बड़ा दुःख हुआ। उसने सास (घुश्मा) के पास जाकर निवेदन किया—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाली आर्ये! आपके पुत्र कहाँ गये? उनकी शय्या रक्तसे भीगी हुई है और उसपर शरीरके कुछ टुकड़े दिखायी देते हैं। हाय! मैं मारी गयी! किसने यह दुष्ट कर्म किया है?' ऐसा कहकर वह बेटेकी प्रिय पत्नी भाँति-भाँतिसे करुण विलाप करती हुई रोने लगी। सुधर्माकी बड़ी पत्नी सुदेहा भी उस समय 'हाय! मैं मारी गयी।' ऐसा कहकर दुःखमें डूब गयी। उसने ऊपरसे तो दुःख किया, किंतु मन-ही-मन वह हर्षसे भरी हुई थी! घुश्मा भी उस समय उस बधूके दुःखको सुनकर अपने नित्य पार्थिव-पूजनके व्रतसे विचलित नहीं हुई। उसका मन बेटेको देखनेके लिये तनिक भी उत्सुक नहीं हुआ। उसके पतिकी भी ऐसी ही अवस्था थी। जबतक नित्य-नियम पूरा नहीं हुआ, तबतक उन्हें दूसरी किसी बातकी चिन्ता नहीं हुई। दोपहरको पूजन समाप्त होनेपर घुश्माने अपने पुत्रकी भयंकर शय्यापर दृष्टिपात किया, तथापि उसने मनमें किंचिन्मात्र भी दुःख नहीं माना। वह सोचने लगी—'जिन्होंने यह बेटा दिया था, वे ही इसकी रक्षा करेंगे। वे भक्तप्रिय कहलाते हैं, कालके भी काल हैं और सत्पुरुषोंके आश्रय हैं। एकमात्र वे प्रभु सर्वेश्वर शम्भु ही हमारे रक्षक हैं। वे माला गूँथनेवाले पुरुषकी भाँति जिनको जोड़ते हैं, उनको अलग भी करते हैं। अतः अब मेरे चिन्ता करनेसे क्या होगा।' इस तत्त्वका विचार करके उसने शिवके भरोसे धैर्य धारण किया और उस समय दुःखका अनुभव नहीं किया। वह पूर्ववत् पार्थिव शिवलिङ्गोंको लेकर स्वस्थचित्तसे शिवके नामोंका उच्चारण करती

हुई उस तालाबके किनारे गयी। उन पार्थिव लिङ्गोंको तालाबमें डालकर जब वह लौटने लगी तो उसे अपना पुत्र उसी तालाबके किनारे खड़ा दिखायी दिया।

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! उस समय वहाँ अपने पुत्रको जीवित देखकर उसकी माता घुश्माको न तो हर्ष हुआ और न विषाद। वह पूर्ववत् स्वस्थ बनी रही। इसी समय उसपर संतुष्ट हुए ज्योतिःस्वरूप महेश्वर शिव शीघ्र उसके सामने प्रकट हो गये।

शिव बोले—सुभगे! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। वर माँगो। तेरी दुष्टा सौतने इस बच्चेको मार डाला था। अतः मैं उसे त्रिशूलसे मारूँगा।

सूतजी कहते हैं—तब घुश्माने शिवको प्रणाम करके उस समय यह वर माँगा—'नाथ! यह सुदेहा मेरी बड़ी बहिन है, अतः आपको इसकी रक्षा करनी चाहिये।'

शिव बोले—उसने तो बड़ा भारी अपकार किया है, तुम उसपर उपकार क्यों करती हो? दुष्ट कर्म करनेवाली सुदेहा तो मार डालनेके ही योग्य है।

घुश्माने कहा—देव! आपके दर्शनमात्रसे पातक नहीं ठहरता। इस समय आपका दर्शन करके उसका पाप भस्म हो जाय। 'जो अपकार करनेवालोंपर भी उपकार करता है, उसके दर्शनमात्रसे पाप बहुत दूर भाग जाता है।' * प्रभो! यह अद्भुत भगवद्वाक्य मैंने सुन रखा है। इसलिये सदाशिव! जिसने ऐसा कुकर्म किया है, वही करे; मैं ऐसा क्यों करूँ (मुझे तो बुरा करनेवालेका भी भला ही करना है)।

सूतजी कहते हैं—घुश्माके ऐसा कहनेपर दयासिन्धु भक्तवत्सल महेश्वर और भी प्रसन्न हुए तथा इस प्रकार बोले—'घुश्मे! तुम कोई और भी वर माँगो। मैं तुम्हारे लिये हितकर वर अवश्य दूँगा; क्योंकि तुम्हारी इस भक्तिसे और विकारशून्य स्वभावसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ।'

भगवान् शिवकी बात सुनकर घुश्मा बोली—'प्रभो! यदि आप वर देना चाहते हैं तो लोगोंकी रक्षाके लिये सदा यहाँ निवास कीजिये और मेरे नामसे ही आपकी ख्याति हो।' तब महेश्वर शिवने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—'मैं तुम्हारे ही नामसे घुश्मेश्वर कहलाता हुआ सदा यहाँ निवास करूँगा और सबके लिये सुखदायक होऊँगा। मेरा शुभ ज्योतिर्लिङ्ग घुश्मेश नामसे प्रसिद्ध हो।

---

*अपकारेषु यश्चैव ह्युपकारं करोति वै। तस्य दर्शनमात्रेण पापं दूरतरं व्रजेत्॥
(शि० पु० को० रु० सं० ३३।२९)

यह सरोवर शिवलिङ्गोंका आलय हो जाय और इसीलिये इसकी तीनों लोकोंमें शिवालय नामसे प्रसिद्धि हो। यह सरोवर सदा दर्शनमात्रसे सम्पूर्ण अभीष्टोंका देनेवाला हो। सुव्रते! तुम्हारे वंशमें होनेवाली एक सौ एक पीढ़ियोंतक ऐसे ही श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न होंगे, इसमें संशय नहीं है। वे सब-के-सब सुन्दरी स्त्री, उत्तम धन और पूर्ण आयुसे सम्पन्न होंगे, चतुर और विद्वान् होंगे, उदार तथा भोग और मोक्षरूपी फल पानेके अधिकारी होंगे। एक सौ एक पीढ़ियोंतक सभी पुत्र गुणोंमें बढ़े-चढ़े होंगे। तुम्हारे वंशका ऐसा विस्तार बड़ा शोभादायक होगा।'

ऐसा कहकर भगवान् शिव वहाँ ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें स्थित हो गये। उनकी घुश्मेश नामसे प्रसिद्धि हुई और उस सरोवरका नाम शिवालय हो गया। सुधर्मा, घुश्मा और सुदेहा—तीनोंने आकर तत्काल ही उस शिवलिङ्गकी एक सौ एक दक्षिणावर्त परिक्रमा की। पूजा करके परस्पर मिलकर मनका मैल दूर करके वे सब वहाँ बड़े सुखका अनुभव करने लगे। पुत्रको जीवित देख सुदेहा बहुत लज्जित हुई और पति तथा घुश्मासे क्षमा-प्रार्थना करके उसने अपने पापके निवारणके लिये प्रायश्चित्त किया। मुनीश्वरो! इस प्रकार वह घुश्मेश्वर लिङ्ग प्रकट हुआ। उसका दर्शन और पूजन करनेसे सदा सुखकी वृद्धि होती है। ब्राह्मणो! इस तरह मैंने तुमसे बारह ज्योतिर्लिङ्गोंकी महिमा बतायी। ये सभी लिङ्ग सम्पूर्ण कामनाओंके पूरक तथा भोग और मोक्ष देनेवाले हैं। जो इन ज्योतिर्लिङ्गोंकी कथाको पढ़ता और सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता तथा भोग और मोक्ष पाता है। (अध्याय ३२-३३)

द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंके माहात्म्यकी समाप्ति

☆

शंकरजीकी आराधनासे भगवान् विष्णुको सुदर्शन चक्रकी प्राप्ति तथा उसके द्वारा दैत्योंका संहार

व्यासजी कहते हैं—सूतका यह वचन सुनकर उन मुनीश्वरोंने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करके लोकहितकी कामनासे इस प्रकार कहा।

ऋषि बोले—सूतजी ! आप सब जानते हैं। इसलिये हम आपसे पूछते हैं। प्रभो ! हरीश्वर-लिङ्गकी महिमाका वर्णन कीजिये। तात ! हमने पहलेसे सुन रखा है कि भगवान् विष्णुने शिवकी आराधनासे सुदर्शन चक्र प्राप्त किया था। अतः उस कथापर भी विशेषरूपसे प्रकाश डालिये।

सूतजीने कहा—मुनिवरो ! हरीश्वर-लिङ्गकी शुभ कथा सुनो ! भगवान् विष्णुने पूर्वकालमें हरीश्वर शिवसे ही सुदर्शन चक्र प्राप्त किया था। एक समयकी बात है, दैत्य अत्यन्त प्रबल होकर लोगोंको पीड़ा देने और धर्मका लोप करने लगे। उन महाबली और पराक्रमी दैत्योंसे पीड़ित हो देवताओंने देवरक्षक भगवान् विष्णुसे अपना सारा दुःख कहा। तब श्रीहरि कैलासपर जाकर भगवान् शिवकी विधिपूर्वक आराधना करने लगे। वे हजार नामोंसे शिवकी स्तुति करते तथा प्रत्येक नामपर एक कमल चढ़ाते थे। तब भगवान् शंकरने विष्णुके भक्तिभावकी परीक्षा करनेके लिये उनके लाये हुए एक हजार कमलोंमेंसे एकको छिपा दिया। शिवकी मायाके कारण घटित हुई इस अद्भुत घटनाका भगवान् विष्णुको पता नहीं लगा। उन्होंने एक फूल कम जानकर उसकी खोज आरम्भ की। दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाले श्रीहरिने भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये उस एक फूलकी प्राप्तिके उद्देश्यसे सारी पृथ्वीपर भ्रमण किया। परंतु कहीं भी उन्हें वह फूल नहीं मिला। तब विशुद्धचेता विष्णुने एक फूलकी पूर्तिके लिये अपने कमलसदृश एक नेत्रको ही निकालकर चढ़ा दिया। यह देख सबका दुःख दूर करनेवाले भगवान् शंकर बड़े प्रसन्न हुए और वहीं उनके सामने प्रकट हो गये। प्रकट होकर वे श्रीहरिसे बोले—'हरे ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम इच्छानुसार वर माँगो। मैं तुम्हें मनोवाञ्छित वस्तु दूँगा। तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है।'

विष्णु बोले—नाथ ! आपके सामने मुझे क्या कहना है। आप अन्तर्यामी हैं, अतः सब कुछ जानते हैं, तथापि आपके आदेशका गौरव रखनेके लिये कहता हूँ। दैत्योंने सारे जगत्‌को पीड़ित कर रखा है। सदाशिव ! हमलोगोंको सुख नहीं मिलता। स्वामिन् ! मेरा अपना अस्त्र-शस्त्र दैत्योंके वधमें काम नहीं देता। परमेश्वर ! इसीलिये मैं आपकी शरणमें आया हूँ।

सूतजी कहते हैं—श्रीविष्णुका यह वचन सुनकर देवाधिदेव महेश्वरने तेजोराशिमय अपना सुदर्शन चक्र उन्हें दे दिया। उसको पाकर भगवान् विष्णुने उन समस्त प्रबल दैत्योंका उस चक्रके द्वारा बिना परिश्रमके ही संहार कर डाला। इससे सारा जगत् स्वस्थ हो गया। देवताओंको भी सुख मिला और अपने लिये उस आयुधको पाकर भगवान् विष्णु भी अत्यन्त प्रसन्न एवं परम सुखी हो गये।

ऋषियोंने पूछा—शिवके वे सहस्र नाम कौन-कौन हैं, बताइये, जिनसे संतुष्ट होकर महेश्वरने श्रीहरिको चक्र प्रदान किया था ? उन नामोंके माहात्म्यका भी वर्णन कीजिये। श्रीविष्णुके ऊपर शंकरजीकी जैसी कृपा हुई थी, उसका यथार्थरूपसे प्रतिपादन कीजिये।

शुद्ध अन्तःकरणवाले उन मुनियोंकी वैसी बात सुनकर सूतने शिवके चरणारविन्दोंका चिन्तन करके इस प्रकार कहना आरम्भ किया। (अध्याय ३४)

☆

भगवान् विष्णुद्वारा पठित शिवसहस्रनाम-स्तोत्र

सूत उवाच

श्रूयतां मो ऋषिश्रेष्ठा येन तुष्टो महेश्वरः।
तदहं कथयाम्यद्य शैवं नामसहस्रकम्॥ १॥

सूतजी बोले—मुनिवरो ! सुनो, जिससे महेश्वर संतुष्ट होते हैं, वह शिवसहस्रनाम-स्तोत्र आज तुम सबको सुना रहा हूँ॥ १॥

विष्णुरुवाच

शिवो हरो मृडो रुद्रः पुष्करः पुष्पलोचनः।
अर्थिगम्यः सदाचारः शर्वः शम्भुर्महेश्वरः॥ २॥

भगवान् विष्णुने कहा—१ शिवः—कल्याणस्वरूप, २ हरः—भक्तोंके पाप-ताप हर लेनेवाले, ३ मृडः—सुखदाता, ४ रुद्रः—दुःख दूर करनेवाले, ५ पुष्करः—आकाशस्वरूप, ६ पुष्पलोचनः—पुष्पके समान खिले हुए नेत्रवाले, ७ अर्थिगम्यः—प्रार्थियोंको प्राप्त होनेवाले, ८ सदाचारः—श्रेष्ठ आचरणवाले, ९ शर्वः—संहारकारी, १० शम्भुः—कल्याणनिकेतन, ११ महेश्वरः—महान् ईश्वर॥ २॥

चन्द्रापीडश्चन्द्रमौलिर्विश्वं विश्वम्भरेश्वरः।
वेदान्तसारसंदोहः कपाली नीललोहितः॥ ३॥

१२ चन्द्रापीडः—चन्द्रमाको शिरोभूषणके रूपमें धारण करनेवाले, १३ चन्द्रमौलिः—सिरपर चन्द्रमाका मुकुट धारण करनेवाले, १४ विश्वम्—सर्वस्वरूप, १५ विश्वम्भरेश्वरः—विश्वका भरण-पोषण करनेवाले श्रीविष्णुके भी ईश्वर, १६ वेदान्तसारसंदोहः—वेदान्तके सारतत्त्व सच्चिदानन्दमय ब्रह्मकी साकार मूर्ति, १७ कपाली—हाथमें कपाल धारण करनेवाले, १८ नीललोहितः—(गलेमें) नील और (शेष अङ्गोंमें) लोहित वर्णवाले॥ ३॥

ध्यानाधारोऽपरिच्छेद्यो गौरीभर्ता गणेश्वरः।
अष्टमूर्तिर्विश्वमूर्तिस्त्रिवर्गस्वर्गसाधनः॥ ४॥

१९ ध्यानाधारः—ध्यानके आधार, २० अपरिच्छेद्यः—देश, काल और वस्तुकी सीमासे अविभाज्य, २१ गौरीभर्ता—गौरी अर्थात् पार्वतीजीके पति, २२ गणेश्वरः—प्रमथगणोंके स्वामी, २३ अष्टमूर्तिः—जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी और यजमान—इन आठ रूपोंवाले, २४ विश्वमूर्तिः—अखिल ब्रह्माण्डमय विराट् पुरुष, २५ त्रिवर्गस्वर्गसाधनः—धर्म, अर्थ, काम तथा स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाले॥ ४॥

ज्ञानगम्यो दृढप्रज्ञो देवदेवस्त्रिलोचनः।
वामदेवो महादेवः पटुः परिवृढो दृढः॥ ५॥

२६ ज्ञानगम्यः—ज्ञानसे ही अनुभवमें आनेके योग्य, २७ दृढप्रज्ञः—सुस्थिर बुद्धिवाले, २८ देवदेवः—देवताओंके भी आराध्य, २९ त्रिलोचनः—सूर्य, चन्द्रमा और अग्निरूप तीन नेत्रोंवाले, ३० वामदेवः—लोकके विपरीत स्वभाववाले देवता, ३१ महादेवः—महान् देवता ब्रह्मादिकोंके भी पूजनीय, ३२ पटुः—सब कुछ करनेमें समर्थ

एवं कुशल, ३३ परिवृढः—स्वामी, ३४ दृढः—कभी विचलित न होनेवाले ॥ ५ ॥

विश्वरूपो विरूपाक्षो वागीशः शुचिसत्तमः ।
सर्वप्रमाणसंवादी वृषाङ्को वृषवाहनः ॥ ६ ॥

३५ विश्वरूपः—जगत्स्वरूप, ३६ विरूपाक्षः—विकट नेत्रवाले, ३७ वागीशः—वाणीके अधिपति, ३८ शुचिसत्तमः—पवित्र पुरुषोंमें भी सबसे श्रेष्ठ, ३९ सर्वप्रमाण-संवादी—सम्पूर्ण प्रमाणोंमें सामञ्जस्य स्थापित करनेवाले, ४० वृषाङ्कः—अपनी ध्वजामें वृषभका चिह्न धारण करनेवाले, ४१ वृषवाहनः—वृषभ या धर्मको वाहन बनानेवाले ॥ ६ ॥

ईशः पिनाकी खट्वाङ्गी चित्रवेषश्चिरंतनः ।
तमोहरो महायोगी गोप्ता ब्रह्मा च धूर्जटिः ॥ ७ ॥

४२ ईशः—स्वामी या शासक, ४३ पिनाकी—पिनाक नामक धनुष धारण करने-वाले, ४४ खट्वाङ्गी—खाटके पायेकी आकृतिका एक आयुध धारण करनेवाले, ४५ चित्रवेषः—विचित्र वेषधारी, ४६ चिरंतनः—पुराण (अनादि) पुरुषोत्तम, ४७ तमोहरः—अज्ञानान्धकारको दूर करनेवाले, ४८ महायोगी—महान् योगसे सम्पन्न, ४९ गोप्ता—रक्षक, ५० ब्रह्मा—सृष्टिकर्ता, ५१ धूर्जटिः—जटाके भारसे युक्त ॥ ७ ॥

कालकालः कृत्तिवासाः सुभगः प्रणवात्मकः ।
उन्नद्धः पुरुषो जुष्यो दुर्वासाः पुरुशासनः ॥ ८ ॥

५२ कालकालः—कालके भी काल, ५३ कृत्तिवासाः—गजासुरके चर्मको वस्त्रके रूपमें धारण करनेवाले, ५४ सुभगः—सौभाग्यशाली, ५५ प्रणवात्मकः—ओंकारस्वरूप अथवा प्रणवके वाच्यार्थ, ५६ उन्नद्धः—बन्धनरहित, ५७ पुरुषः—अन्तर्यामी आत्मा, ५८ जुष्यः—सेवन करने-योग्य, ५९ दुर्वासाः—'दुर्वासा' नामक मुनिके रूपमें अवतीर्ण, ६० पुरुशासनः—तीन मायामय असुरपुरोंका दमन करनेवाले ॥ ८ ॥

दिव्यायुधः स्कन्दगुरुः परमेष्ठी परात्परः ।
अनादिमध्यनिधनो गिरीशो गिरिजाधवः ॥ ९ ॥

६१ दिव्यायुधः—'पाशुपत' आदि दिव्य अस्त्र धारण करनेवाले, ६२ स्कन्दगुरुः—कार्तिकेयजीके पिता, ६३ परमेष्ठी—अपनी प्रकृष्ट महिमामें स्थित रहनेवाले, ६४ परात्परः—कारणके भी कारण, ६५ अनादिमध्यनिधनः—आदि, मध्य और अन्तसे रहित, ६६ गिरीशः—कैलासके अधिपति, ६७ गिरिजाधवः—पार्वतीके पति ॥ ९ ॥

कुबेरबन्धुः श्रीकण्ठो लोकवर्णोत्तमो मृदुः ।
समाधिवेद्यः कोदण्डी नीलकण्ठः परश्वधी ॥ १० ॥

६८ कुबेरबन्धुः—कुबेरको अपना बन्धु (मित्र) माननेवाले, ६९ श्रीकण्ठः—श्यामसुषमासे सुशोभित कण्ठवाले, ७० लोकवर्णोत्तमः—समस्त लोकों और वर्णोंसे श्रेष्ठ, ७१ मृदुः—कोमल स्वभाववाले, ७२ समाधिवेद्यः—समाधि अथवा चित्तवृत्तियोंके निरोधसे अनुभवमें आनेयोग्य, ७३ कोदण्डी—धनुर्धर, ७४ नीलकण्ठः—कण्ठमें हालाहल विषका नील चिह्न धारण करनेवाले, ७५ परश्वधी—परशुधारी ॥ १० ॥

विशालाक्षो मृगव्याधः सुरेशः सूर्यतापनः ।
धर्मधाम क्षमाक्षेत्रं भगवान् भगनेत्रभित् ॥ ११ ॥

७६ विशालाक्षः—बड़े-बड़े नेत्रोंवाले, ७७ मृगव्याधः—वनमें व्याध या किरातके रूपमें प्रकट हो शूकरके ऊपर बाण चलानेवाले, ७८ सुरेशः—देवताओंके स्वामी, ७९ सूर्यतापनः—सूर्यको भी दण्ड देनेवाले, ८० धर्मधाम—

धर्मके आश्रय, ८१ क्षमाक्षेत्रम्—क्षमाके उत्पत्ति-स्थान, ८२ भगवान्—सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्यके आश्रय, ८३ भगनेत्रभित्—भगदेवताके नेत्रका भेदन करनेवाले ॥ ११ ॥

उग्रः पशुपतिस्ताक्ष्यः प्रियभक्तः परंतपः।
दाता दयाकरो दक्षः कपर्दी कामशासनः ॥ १२ ॥

८४ उग्रः—संहारकालमें भयंकर रूप धारण करनेवाले, ८५ पशुपतिः—मायारूपमें बँधे हुए पाशबद्ध पशुओं (जीवों)को तत्त्वज्ञानके द्वारा मुक्त करके यथार्थरूपसे उनका पालन करनेवाले, ८६ ताक्ष्यः—गरुड़रूप, ८७ प्रियभक्तः—भक्तोंसे प्रेम करनेवाले, ८८ परंतपः—शत्रुता रखनेवालोंको संताप देनेवाले, ८९ दाता—दानी, ९० दयाकरः—दयानिधान अथवा कृपा करनेवाले, ९१ दक्षः—कुशल, ९२ कपर्दी—जटाजूटधारी, ९३ कामशासनः—कामदेवका दमन करनेवाले ॥ १२ ॥

श्मशाननिलयः सूक्ष्मः श्मशानस्थो महेश्वरः।
लोककर्ता मृगपतिर्महाकर्ता महौषधिः ॥ १३ ॥

९४ श्मशाननिलयः—श्मशानवासी, ९५ सूक्ष्मः—इन्द्रियातीत एवं सर्वव्यापी, ९६ श्मशानस्थः—श्मशानभूमिमें विश्राम करनेवाले, ९७ महेश्वरः—महान् ईश्वर या परमेश्वर, ९८ लोककर्ता—जगत्की सृष्टि करनेवाले, ९९ मृगपतिः—मृगके पालक या पशुपति, १०० महाकर्ता—विराट् ब्रह्माण्डकी सृष्टि करनेके समय महान् कर्तृत्वसे सम्पन्न, १०१ महौषधिः—भवरोगका निवारण करनेके लिये महान् ओषधिरूप ॥ १३ ॥

उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः।
नीतिः सुनीतिः शुद्धात्मा सोमः सोमरतः सुखी ॥ १४ ॥

१०२ उत्तरः—संसार-सागरसे पार उतारनेवाले, १०३ गोपतिः—स्वर्ग, पृथ्वी, पशु, वाणी, किरण, इन्द्रिय और जलके स्वामी, १०४ गोप्ता—रक्षक, १०५ ज्ञानगम्यः—तत्त्वज्ञानके द्वारा ज्ञानस्वरूपसे ही जाननेयोग्य, १०६ पुरातनः—सबसे पुराने, १०७ नीतिः—न्याय-स्वरूप, १०८ सुनीतिः—उत्तम नीतिवाले, १०९ शुद्धात्मा—विशुद्ध आत्मस्वरूप, ११० सोमः—उमासहित, १११ सोमरतः—चन्द्रमापर प्रेम रखनेवाले, ११२ सुखी—आत्मानन्दसे परिपूर्ण ॥ १४ ॥

सोमपोऽमृतपः सौम्यो महातेजा महाद्युतिः।
तेजोमयोऽमृतमयोऽन्नमयश्च सुधापतिः ॥ १५ ॥

११३ सोमपः—सोमपान करनेवाले अथवा सोमनाथरूपसे चन्द्रमाके पालक, ११४ अमृतपः—समाधिके द्वारा स्वरूपभूत अमृतका आस्वादन करनेवाले, ११५ सौम्यः—भक्तोंके लिये सौम्यरूपधारी, ११६ महातेजाः—महान् तेजसे सम्पन्न, ११७ महाद्युतिः—परमकान्तिमान्, ११८ तेजोमयः—प्रकाशस्वरूप, ११९ अमृतमयः—अमृतरूप, १२० अन्नमयः—अन्नरूप, १२१ सुधापतिः—अमृतके पालक ॥ १५ ॥

अजातशत्रुरालोकः सम्भाव्यो हव्यवाहनः।
लोककरो वेदकरः सूत्रकारः सनातनः ॥ १६ ॥

१२२ अजातशत्रुः—जिनके मनमें कभी किसीके प्रति शत्रुभाव नहीं पैदा हुआ, ऐसे समदर्शी, १२३ आलोकः—प्रकाशस्वरूप, १२४ सम्भाव्यः—सम्माननीय, १२५ हव्यवाहनः—अग्निस्वरूप, १२६ लोककरः—जगत्के स्रष्टा, १२७ वेदकरः—वेदोंके प्रकट करनेवाले, १२८ सूत्रकारः—व्याकरणके रूपमें चतुर्दश माहेश्वर सूत्रोंके प्रणेता, १२९ सनातनः—नित्यस्वरूप ॥ १६ ॥

महर्षिकपिलाचार्यो विश्वदीप्तिर्विलोचनः।
पिनाकपाणिर्भूदेवः स्वस्तिदः स्वस्तिकृत्सुधीः॥ १७॥

१३० महर्षिकपिलाचार्यः—सांख्यशास्त्रके प्रणेता भगवान् कपिलाचार्य, १३१ विश्वदीप्तिः—अपनी प्रभासे सबको प्रकाशित करनेवाले, १३२ विलोचनः—तीनों लोकोंके द्रष्टा, १३३ पिनाकपाणिः—हाथमें पिनाक नामक धनुष धारण करनेवाले, १३४ भूदेवः—पृथ्वीके देवता—ब्राह्मण अथवा पार्थिवलिङ्गरूप, १३५ स्वस्तिदः—कल्याणदाता, १३६ स्वस्तिकृत्—कल्याणकारी, १३७ सुधीः—विशुद्ध बुद्धिवाले॥ १७॥

धातुधामा धामकरः सर्वगः सर्वगोचरः।
ब्रह्मसृग्विश्वसृक्सर्गः कर्णिकारप्रियः कविः॥ १८॥

१३८ धातुधामा—विश्वका धारण-पोषण करनेमें समर्थ तेजवाले, १३९ धामकरः—तेजकी सृष्टि करनेवाले, १४० सर्वगः—सर्वव्यापी, १४१ सर्वगोचरः—सबमें व्याप्त, १४२ ब्रह्मसृक्—ब्रह्माजीके उत्पादक, १४३ विश्वसृक्—जगत्के स्रष्टा, १४४ सर्गः—सृष्टिस्वरूप, १४५ कर्णिकारप्रियः—कनेरके फूलको पसंद करनेवाले, १४६ कविः—त्रिकालदर्शी॥ १८॥

शाखो विशाखो गोशाखः शिवो भिषगनुत्तमः।
गङ्गाप्लवोदको भव्यः पुष्कलः स्थपतिः स्थिरः॥ १९॥

१४७ शाखः—कार्तिकेयके छोटे भाई शाखस्वरूप, १४८ विशाखः—स्कन्दके छोटे भाई विशाखस्वरूप अथवा विशाख नामक ऋषि, १४९ गोशाखः—वेदवाणीकी शाखाओंका विस्तार करनेवाले, १५० शिवः—मङ्गलमय, १५१ भिषगनुत्तमः—भवरोगका निवारण करनेवाले वैद्यों (ज्ञानियों) में सर्वश्रेष्ठ, १५२ गङ्गाप्लवोदकः—गङ्गाके प्रवाहरूप जलको सिरपर धारण करनेवाले, १५३ भव्यः—कल्याणस्वरूप, १५४ पुष्कलः—पूर्णतम अथवा व्यापक, १५५ स्थपतिः—ब्रह्माण्डरूपी भवनके निर्माता (थवई), १५६ स्थिरः—अचञ्चल अथवा स्थाणुरूप॥ १९॥

विजितात्मा विधेयात्मा भूतवाहनसारथिः।
सगणो गणकायश्च सुकीर्तिश्छिन्नसंशयः॥ २०॥

१५७ विजितात्मा—मनको वशमें रखनेवाले, १५८ विधेयात्मा—शरीर, मन और इन्द्रियोंसे अपनी इच्छाके अनुसार काम लेनेवाले, १५९ भूतवाहनसारथिः—पाञ्चभौतिक रथ (शरीर)का संचालन करनेवाले बुद्धिरूप सारथि, १६० सगणः—प्रमथगणोंके साथ रहनेवाले, १६१ गणकायः—गणस्वरूप, १६२ सुकीर्तिः—उत्तम कीर्तिवाले, १६३ छिन्नसंशयः—संशयोंको काट देनेवाले॥ २०॥

कामदेवः कामपालो भस्मोद्धूलितविग्रहः।
भस्मप्रियो भस्मशायी कामी कान्तः कृतागमः॥ २१॥

१६४ कामदेवः—मनुष्योंद्वारा अभिलषित समस्त कामनाओंके अधिष्ठाता परमदेव, १६५ कामपालः—सकाम भक्तोंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले, १६६ भस्मोद्धूलितविग्रहः—अपने श्रीअङ्गोंमें भस्म रमानेवाले, १६७ भस्मप्रियः—भस्मके प्रेमी, १६८ भस्मशायी—भस्मपर शयन करनेवाले, १६९ कामी—अपने प्रिय भक्तोंको चाहनेवाले, १७० कान्तः—परम कमनीय प्राणवल्लभरूप, १७१ कृतागमः—समस्त तन्त्रशास्त्रोंके रचयिता॥ २१॥

समावर्तोऽनिवृत्तात्मा धर्मपुत्रः सदाशिवः।
अकल्मषश्चतुर्बाहुर्दुरावासो दुरासदः॥ २२॥

१७२ समावर्तः—संसारचक्रको भली-

भाँति घुमानेवाले, १७३ अनिवृत्तात्मा—सर्वत्र विद्यमान होनेके कारण जिनका आत्मा कहींसे भी हटा नहीं है, ऐसे, १७४ धर्मपुञ्जः—धर्म या पुण्यकी राशि, १७५ सदाशिवः—निरन्तर कल्याणकारी, १७६ अकल्मषः—पापरहित, १७७ चतुर्बाहुः—चार भुजाधारी, १७८ दुरावासः—जिन्हें योगीजन भी बड़ी कठिनाईसे अपने हृदयमन्दिरमें बसा पाते हैं, ऐसे, १७९ दुरासदः—परम दुर्जय ॥ २२ ॥

दुर्लभो दुर्गमो दुर्गः सर्वायुधविशारदः।
अध्यात्मयोगनिलयः सुतन्तुस्तन्तुवर्धनः ॥ २३ ॥

१८० दुर्लभः—भक्तिहीन पुरुषोंको कठिनतासे प्राप्त होनेवाले, १८१ दुर्गमः—जिनके निकट पहुँचना किसीके लिये भी कठिन है ऐसे, १८२ दुर्गः—पाप-तापसे रक्षा करनेके लिये दुर्गरूप अथवा दुर्ज्ञेय, १८३ सर्वायुधविशारदः—सम्पूर्ण अस्त्रोंके प्रयोगकी कलामें कुशल, १८४ अध्यात्मयोगनिलयः—अध्यात्मयोगमें स्थित, १८५ सुतन्तुः—सुन्दर विस्तृत जगत्-रूप तन्तुवाले, १८६ तन्तुवर्धनः—जगत्-रूप तन्तुको बढ़ानेवाले ॥ २३ ॥

शुभाङ्गो लोकसारङ्गो जगदीशो जनार्दनः।
भस्मशुद्धिकरो मेरुरोजस्वी शुद्धविग्रहः ॥ २४ ॥

१८७ शुभाङ्गः—सुन्दर अङ्गोंवाले, १८८ लोकसारङ्गः—लोकसारग्राही, १८९ जगदीशः—जगत्के स्वामी, १९० जनार्दनः—भक्तजनोंकी याचनाके आलम्बन, १९१ भस्मशुद्धिकरः—भस्मसे शुद्धिका सम्पादन करनेवाले, १९२ मेरुः—सुमेरु पर्वतके समान केन्द्ररूप, १९३ ओजस्वी—तेज और बलसे सम्पन्न, १९४ शुद्धविग्रहः—निर्मल शरीरवाला ॥ २४ ॥

असाध्यः साधुसाध्यश्च मृत्युमर्कटरूपधृक्।
हिरण्यरेताः पौराणो रिपुजीवहरो बली ॥ २५ ॥

१९५ असाध्यः—साधन-भजनसे दूर रहनेवाले लोगोंके लिये अलभ्य, १९६ साधुसाध्यः—साधन-भजनपरायण सत्पुरुषोंके लिये सुलभ, १९७ मृत्युमर्कटरूपधृक्—श्रीरामके सेवक वानर हनुमान्‌का रूप धारण करनेवाले, १९८ हिरण्यरेताः—अग्निस्वरूप अथवा सुवर्णमय वीर्यवाले, १९९ पौराणः—पुराणोंद्वारा प्रतिपादित, २०० रिपुजीवहरः—शत्रुओंके प्राण हर लेनेवाले, २०१ बली—बलशाली ॥ २५ ॥

महाह्रदो महागर्तः सिद्धवृन्दारवन्दितः।
व्याघ्रचर्माम्बरो व्याली महाभूतो महानिधिः ॥ २६ ॥

२०२ महाह्रदः—परमानन्दके महान् सरोवर, २०३ महागर्तः—महान् आकाशरूप, २०४ सिद्धवृन्दारवन्दितः—सिद्धों और देवताओंद्वारा वन्दित, २०५ व्याघ्रचर्माम्बरः—व्याघ्रचर्मको वस्त्रके समान धारण करनेवाले, २०६ व्याली—सर्पोंको आभूषणकी भाँति धारण करनेवाले, २०७ महाभूतः—त्रिकालमें भी कभी नष्ट न होनेवाले महाभूतस्वरूप, २०८ महानिधिः—सबके महान् निवासस्थान ॥ २६ ॥

अमृताशोऽमृतवपुः पाञ्चजन्यः प्रभञ्जनः।
पञ्चविंशतितत्त्वस्थः पारिजातः परावरः ॥ २७ ॥

२०९ अमृताशः—जिनकी आशा कभी विफल न हो ऐसे अमोघसंकल्प, २१० अमृतवपुः—जिनका कलेवर कभी नष्ट न हो ऐसे—नित्यविग्रह, २११ पाञ्चजन्यः—पाञ्चजन्य नामक शङ्खस्वरूप, २१२ प्रभञ्जनः—वायुस्वरूप अथवा संहारकारी, २१३ पञ्चविंशतितत्त्वस्थः—प्रकृति, महत्तत्त्व (बुद्धि), अहंकार, चक्षु, श्रोत्र,

घ्राण, रसना, त्वक्, वाक्, पाणि, पायु, पाद, उपस्थ, मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन चौबीस जड तत्त्वोंसहित पचीसवें चेतनतत्त्वपुरुषमें व्याप्त, २१४ पारिजातः—याचकोंकी इच्छा पूर्ण करनेमें कल्पवृक्षरूप, २१५ परावरः—कारण-कार्यरूप ॥ २७ ॥

सुलभः सुव्रतः शूरो ब्रह्मवेदनिधिर्निधिः।
वर्णाश्रमगुरुर्वर्णी शत्रुजिच्छत्रुतापनः ॥ २८ ॥

२१६ सुलभः—नित्य-निरन्तर चिन्तन करनेवाले एकनिष्ठ श्रद्धालु भक्तको सुगमतासे प्राप्त होनेवाले, २१७ सुव्रतः—उत्तम व्रतधारी, २१८ शूरः—शौर्यसम्पन्न, २१९ ब्रह्मवेदनिधिः—ब्रह्मा और वेदके प्रादुर्भावके स्थान, २२० निधिः—जगत्-रूपी रत्नके उत्पत्तिस्थान, २२१ वर्णाश्रमगुरुः—वर्णों और आश्रमोंके गुरु (उपदेष्टा), २२२ वर्णी—ब्रह्मचारी, २२३ शत्रुजित्—अन्धकासुर आदि शत्रुओंको जीतनेवाले, २२४ शत्रुतापनः—शत्रुओंको संताप देनेवाले ॥ २८ ॥

आश्रमः क्षपणः क्षामो ज्ञानवानचलेश्वरः।
प्रमाणभूतो दुर्ज्ञेयः सुपर्णो वायुवाहनः ॥ २९ ॥

२२५ आश्रमः—सबके विश्रामस्थान, २२६ क्षपणः—जन्म-मरणके कष्टका मूलोच्छेद करनेवाले, २२७ क्षामः—प्रलयकालमें प्रजाको क्षीण करनेवाले, २२८ ज्ञानवान्—ज्ञानी, २२९ अचलेश्वरः—पर्वतों अथवा स्थावर पदार्थोंके स्वामी, २३० प्रमाणभूतः—नित्यसिद्ध प्रमाणरूप, २३१ दुर्ज्ञेयः—कठिनतासे जाननेयोग्य, २३२ सुपर्णः—वेदमय सुन्दर पंखवाले, गरुड़रूप, २३३ वायुवाहनः—अपने भयसे वायुको प्रवाहित करनेवाले ॥ २९ ॥

धनुर्धरो धनुर्वेदो गुणराशिर्गुणाकरः।
सत्यः सत्यपरोऽदीनो धर्माङ्गो धर्मसाधनः ॥ ३० ॥

२३४ धनुर्धरः—पिनाकधारी, २३५ धनुर्वेदः—धनुर्वेदके ज्ञाता, २३६ गुणराशिः—अनन्त कल्याणमय गुणोंकी राशि, २३७ गुणाकरः—सद्गुणोंकी खानि, २३८ सत्यः—सत्यस्वरूप, २३९ सत्यपरः—सत्यपरायण, २४० अदीनः—दीनतासे रहित—उदार, २४१ धर्माङ्गः—धर्ममय विग्रहवाले, २४२ धर्मसाधनः—धर्मका अनुष्ठान करनेवाले ॥ ३० ॥

अनन्तदृष्टिरानन्दो दण्डो दमयिता दमः।
अभिवाद्यो महामायो विश्वकर्मविशारदः ॥ ३१ ॥

२४३ अनन्तदृष्टिः—असीमित दृष्टिवाले, २४४ आनन्दः—परमानन्दमय, २४५ दण्डः—दुष्टोंको दण्ड देनेवाले अथवा दण्डस्वरूप, २४६ दमयिता—दुर्दान्त दानवोंका दमन करनेवाले, २४७ दमः—दमनस्वरूप, २४८ अभिवाद्यः—प्रणाम करनेयोग्य, २४९ महामायः—मायावियोंको भी मोहनेवाले महामायावी, २५० विश्वकर्मविशारदः—संसारकी सृष्टि करनेमें कुशल ॥ ३१ ॥

वीतरागो विनीतात्मा तपस्वी भूतभावनः।
उन्मत्तवेषः प्रच्छन्नो जितकामोऽजितप्रियः ॥ ३२ ॥

२५१ वीतरागः—पूर्णतया विरक्त, २५२ विनीतात्मा—मनसे विनयशील अथवा मनको वशमें रखनेवाले, २५३ तपस्वी—तपस्यापरायण, २५४ भूतभावनः—सम्पूर्ण भूतोंके उत्पादक एवं रक्षक, २५५ उन्मत्तवेषः—पागलोंके समान वेष धारण करनेवाले, २५६ प्रच्छन्नः—मायाके पर्देमें छिपे हुए, २५७ जितकामः—कामविजयी, २५८ अजितप्रियः—भगवान् विष्णुके प्रेमी ॥ ३२ ॥

कल्याणप्रकृतिः कल्पः सर्वलोकप्रजापतिः ।
तरस्वी तारको धीमान् प्रधानः प्रभुरव्ययः ॥ ३३॥

२५९ कल्याणप्रकृतिः— **कल्याणकारी स्वभाववाले,** २६० कल्पः—**समर्थ,** २६१ सर्वलोकप्रजापतिः—**सम्पूर्ण लोकोंकी प्रजाके पालक,** २६२ तरस्वी—**वेगशाली,** २६३ तारकः—**उद्धारक,** २६४ धीमान्—**विशुद्ध बुद्धिसे युक्त,** २६५ प्रधानः—**सबसे श्रेष्ठ,** २६६ प्रभुः—**सर्वसमर्थ,** २६७ अव्ययः— **अविनाशी ॥ ३३ ॥**

लोकपालोऽन्तर्हितात्मा कल्पादिः कमलेक्षणः ।
वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञोऽनियमो नियताश्रयः ॥ ३४ ॥

२६८ लोकपालः—**समस्त लोकोंकी रक्षा करनेवाले,** २६९ अन्तर्हितात्मा—**अन्तर्यामी आत्मा अथवा अदृश्य स्वरूपवाले,** २७० कल्पादिः— **कल्पके आदिकारण,** २७१ कमलेक्षणः— **कमलके समान नेत्रवाले,** २७२ वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः—**वेदों और शास्त्रोंके अर्थ एवं तत्त्वको जाननेवाले,** २७३ अनियमः— **नियन्त्रणरहित,** २७४ नियताश्रयः—**सबके सुनिश्चित आश्रयस्थान ॥ ३४ ॥**

चन्द्रः सूर्यः शनिः केतुर्विराङ्गो विद्रुमच्छविः ।
भक्तिवश्यः परब्रह्म मृगबाणार्पणोऽनघः ॥ ३५ ॥

२७५ चन्द्रः— **चन्द्रमारूपसे आह्लादकारी,** २७६ सूर्यः—**सबकी उत्पत्तिके हेतुभूत सूर्य,** २७७ शनिः—**शनैश्चररूप,** २७८ केतुः— **केतु नामक ग्रहस्वरूप,** २७९ विराङ्गः—**सुन्दर शरीरवाले,** २८० विद्रुमच्छविः—**मूँगेकी-सी लाल कान्तिवाले,** २८१ भक्तिवश्यः—**भक्तिके द्वारा भक्तके वशमें होनेवाले,** २८२ परब्रह्म— **परमात्मा,** २८३ मृगबाणार्पणः—**मृगरूपधारी यज्ञपर बाण चलानेवाले,** २८४ अनघः— **पापरहित ॥ ३५ ॥**

अद्रिरद्र्यालयः कान्तः परमात्मा जगद्गुरुः ।
सर्वकर्मालयस्तुष्टो मङ्गल्यो मङ्गलावृतः ॥ ३६ ॥

२८५ अद्रिः—**कैलास आदि पर्वतस्वरूप,** २८६ अद्र्यालयः—**कैलास और मन्दर आदि पर्वतोंपर निवास करनेवाले,** २८७ कान्तः—**सबके प्रियतम,** २८८ परमात्मा—**परब्रह्म परमेश्वर,** २८९ जगद्गुरुः—**समस्त संसारके गुरु,** २९० सर्वकर्मालयः—**सम्पूर्ण कर्मोंके आश्रयस्थान,** २९१ तुष्टः—**सदा प्रसन्न,** २९२ मङ्गल्यः— **मङ्गलकारी,** २९३ मङ्गलावृतः—**मङ्गलकारिणी शक्तिसे संयुक्त ॥ ३६ ॥**

महातपा दीर्घतपाः स्थविष्ठः स्थविरो ध्रुवः ।
अहःसंवत्सरो व्याप्तिः प्रमाणं परमं तपः ॥ ३७ ॥

२९४ महातपाः—**महान् तपस्वी,** २९५ दीर्घतपाः—**दीर्घकालतक तप करनेवाले,** २९६ स्थविष्ठः—**अत्यन्त स्थूल,** २९७ स्थविरो ध्रुवः—**अति प्राचीन एवं अत्यन्त स्थिर,** २९८ अहःसंवत्सरः—**दिन एवं संवत्सर आदि कालरूपसे स्थित, अंशकालस्वरूप,** २९९ व्याप्तिः— **व्यापकतास्वरूप,** ३०० प्रमाणम्—**प्रत्यक्षादि प्रमाणस्वरूप,** ३०१ परमं तपः—**उत्कृष्ट तपस्या-स्वरूप ॥ ३७ ॥**

संवत्सरकरो मन्त्रप्रत्ययः सर्वदर्शनः ।
अजः सर्वेश्वरः सिद्धो महारेता महाबलः ॥ ३८ ॥

३०२ संवत्सरकरः—**संवत्सर आदि कालविभागके उत्पादक,** ३०३ मन्त्रप्रत्ययः—**वेद आदि मन्त्रोंसे प्रतीत (प्रत्यक्ष) होनेयोग्य,** ३०४ सर्वदर्शनः—**सबके साक्षी,** ३०५ अजः— **अजन्मा,** ३०६ सर्वेश्वरः—**सबके शासक,** ३०७ सिद्धः—**सिद्धियोंके आश्रय,** ३०८ महारेताः—**श्रेष्ठ वीर्यवाले,**

३०९ महाबलः— **प्रमथगणोंकी महती सेनासे सम्पन्न ॥ ३८ ॥**

योगी योग्यो महातेजाः सिद्धिः सर्वादिरग्रहः ।
वसुर्वसुमनाः सत्यः सर्वपापहरो हरः ॥ ३९ ॥

३१० योगी योग्यः—**सुयोग्य योगी,** ३११ महातेजाः—**महान् तेजसे सम्पन्न,** ३१२ सिद्धिः—**समस्त साधनोंके फल,** ३१३ सर्वादिः—**सब भूतोंके आदिकारण,** ३१४ अग्रहः—**इन्द्रियोंकी ग्रहणशक्तिके अविषय,** ३१५ वसुः—**सब भूतोंके वासस्थान,** ३१६ वसुमनाः—**उदार मनवाले,** ३१७ सत्यः—**सत्यस्वरूप,** ३१८ सर्वपापहरो हरः—**समस्त पापोंका अपहरण करनेके कारण हर नामसे प्रसिद्ध ॥ ३९ ॥**

सुकीर्तिशोभनः श्रीमान् वेदाङ्गो वेदविन्मुनिः ।
भ्राजिष्णुर्भोजनं भोक्ता लोकनाथो दुराधरः ॥ ४० ॥

३१९ सुकीर्तिशोभनः—**उत्तम कीर्तिसे सुशोभित होनेवाले,** ३२० श्रीमान्—**विभूतिस्वरूपा उमासे सम्पन्न,** ३२१ वेदाङ्गः—**वेदरूप अङ्गोंवाले,** ३२२ वेदविन्मुनिः—**वेदोंका विचार करनेवाले मननशील मुनि,** ३२३ भ्राजिष्णुः—**एकरस प्रकाशस्वरूप,** ३२४ भोजनम्—**ज्ञानियोंद्वारा भोगनेयोग्य अमृतस्वरूप,** ३२५ भोक्ता—**पुरुषरूपसे उपभोग करनेवाले,** ३२६ लोकनाथः—**भगवान् विश्वनाथ,** ३२७ दुराधरः—**अजितेन्द्रिय पुरुषोंद्वारा जिनकी आराधना अत्यन्त कठिन है, ऐसे ॥ ४० ॥**

अमृतः शाश्वतः शान्तो बाणहस्तः प्रतापवान् ।
कमण्डलुधरो धन्वी अवाङ्मनसगोचरः ॥ ४१ ॥

३२८ अमृतः शाश्वतः—**सनातन अमृतस्वरूप,** ३२९ शान्तः—**शान्तिमय,** ३३० बाणहस्तः प्रतापवान्—**हाथमें बाण धारण करनेवाले प्रतापी वीर,** ३३१ कमण्डलुधरः—**कमण्डलु धारण करनेवाले,** ३३२ धन्वी—**पिनाकधारी,** ३३३ अवाङ्मनसगोचरः—**मन और वाणीके अविषय ॥ ४१ ॥**

अतीन्द्रियो महामायः सर्वावासश्चतुष्पथः ।
कालयोगी महानादो महोत्साहो महाबलः ॥ ४२ ॥

३३४ अतीन्द्रियो महामायः—**इन्द्रियातीत एवं महामायावी,** ३३५ सर्वावासः—**सबके वासस्थान,** ३३६ चतुष्पथः—**चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धिके एकमात्र मार्ग,** ३३७ कालयोगी—**प्रलयके समय सबको कालसे संयुक्त करनेवाले,** ३३८ महानादः—**गम्भीर शब्द करनेवाले अथवा अनाहत नादरूप,** ३३९ महोत्साहो महाबलः—**महान् उत्साह और बलसे सम्पन्न ॥ ४२ ॥**

महाबुद्धिर्महाधैर्यो भूतचारी पुरंदरः ।
निशाचरः प्रेतचारी महाशक्तिर्महाद्युतिः ॥ ४३ ॥

३४० महाबुद्धिः—**श्रेष्ठबुद्धिवाले,** ३४१ महाधैर्यः—**अनन्त पराक्रमी,** ३४२ भूतचारी—**भूतगणोंके साथ विचरनेवाले,** ३४३ पुरंदरः—**त्रिपुरसंहारक,** ३४४ निशाचरः—**रात्रिमें विचरण करनेवाले,** ३४५ प्रेतचारी—**प्रेतोंके साथ भ्रमण करनेवाले,** ३४६ महाशक्तिर्महाद्युतिः—**अनन्तशक्ति एवं श्रेष्ठ कान्तिसे सम्पन्न ॥ ४३ ॥**

अनिर्देश्यवपुः श्रीमान् सर्वाचार्यमनोगतिः ।
बहुश्रुतोऽमहामायो नियतात्मा ध्रुवोऽध्रुवः ॥ ४४ ॥

३४७ अनिर्देश्यवपुः—**अनिर्वचनीय स्वरूपवाले,** ३४८ श्रीमान्—**ऐश्वर्यवान्,** ३४९ सर्वाचार्यमनोगतिः—**सबके लिये अविचार्य मनोगतिवाले,** ३५० बहुश्रुतः—**बहुज्ञ अथवा सर्वज्ञ,** ३५१ अमहामायः—**बड़ी-से-बड़ी माया भी जिनपर प्रभाव नहीं डाल सकती ऐसे,** ३५२ नियतात्मा—**मनको वशमें रखनेवाले,** ३५३ ध्रुवोऽध्रुवः—**ध्रुव (नित्य कारण) और अध्रुव**

(अनित्यकार्य)-रूप ॥ ४४ ॥

ओजस्तेजोद्युतिधरो जनकः सर्वशासनः ।
नृत्यप्रियो नित्यनृत्यः प्रकाशात्मा प्रकाशकः ॥ ४५ ॥

३५४ ओजस्तेजोद्युतिधरः—ओज (प्राण और बल), तेज (शौर्य आदि गुण) तथा ज्ञानकी दीप्तिको धारण करनेवाले, ३५५ जनकः—सबके उत्पादक, ३५६ सर्वशासनः—सबके शासक, ३५७ नृत्यप्रियः—नृत्यके प्रेमी, ३५८ नित्यनृत्यः—प्रतिदिन ताण्डव नृत्य करनेवाले, ३५९ प्रकाशात्मा—प्रकाशस्वरूप, ३६० प्रकाशकः—सूर्य आदिको भी प्रकाश देनेवाले ॥ ४५ ॥

स्पष्टाक्षरो बुधो मन्त्रः समानः सारसम्प्लवः ।
युगादिकृद्युगावर्तो गम्भीरो वृषवाहनः ॥ ४६ ॥

३६१ स्पष्टाक्षरः—ओंकाररूप स्पष्ट अक्षरवाले, ३६२ बुधः—ज्ञानवान्, ३६३ मन्त्रः—ऋक्, साम और यजुर्वेदके मन्त्रस्वरूप, ३६४ समानः—सबके प्रति समान भाव रखनेवाले, ३६५ सारसम्प्लवः—संसारसागरसे पार होनेके लिये नौकारूप, ३६६ युगादिकृद्युगावर्तः—युगादिका आरम्भ करनेवाले तथा चारों युगोंको चक्रकी तरह घुमानेवाले, ३६७ गम्भीरः—गाम्भीर्यसे युक्त, ३६८ वृषवाहनः—नन्दी नामक वृषभपर सवार होनेवाले ॥ ४६ ॥

इष्टोऽविशिष्टः शिष्टेष्टः सुलभः सारशोधनः ।
तीर्थरूपस्तीर्थनामा तीर्थदृश्यस्तु तीर्थदः ॥ ४७ ॥

३६९ इष्टः—परमानन्दस्वरूप होनेसे सर्वप्रिय, ३७० अविशिष्टः—सम्पूर्ण विशेषणोंसे रहित, ३७१ शिष्टेष्टः—शिष्ट पुरुषोंके इष्टदेव, ३७२ सुलभः—अनन्यचित्तसे निरन्तर स्मरण करनेवाले भक्तोंके लिये सुगमतासे प्राप्त होनेयोग्य, ३७३ सारशोधनः—सारतत्त्वकी खोज करनेवाले, ३७४ तीर्थरूपः—तीर्थस्वरूप, ३७५ तीर्थनामा—तीर्थनामधारी अथवा जिनका नाम भवसागरसे पार लगानेवाला है, ऐसे, ३७६ तीर्थदृश्यः—तीर्थसेवनसे अपने स्वरूपका दर्शन करानेवाले अथवा गुरुकृपासे प्रत्यक्ष होनेवाले, ३७७ तीर्थदः—चरणोदक-स्वरूप तीर्थको देनेवाले ॥ ४७ ॥

अपांनिधिरधिष्ठानं दुर्जयो जयकालवित् ।
प्रतिष्ठितः प्रमाणज्ञो हिरण्यकवचो हरिः ॥ ४८ ॥

३७८ अपांनिधिः—जलके निधान समुद्ररूप, ३७९ अधिष्ठानम्—उपादान-कारणरूपसे सब भूतोंके आश्रय अथवा जगत्-रूप प्रपञ्चके अधिष्ठान, ३८० दुर्जयः—जिनको जीतना कठिन है, ऐसे, ३८१ जयकालवित्—विजयके अवसरको समझनेवाले, ३८२ प्रतिष्ठितः—अपनी महिमामें स्थित, ३८३ प्रमाणज्ञः—प्रमाणोंके ज्ञाता, ३८४ हिरण्यकवचः—सुवर्णमय कवच धारण करनेवाले, ३८५ हरिः—श्रीहरिस्वरूप ॥ ४८ ॥

विमोचनः सुरगणो विद्येशो बिन्दुसंश्रयः ।
बालरूपोऽबलोन्मत्तोऽविकर्ता गहनो गुहः ॥ ४९ ॥

३८६ विमोचनः—संसारबन्धनसे सदाके लिये छुड़ा देनेवाले, ३८७ सुरगणः—देवसमुदायरूप, ३८८ विद्येशः—सम्पूर्ण विद्याओंके स्वामी, ३८९ बिन्दुसंश्रयः—बिन्दुरूप प्रणवके आश्रय, ३९० बालरूपः—बालकका रूप धारण करनेवाले, ३९१ अबलोन्मत्तः—बलसे उन्मत्त न होनेवाले, ३९२ अविकर्ता—विकाररहित, ३९३ गहनः—दुर्बोधस्वरूप या अगम्य, ३९४ गुहः—मायासे अपने यथार्थ स्वरूपको छिपाये रखनेवाले ॥ ४९ ॥

करणं कारणं कर्ता सर्वबन्धविमोचनः।
व्यवसायो व्यवस्थानः स्थानदो जगदादिजः॥ ५०॥

३९५ करणम्—संसारकी उत्पत्तिके सबसे बड़े साधन, ३९६ कारणम्—जगत्के उपादान और निमित्त कारण, ३९७ कर्ता—सबके रचयिता, ३९८ सर्वबन्धविमोचनः—सम्पूर्ण बन्धनोंसे छुड़ानेवाले, ३९९ व्यवसायः—निश्चयात्मक ज्ञानस्वरूप, ४०० व्यवस्थानः—सम्पूर्ण जगत्की व्यवस्था करनेवाले, ४०१ स्थानदः—ध्रुव आदि भक्तोंको अविचल स्थिति प्रदान कर देनेवाले, ४०२ जगदादिजः—हिरण्यगर्भरूपसे जगत्के आदिमें प्रकट होनेवाले॥ ५०॥

गुरुदो ललितोऽभेदो भावात्माऽऽत्मनि संस्थितः।
वीरेश्वरो वीरभद्रो वीरासनविधिर्विराट्॥ ५१॥

४०३ गुरुदः—श्रेष्ठ वस्तु प्रदान करनेवाले अथवा जिज्ञासुओंको गुरुकी प्राप्ति करानेवाले, ४०४ ललितः—सुन्दर स्वरूपवाले, ४०५ अभेदः—भेदरहित, ४०६ भावात्माऽऽत्मनि संस्थितः—सत्स्वरूप आत्मामें प्रतिष्ठित, ४०७ वीरेश्वरः—वीरशिरोमणि, ४०८ वीरभद्रः—वीरभद्र नामक गणाध्यक्ष, ४०९ वीरासनविधिः—वीरासनसे बैठनेवाले, ४१० विराट्—अखिलब्रह्माण्डस्वरूप॥ ५१॥

वीरचूडामणिर्वेत्ता विदानन्दो नदीधरः।
आज्ञाधारस्त्रिशूली च शिपिविष्टः शिवालयः॥ ५२॥

४११ वीरचूडामणिः—वीरोंमें श्रेष्ठ, ४१२ वेत्ता—विद्वान्, ४१३ विदानन्दः—विज्ञानानन्दस्वरूप, ४१४ नदीधरः—मस्तकपर गङ्गाजीको धारण करनेवाले, ४१५ आज्ञाधारः—आज्ञाका पालन करनेवाले, ४१६ त्रिशूली—त्रिशूलधारी, ४१७ शिपिविष्टः—तेजोमयी किरणोंसे व्याप्त, ४१८ शिवालयः—भगवती शिवाके आश्रय॥ ५२॥

बालखिल्यो महाचापस्तिग्मांशुर्बधिरः खगः।
अभिरामः सुशरणः सुब्रह्मण्यः सुधापतिः॥ ५३॥

४१९ बालखिल्यः—बालखिल्य ऋषिरूप, ४२० महाचापः—महान् धनुर्धर, ४२१ तिग्मांशुः—सूर्यरूप, ४२२ बधिरः—लौकिक विषयोंकी चर्चा न सुननेवाले, ४२३ खगः—आकाशचारी, ४२४ अभिरामः—परम सुन्दर, ४२५ सुशरणः—सबके लिये सुन्दर आश्रयरूप, ४२६ सुब्रह्मण्यः—ब्राह्मणोंके परम हितैषी, ४२७ सुधापतिः—अमृतकलशके रक्षक॥ ५३॥

मघवान्कौशिको गोमान्विरामः सर्वसाधनः।
ललाटाक्षो विश्वदेहः सारः संसारचक्रभृत्॥ ५४॥

४२८ मघवान् कौशिकः—कुशिकवंशीय इन्द्रस्वरूप, ४२९ गोमान्—प्रकाशकिरणोंसे युक्त, ४३० विरामः—समस्त प्राणियोंके लयके स्थान, ४३१ सर्वसाधनः—समस्त कामनाओंको सिद्ध करनेवाले, ४३२ ललाटाक्षः—ललाटमें तीसरा नेत्र धारण करनेवाले, ४३३ विश्वदेहः—जगत्स्वरूप, ४३४ सारः—सारतत्त्वरूप, ४३५ संसारचक्रभृत्—संसारचक्रको धारण करनेवाले॥ ५४॥

अमोघदण्डो मध्यस्थो हिरण्यो ब्रह्मवर्चसी।
परमार्थः परो मायी शम्बरो व्यालोचनः॥ ५५॥

४३६ अमोघदण्डः—जिनका दण्ड कभी व्यर्थ नहीं जाता है, ऐसे, ४३७ मध्यस्थः—उदासीन, ४३८ हिरण्यः—सुवर्ण अथवा तेजःस्वरूप, ४३९ ब्रह्मवर्चसी—ब्रह्मतेजसे सम्पन्न, ४४० परमार्थः—मोक्षरूप उत्कृष्ट अर्थकी प्राप्ति करानेवाले, ४४१ परो मायी—महामायावी, ४४२ शम्बरः—कल्याणप्रद,

४४३ व्याघ्रलोचनः—व्याघ्रके समान भयानक नेत्रोंवाले ॥ ५५ ॥

रुचिर्विरिञ्चिः स्वर्बन्धुर्वाचस्पतिरहर्पतिः ।
रविर्विरोचनः स्कन्दः शास्ता वैवस्वतो यमः ॥ ५६ ॥

४४४ रुचिः—दीप्तिरूप, ४४५ विरिञ्चिः—ब्रह्मस्वरूप, ४४६ स्वर्बन्धुः—स्वर्लोकमें बन्धुके समान सुखद, ४४७ वाचस्पतिः—वाणीके अधिपति, ४४८ अहर्पतिः—दिनके स्वामी सूर्यरूप, ४४९ रविः—समस्त रसोंका शोषण करनेवाले, ४५० विरोचनः—विविध प्रकारसे प्रकाश फैलानेवाले, ४५१ स्कन्दः—स्वामी कार्तिकेयरूप, ४५२ शास्ता वैवस्वतो यमः—सबपर शासन करनेवाले सूर्यकुमार यम ॥ ५६ ॥

युक्तिरुन्नतकीर्तिश्च सानुरागः परंजयः ।
कैलासाधिपतिः कान्तः सविता रविलोचनः ॥ ५७ ॥

४५३ युक्तिरुन्नतकीर्तिः—अष्टाङ्गयोगस्वरूप तथा ऊर्ध्वलोकमें फैली हुई कीर्तिसे युक्त, ४५४ सानुरागः—भक्तजनोंपर प्रेम रखनेवाले, ४५५ परंजयः—दूसरोंपर विजय पानेवाले, ४५६ कैलासाधिपतिः—कैलासके स्वामी, ४५७ कान्तः—कमनीय अथवा कान्तिमान्, ४५८ सविता—समस्त जगत्को उत्पन्न करनेवाले, ४५९ रविलोचनः—सूर्यरूप नेत्रवाले ॥ ५७ ॥

विद्वत्तमो वीतभयो विश्वभर्तानिवारितः ।
नित्यो नियतकल्याणः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ ५८ ॥

४६० विद्वत्तमः—विद्वानोंमें सर्वश्रेष्ठ, परम विद्वान्, ४६१ वीतभयः—सब प्रकारके भयसे रहित, ४६२ विश्वभर्ता—जगत्का भरण-पोषण करनेवाले, ४६३ अनिवारितः—जिन्हें कोई रोक नहीं सकता ऐसे, ४६४ नित्यः—सत्यस्वरूप, ४६५ नियतकल्याणः—सुनिश्चितरूपसे कल्याणकारी, ४६६ पुण्यश्रवणकीर्तनः—जिनके नाम, गुण, महिमा और स्वरूपके श्रवण तथा कीर्तन परम पावन है, ऐसे ॥ ५८ ॥

दूरश्रवा विश्वसहो ध्येयो दुःस्वप्ननाशनः ।
उत्तारणो दुष्कृतिहा विज्ञेयो दुःसहोऽभवः ॥ ५९ ॥

४६७ दूरश्रवाः—सर्वव्यापी होनेके कारण दूरकी बात भी सुन लेनेवाले, ४६८ विश्वसहः—भक्तजनोंके सब अपराधोंको कृपापूर्वक सह लेनेवाले, ४६९ ध्येयः—ध्यान करनेयोग्य, ४७० दुःस्वप्ननाशनः—चिन्तन करनेमात्रसे बुरे स्वप्नोंका नाश करनेवाले, ४७१ उत्तारणः—संसार-सागरसे पार उतारनेवाले, ४७२ दुष्कृतिहा—पापोंका नाश करनेवाले, ४७३ विज्ञेयः—जाननेके योग्य, ४७४ दुःसहः—जिनके वेगको सहन करना दूसरोंके लिये अत्यन्त कठिन है, ऐसे, ४७५ अभवः—संसारबन्धनसे रहित अथवा अजन्मा ॥ ५९ ॥

अनादिर्भूर्भुवो लक्ष्मीः किरीटी त्रिदशाधिपः ।
विश्वगोप्ता विश्वकर्ता सुवीरो रुचिराङ्गदः ॥ ६० ॥

४७६ अनादिः—जिनका कोई आदि नहीं है, ऐसे सबके कारणस्वरूप, ४७७ भूर्भुवो लक्ष्मीः—भूर्लोक और भुवर्लोककी शोभा, ४७८ किरीटी—मुकुटधारी, ४७९ त्रिदशाधिपः—देवताओंके स्वामी, ४८० विश्वगोप्ता—जगत्के रक्षक, ४८१ विश्वकर्ता—संसारकी सृष्टि करनेवाले, ४८२ सुवीरः—श्रेष्ठ वीर, ४८३ रुचिराङ्गदः—सुन्दर बाजूबंद धारण करनेवाले ॥ ६० ॥

जननो जनजन्मादिः प्रीतिमान्नीतिमान्धवः ।
वसिष्ठः कश्यपो भानुर्भीमो भीमपराक्रमः ॥ ६१ ॥

४८४ जननः—प्राणिमात्रको जन्म देनेवाले, ४८५ जनजन्मादिः—जन्म लेने-

वालोंके जन्मके मूल कारण, ४८६ प्रीतिमान्—प्रसन्न, ४८७ नीतिमान्—सदा नीतिपरायण, ४८८ ध्रुवः—सबके स्वामी, ४८९ वसिष्ठः—मन और इन्द्रियोंको अत्यन्त वशमें रखनेवाले अथवा वसिष्ठ ऋषिरूप, ४९० कश्यपः—द्रष्टा अथवा कश्यप मुनिरूप, ४९१ भानुः—प्रकाशमान अथवा सूर्यरूप, ४९२ भीमः—दुष्टोंको भय देनेवाले, ४९३ भीमपराक्रमः—अतिशय भयदायक पराक्रमसे युक्त ॥ ६१ ॥

प्रणवः सत्पथाचारो महाकोशो महाधनः।
जन्माधिपो महादेवः सकलागमपारगः ॥ ६२ ॥

४९४ प्रणवः—ओंकारस्वरूप, ४९५ सत्पथाचारः—सत्पुरुषोंके मार्गपर चलनेवाले, ४९६ महाकोशः—अन्नमयादि पाँचों कोशोंको अपने भीतर धारण करनेके कारण महाकोशरूप, ४९७ महाधनः—अपरिमित ऐश्वर्यवाले अथवा कुबेरको भी धन देनेके कारण महाधनवान्, ४९८ जन्माधिपः—जन्म (उत्पादन) रूपी कार्यके अध्यक्ष ब्रह्मा, ४९९ महादेवः—सर्वोत्कृष्ट देवता, ५०० सकलागमपारगः—समस्त शास्त्रोंके पारंगत विद्वान् ॥ ६२ ॥

तत्त्वं तत्त्वविदेकात्मा विभुर्विश्वविभूषणः।
ऋषिर्ब्राह्मण ऐश्वर्यजन्ममृत्युजरातिगः ॥ ६३ ॥

५०१ तत्त्वम्—यथार्थ तत्त्वरूप, ५०२ तत्त्ववित्—यथार्थ तत्त्वको पूर्णतया जाननेवाले, ५०३ एकात्मा—अद्वितीय आत्मरूप, ५०४ विभुः—सर्वत्र व्यापक, ५०५ विश्वभूषणः—सम्पूर्ण जगत्को उत्तम गुणोंसे विभूषित करनेवाले, ५०६ ऋषिः—मन्त्रद्रष्टा, ५०७ ब्राह्मणः—ब्रह्मवेत्ता, ५०८ ऐश्वर्यजन्ममृत्युजरातिगः—ऐश्वर्य, जन्म, मृत्यु और जरासे अतीत ॥ ६३ ॥

पञ्चयज्ञसमुत्पत्तिर्विश्वेशो विमलोदयः।
आत्मयोनिरनाद्यन्तो वत्सलो भक्तलोकधृक् ॥ ६४ ॥

५०९ पञ्चयज्ञसमुत्पत्तिः—पञ्च महायज्ञोंकी उत्पत्तिके हेतु, ५१० विश्वेशः—विश्वनाथ, ५११ विमलोदयः—निर्मल अभ्युदयकी प्राप्ति करानेवाले धर्मरूप, ५१२ आत्मयोनिः—स्वयम्भू, ५१३ अनाद्यन्तः—आदि-अन्तसे रहित, ५१४ वत्सलः—भक्तोंके प्रति वात्सल्य-स्नेहसे युक्त, ५१५ भक्तलोकधृक्—भक्तजनोंके आश्रय ॥ ६४ ॥

गायत्रीवल्लभः प्रांशुर्विश्वावासः प्रभाकरः।
शिशुर्गिरिरतः सम्राट् सुषेणः सुरशत्रुहा ॥ ६५ ॥

५१६ गायत्रीवल्लभः—गायत्रीमन्त्रके प्रेमी, ५१७ प्रांशुः—ऊँचे शरीरवाले, ५१८ विश्वावासः—सम्पूर्ण जगत्के आवासस्थान, ५१९ प्रभाकरः—सूर्यरूप, ५२० शिशुः—बालकरूप, ५२१ गिरिरतः—कैलास पर्वतपर रमण करनेवाले, ५२२ सम्राट्—देवेश्वरोंके भी ईश्वर, ५२३ सुषेणः सुरशत्रुहा—प्रमथगणोंकी सुन्दर सेनासे युक्त तथा देवशत्रुओंका संहार करनेवाले ॥ ६५ ॥

अमोघोऽरिष्टनेमिश्च कुमुदो विगतज्वरः।
स्वयंज्योतिस्तनुज्योतिरात्मज्योतिरचञ्चलः ॥ ६६ ॥

५२४ अमोघोऽरिष्टनेमिः—अमोघ संकल्पवाले महर्षि कश्यपरूप, ५२५ कुमुदः—भूतलको आह्लाद प्रदान करनेवाले चन्द्रमारूप, ५२६ विगतज्वरः—चिन्तारहित, ५२७ स्वयंज्योतिस्तनुज्योतिः—अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित होनेवाले सूक्ष्मज्योतिःस्वरूप, ५२८ आत्मज्योतिः—अपने स्वरूपभूत ज्ञानकी प्रभासे प्रकाशित, ५२९ अचञ्चलः—चञ्चलतासे रहित ॥ ६६ ॥

पिङ्गलः कपिलश्मश्रुर्भालनेत्रस्त्रयीतनुः ।
ज्ञानस्कन्दो महानीतिर्विश्वोत्पत्तिरुपप्लवः ॥ ६७ ॥

५३० पिङ्गलः— पिङ्गलवर्णवाले, ५३१ कपिलश्मश्रुः—कपिल वर्णकी दाढ़ी-मूँछ रखनेवाले दुर्वासा मुनिके रूपमें अवतीर्ण, ५३२ भालनेत्रः— ललाटमें तृतीय नेत्र धारण करनेवाले, ५३३ त्रयीतनुः— तीनों लोक या तीनों वेद जिनके स्वरूप हैं, ऐसे, ५३४ ज्ञानस्कन्दो महानीतिः— ज्ञानप्रद और श्रेष्ठ नीतिवाले, ५३५ विश्वोत्पत्तिः— जगत्‌के उत्पादक, ५३६ उपप्लवः— संहारकारी ॥ ६७ ॥

भगो विवस्वानादित्यो योगपारो दिवस्पतिः ।
कल्याणगुणनामा च पापहा पुण्यदर्शनः ॥ ६८ ॥

५३७ भगो विवस्वानादित्यः— अदितिनन्दन भग एवं विवस्वान्, ५३८ योगपारः—योग विद्यामें पारंगत, ५३९ दिवस्पतिः—स्वर्ग लोकके स्वामी, ५४० कल्याणगुणनामा— कल्याणकारी गुण और नामवाले, ५४१ पापहा— पापनाशक, ५४२ पुण्यदर्शनः— पुण्यजनक दर्शनवाले अथवा पुण्यसे ही जिनका दर्शन होता है, ऐसे ॥ ६८ ॥

उदारकीर्तिरुद्योगी सद्योगी सदसन्मयः ।
नक्षत्रमाली नाकेशः स्वाधिष्ठानपदाश्रयः ॥ ६९ ॥

५४३ उदारकीर्तिः—उत्तम कीर्तिवाले, ५४४ उद्योगी—उद्योगशील, ५४५ सद्योगी—श्रेष्ठ योगी, ५४६ सदसन्मयः—सदसत्स्वरूप, ५४७ नक्षत्रमाली—नक्षत्रोंकी मालासे अलंकृत आकाशरूप, ५४८ नाकेशः— स्वर्गके स्वामी, ५४९ स्वाधिष्ठानपदाश्रयः— स्वाधिष्ठान चक्रके आश्रय ॥ ६९ ॥

पवित्रः पापहारी च मणिपूरो नभोगतिः ।
हृत्पुण्डरीकमासीनः शक्रः शान्तो वृषाकपिः ॥ ७० ॥

५५० पवित्रः पापहारी—नित्य शुद्ध एवं पापनाशक, ५५१ मणिपूरः—मणिपूर नामक चक्रस्वरूप, ५५२ नभोगतिः— आकाशचारी, ५५३ हृत्पुण्डरीकमासीनः— हृदयकमलमें स्थित, ५५४ शक्रः—इन्द्ररूप, ५५५ शान्तः— शान्त-स्वरूप, ५५६ वृषाकपिः— हरिहर ॥ ७० ॥

उष्णो गृहपतिः कृष्णः समर्थोऽनर्थनाशनः ।
अधर्मशत्रुरज्ञेयः पुरुहूतः पुरुश्रुतः ॥ ७१ ॥

५५७ उष्णः—हालाहल विषकी गर्मीसे उष्णतायुक्त, ५५८ गृहपतिः— समस्त ब्रह्माण्डरूपी गृहके स्वामी, ५५९ कृष्णः— सच्चिदानन्दस्वरूप, ५६० समर्थः—सामर्थ्यशाली, ५६१ अनर्थनाशनः—अनर्थका नाश करनेवाले, ५६२ अधर्मशत्रुः— अधर्मनाशक, ५६३ अज्ञेयः—बुद्धिकी पहुँचसे परे अथवा जाननेमें न आनेवाले, ५६४ पुरुहूतः पुरुश्रुतः— बहुत-से नामोंद्वारा पुकारे और सुने जानेवाले ॥ ७१ ॥

ब्रह्मगर्भो बृहद्गर्भो धर्मधेनुर्धनागमः ।
जगद्धितैषी सुगतः कुमारः कुशलागमः ॥ ७२ ॥

५६५ ब्रह्मगर्भः—ब्रह्मा जिनके गर्भस्थ शिशुके समान हैं, ऐसे, ५६६ बृहद्गर्भः— विश्वब्रह्माण्ड प्रलयकालमें जिनके गर्भमें रहता है, ऐसे, ५६७ धर्मधेनुः—धर्मरूपी वृषभको उत्पन्न करनेके लिये धेनुस्वरूप, ५६८ धनागमः—धनकी प्राप्ति करानेवाले, ५६९ जगद्धितैषी—समस्त संसारका हित चाहनेवाले, ५७० सुगतः—उत्तम ज्ञानसे सम्पन्न अथवा बुद्धस्वरूप, ५७१ कुमारः— कार्तिकेयरूप, ५७२ कुशलागमः— कल्याणदाता ॥ ७२ ॥

हिरण्यवर्णो ज्योतिष्मान्नानाभूतरतो ध्वनिः ।
अरागो नयनाध्यक्षो विश्वामित्रो धनेश्वरः ॥ ७३ ॥

५७३ हिरण्यवर्णो ज्योतिष्मान्—**सुवर्णके समान गौर वर्णवाले तथा तेजस्वी,** ५७४ नानाभूतरतः—**नाना प्रकारके भूतोंके साथ क्रीडा करनेवाले,** ५७५ ध्वनिः—**नादस्वरूप,** ५७६ अरागः—**आसक्तिशून्य,** ५७७ नयनाध्यक्षः—**नेत्रोंमें द्रष्टारूपसे विद्यमान,** ५७८ विश्वामित्रः—**सम्पूर्ण जगत्के प्रति मैत्री भावना रखनेवाले मुनिस्वरूप,** ५७९ धनेश्वरः—**धनके स्वामी कुबेर ॥ ७३ ॥**

ब्रह्मज्योतिर्वसुधामा महाज्योतिरनुत्तमः ।
मातामहो मातरिश्वा नभस्वान्नागहारधृक् ॥ ७४ ॥

५८० ब्रह्मज्योतिः—**ज्योतिःस्वरूप ब्रह्म,** ५८१ वसुधामा—**सुवर्ण और रत्नोंके तेजसे प्रकाशित अथवा वसुधास्वरूप,** ५८२ महाज्योतिरनुत्तमः—**सूर्य आदि ज्योतियोंके प्रकाशक सर्वोत्तम महाज्योतिःस्वरूप,** ५८३ मातामहः—**मातृकाओंके जन्मदाता होनेके कारण मातामह,** ५८४ मातरिश्वा नभस्वान्—**आकाशमें विचरनेवाले वायुदेव,** ५८५ नागहारधृक्—**सर्पमय हार धारण करनेवाले ॥ ७४ ॥**

पुलस्त्यः पुलहोऽगस्त्यो जातूकर्ण्यः पराशरः ।
निरावरणनिर्वारो वैरञ्च्यो विष्टरश्रवाः ॥ ७५ ॥

५८६ पुलस्त्यः—**पुलस्त्य नामक मुनि,** ५८७ पुलहः—**पुलह नामक ऋषि,** ५८८ अगस्त्यः—**कुम्भजन्मा अगस्त्य ऋषि,** ५८९ जातूकर्ण्यः—**इसी नामसे प्रसिद्ध मुनि,** ५९० पराशरः—**शक्तिके पुत्र तथा व्यासजीके पिता मुनिवर पराशर,** ५९१ निरावरणनिर्वारः—**आवरणशून्य तथा अवरोधरहित,** ५९२ वैरञ्च्यः—**ब्रह्माजीके पुत्र नीललोहित रुद्र,** ५९३ विष्टरश्रवाः—**विस्तृत यशवाले विष्णुस्वरूप ॥ ७५ ॥**

आत्मभूरनिरुद्धोऽत्रिर्ज्ञानमूर्तिर्महायशाः ।
लोकवीराग्रणीर्वीरश्चण्डः सत्यपराक्रमः ॥ ७६ ॥

५९४ आत्मभूः—**स्वयम्भू ब्रह्मा,** ५९५ अनिरुद्धः—**अकुण्ठित गतिवाले,** ५९६ अत्रिः—**अत्रि नामक ऋषि अथवा त्रिगुणातीत,** ५९७ ज्ञानमूर्तिः—**ज्ञानस्वरूप,** ५९८ महायशाः—**महायशस्वी,** ५९९ लोकवीराग्रणीः—**विश्वविख्यात वीरोंमें अग्रगण्य,** ६०० वीरः—**शूरवीर,** ६०१ चण्डः—**प्रलयके समय अत्यन्त क्रोध करनेवाले,** ६०२ सत्यपराक्रमः—**सच्चे पराक्रमी ॥ ७६ ॥**

व्यालकल्पो महाकल्पः कल्पवृक्षः कलाधरः ।
अलंकरिष्णुरचलो रोचिष्णुर्विक्रमोत्तमः ॥ ७७ ॥

६०३ व्यालकल्पः—**सर्पोंके आभूषणसे शृङ्गार करनेवाले,** ६०४ महाकल्पः—**महाकल्पसंज्ञक काल-स्वरूपवाले,** ६०५ कल्पवृक्षः—**शरणागतोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये कल्पवृक्षके समान उदार,** ६०६ कलाधरः—**चन्द्रकलाधारी,** ६०७ अलंकरिष्णुः—**अलंकार धारण करने या करानेवाले,** ६०८ अचलः—**विचलित न होनेवाले,** ६०९ रोचिष्णुः—**प्रकाशमान,** ६१० विक्रमोत्तमः—**पराक्रममें बढ़े-चढ़े ॥ ७७ ॥**

आयुः शब्दपतिर्वेगी प्लवनः शिखिसारथिः ।
असंसृष्टोऽतिथिः शक्रप्रमाथी पादपासनः ॥ ७८ ॥

६११ आयुः शब्दपतिः—**आयु तथा वाणीके स्वामी,** ६१२ वेगी प्लवनः—**वेगशाली तथा कूदने या तैरनेवाले,** ६१३ शिखिसारथिः—**अग्निरूप सहायकवाले,** ६१४ असंसृष्टः—**निर्लेप,** ६१५ अतिथिः—**प्रेमी भक्तोंके घरपर अतिथिकी भाँति उपस्थित हो उनका सत्कार**

ग्रहण करनेवाले, ६१६ शक्रप्रमाथी—इन्द्रका मानमर्दन करनेवाले, ६१७ पादपासनः—वृक्षोंपर या वृक्षोंके नीचे आसन लगानेवाले ॥ ७८ ॥

वसुश्रवा हव्यवाहः प्रतप्तो विश्वभोजनः ।
जप्यो जरादिशमनो लोहितात्मा तनूनपात् ॥ ७९ ॥

६१८ वसुश्रवाः—यज्ञरूपी धनसे सम्पन्न, ६१९ हव्यवाहः—अग्निस्वरूप, ६२० प्रतप्तः—सूर्यरूपसे प्रचण्ड ताप देनेवाले, ६२१ विश्वभोजनः—प्रलयकालमें विश्व-ब्रह्माण्डको अपना ग्रास बना लेनेवाले, ६२२ जप्यः—जपने योग्य नामवाले, ६२३ जरादिशमनः—बुढ़ापा आदि दोषोंका निवारण करनेवाले, ६२४ लोहितात्मा तनूनपात्—लोहित वर्णवाले अग्निरूप ॥ ७९ ॥

बृहदश्वो नभोयोनिः सुप्रतीकस्तमिस्रहा ।
निदाघस्तपनो मेघः स्वक्षः परपुरंजयः ॥ ८० ॥

६२५ बृहदश्वः—विशाल अश्ववाले, ६२६ नभोयोनिः—आकाशकी उत्पत्तिके स्थान, ६२७ सुप्रतीकः—सुन्दर शरीरवाले, ६२८ तमिस्रहा—अज्ञानान्धकारनाशक, ६२९ निदाघस्तपनः—तपनेवाले ग्रीष्मरूप, ६३० मेघः—बादलोंसे उपलक्षित वर्षारूप, ६३१ स्वक्षः—सुन्दर नेत्रोंवाले, ६३२ परपुरंजयः—त्रिपुररूप शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले ॥ ८० ॥

सुखानिलः सुनिष्पन्नः सुरभिः शिशिरात्मकः ।
वसन्तो माधवो ग्रीष्मो नभस्यो बीजवाहनः ॥ ८१ ॥

६३३ सुखानिलः—सुखदायक वायुको प्रकट करनेवाले शरत्कालरूप, ६३४ सुनिष्पन्नः—जिसमें अन्नका सुन्दररूपसे परिपाक होता है, वह हेमन्तकालरूप, ६३५ सुरभिः शिशिरात्मकः—सुगन्धित मलयानिलसे युक्त शिशिर ऋतुरूप, ६३६ वसन्तो माधवः—चैत्र-वैशाख—इन दो मासोंसे युक्त वसन्तरूप, ६३७ ग्रीष्मः—ग्रीष्म ऋतुरूप, ६३८ नभस्यः—भाद्रपदमासरूप, ६३९ बीजवाहनः—धान आदिके बीजोंकी प्राप्ति करानेवाला शरत्काल ॥ ८१ ॥

अङ्गिरा गुरुरात्रेयो विमलो विश्ववाहनः ।
पावनः सुमतिर्विद्वांस्त्रैविद्यो वरवाहनः ॥ ८२ ॥

६४० अङ्गिरा गुरुः—अङ्गिरा नामक ऋषि तथा उनके पुत्र देवगुरु बृहस्पति, ६४१ आत्रेयः—अत्रिकुमार दुर्वासा, ६४२ विमलः—निर्मल, ६४३ विश्ववाहनः—सम्पूर्ण जगत्‌का निर्वाह करानेवाले, ६४४ पावनः—पवित्र करनेवाले, ६४५ सुमतिर्विद्वान्—उत्तम बुद्धिवाले विद्वान्, ६४६ त्रैविद्यः—तीनों वेदोंके विद्वान् अथवा तीनों वेदोंके द्वारा प्रतिपादित, ६४७ वरवाहनः—वृषभरूप श्रेष्ठ वाहनवाले ॥ ८२ ॥

मनोबुद्धिरहंकारः क्षेत्रज्ञः क्षेत्रपालकः ।
जमदग्निर्बलनिधिर्विगालो विश्वगालवः ॥ ८३ ॥

६४८ मनोबुद्धिरहंकारः—मन, बुद्धि और अहंकारस्वरूप, ६४९ क्षेत्रज्ञः—आत्मा, ६५० क्षेत्रपालकः—शरीररूपी क्षेत्रका पालन करनेवाले परमात्मा, ६५१ जमदग्निः—जमदग्नि नामक ऋषिरूप, ६५२ बलनिधिः—अनन्त बलके सागर, ६५३ विगालः—अपनी जटासे गङ्गाजीके जलको टपकानेवाले, ६५४ विश्वगालवः—विश्वविख्यात गालव मुनि अथवा प्रलयकालमें कालाग्निस्वरूपसे जगत्‌को निगल जानेवाले ॥ ८३ ॥

अघोरोऽनुत्तरो यज्ञः श्रेष्ठो निःश्रेयसप्रदः ।
शैलो गगनकुन्दाभो दानवारिररिंदमः ॥ ८४ ॥

६५५ अघोरः—सौम्यरूपवाले, ६५६ अनुत्तरः—सर्वश्रेष्ठ, ६५७ यज्ञः श्रेष्ठः—श्रेष्ठ यज्ञरूप, ६५८ निःश्रेयसप्रदः—कल्याणदाता,

६५९ शैलः—शिलामय लिङ्गरूप, ६६० गगनकुन्दाभः— आकाशकुन्द—चन्द्रमाके समान गौर कान्तिवाले, ६६१ दानवारिः—दानव-शत्रु, ६६२ अरिदमः—शत्रुओंका दमन करनेवाले ॥ ८४ ॥

रजनीजनकश्चारुर्निःशल्यो लोकशल्यधृक् ।
चतुर्वेदश्चतुर्भावश्चतुरश्चतुरप्रियः ॥ ८५ ॥

६६३ रजनीजनकश्चारुः—सुन्दर निशाकर-रूप, ६६४ निःशल्यः—निष्कण्टक, ६६५ लोकशल्यधृक्—शरणागतजनोंके शोक-शल्यको निकालकर स्वयं धारण करनेवाले, ६६६ चतुर्वेदः—चारों वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य, ६६७ चतुर्भावः—चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति करानेवाले, ६६८ चतुरश्चतुरप्रियः—चतुर एवं चतुर पुरुषोंके प्रिय ॥ ८५ ॥

आम्नायोऽथ समाम्नायस्तीर्थदेवशिवालयः ।
बहुरूपो महारूपः सर्वरूपश्चराचरः ॥ ८६ ॥

६६९ आम्नायः—वेदस्वरूप, ६७० समाम्नायः—अक्षरसमाम्नाय— शिवसूत्ररूप, ६७१ तीर्थदेवशिवालयः—तीर्थोंके देवता और शिवालयरूप, ६७२ बहुरूपः—अनेक रूपवाले, ६७३ महारूपः—विराट्रूपधारी, ६७४ सर्वरूपश्चराचरः— चर और अचर सम्पूर्ण रूपवाले ॥ ८६ ॥

न्यायनिर्णयको न्यायी न्यायगम्यो निरञ्जनः ।
सहस्रमूर्द्धा देवेन्द्रः सर्वशस्त्रप्रभञ्जनः ॥ ८७ ॥

६७५ न्यायनिर्णयको न्यायी—न्यायकर्ता तथा न्यायशील, ६७६ न्यायगम्यः—न्याययुक्त आचरणसे प्राप्त होनेयोग्य, ६७७ निरञ्जनः—निर्मल, ६७८ सहस्रमूर्द्धा—सहस्रों सिरवाले, ६७९ देवेन्द्रः—देवताओंके स्वामी, ६८० सर्वशस्त्रप्रभञ्जनः—विपक्षी योद्धाओंके सम्पूर्ण शस्त्रोंको नष्ट कर देनेवाले ॥ ८७ ॥

मुण्डो विरूपो विक्रान्तो दण्डी दान्तो गुणोत्तमः ।
पिङ्गलाक्षो जनाध्यक्षो नीलग्रीवो निरामयः ॥ ८८ ॥

६८१ मुण्डः—मुँड़े हुए सिरवाले संन्यासी, ६८२ विरूपः—विविध रूपवाले, ६८३ विक्रान्तः—विक्रमशील, ६८४ दण्डी—दण्डधारी, ६८५ दान्तः—मन और इन्द्रियोंका दमन करनेवाले, ६८६ गुणोत्तमः—गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ, ६८७ पिङ्गलाक्षः— पिङ्गल नेत्रवाले, ६८८ जनाध्यक्षः— जीवमात्रके साक्षी, ६८९ नीलग्रीवः— नीलकण्ठ, ६९० निरामयः—नीरोग ॥ ८८ ॥

सहस्रबाहुः सर्वेशः शरण्यः सर्वलोकधृक् ।
पद्मासनः परं ज्योतिः परमार्थफलप्रदः ॥ ८९ ॥

६९१ सहस्रबाहुः—सहस्रों भुजाओंसे युक्त, ६९२ सर्वेशः—सबके स्वामी, ६९३ शरण्यः— शरणागत हितैषी, ६९४ सर्वलोक-धृक्— सम्पूर्ण लोकोंको धारण करनेवाले, ६९५ पद्मासनः— कमलके आसनपर विराजमान, ६९६ परं ज्योतिः— परम प्रकाशस्वरूप, ६९७ परमार्थफलप्रदः— परम्परागत फलकी प्राप्ति करानेवाले ॥ ८९ ॥

पद्मगर्भो महागर्भो विश्वगर्भो विचक्षणः ।
परावरज्ञो वरदो वरेण्यश्च महास्वनः ॥ ९० ॥

६९८ पद्मगर्भः—अपनी नाभिसे कमलको प्रकट करनेवाले विष्णुरूप, ६९९ महागर्भः—विराट् ब्रह्माण्डको गर्भमें धारण करनेके कारण महान् गर्भवाले, ७०० विश्वगर्भः—सम्पूर्ण जगत्को अपने उदरमें धारण करनेवाले, ७०१ विचक्षणः— चतुर, ७०२ परावरज्ञः—कारण और कार्यके ज्ञाता, ७०३ वरदः—अभीष्ट वर देनेवाले, ७०४ वरेण्यः—वरणीय अथवा श्रेष्ठ, ७०५ महास्वनः—डमरूका गम्भीर नाद करनेवाले ॥ ९० ॥

देवासुरगुरुर्देवो देवासुरनमस्कृतः ।
देवासुराराध्यपादो देवासुरमहेश्वरः ॥ ९१ ॥

७०६ देवासुरगुरुर्देवः—देवताओं तथा असुरोंके गुरुदेव एवं आराध्य, ७०७ देवासुरनमस्कृतः—देवताओं तथा असुरोंसे वन्दित, ७०८ देवासुरमहामित्रः—देवता तथा असुर दोनोंके बड़े मित्र, ७०९ देवासुरमहेश्वरः—देवताओं और असुरोंके महान् ईश्वर ॥ ९१ ॥

देवासुरेश्वरो दिव्यो देवासुरमहाश्रयः ।
देवदेवमयोऽचिन्त्यो देवदेवात्मसम्भवः ॥ ९२ ॥

७१० देवासुरेश्वरः—देवताओं और असुरोंके शासक, ७११ दिव्यः—अलौकिक स्वरूपवाले, ७१२ देवासुरमहाश्रयः—देवताओं और असुरोंके महान् आश्रय, ७१३ देवदेवमयः—देवताओंके लिये भी देवतारूप, ७१४ अचिन्त्यः—चित्तकी सीमासे परे विद्यमान, ७१५ देवदेवात्मसम्भवः—देवाधिदेव ब्रह्माजीसे रुद्ररूपमें उत्पन्न ॥ ९२ ॥

सद्योनिरसुरव्याघ्रो देवसिंहो दिवाकरः ।
विबुधाग्रचरश्रेष्ठः सर्वदेवोत्तमोत्तमः ॥ ९३ ॥

७१६ सद्योनिः—सत्पदार्थोंकी उत्पत्तिके हेतु, ७१७ असुरव्याघ्रः—असुरोंका विनाश करनेके लिये व्याघ्ररूप, ७१८ देवसिंहः—देवताओंमें श्रेष्ठ, ७१९ दिवाकरः—सूर्यरूप, ७२० विबुधाग्रचरश्रेष्ठः—देवताओंके नायकोंमें सर्वश्रेष्ठ, ७२१ सर्वदेवोत्तमोत्तमः—सम्पूर्ण श्रेष्ठ देवताओंके भी शिरोमणि ॥ ९३ ॥

शिवज्ञानरतः श्रीमाञ्छिखिपर्वतप्रियः ।
वज्रहस्तः सिद्धखड्गो नरसिंहनिपातनः ॥ ९४ ॥

७२२ शिवज्ञानरतः—कल्याणमय शिवतत्त्वके विचारमें तत्पर, ७२३ श्रीमान्—अणिमा आदि विभूतियोंसे सम्पन्न, ७२४ शिखिपर्वतप्रियः—कुमार कार्तिकेयके निवासभूत श्रीशैल नामक पर्वतसे प्रेम करनेवाले, ७२५ वज्रहस्तः—वज्रधारी इन्द्ररूप, ७२६ सिद्धखड्गः—शत्रुओंको मार गिरानेमें जिनकी तलवार कभी असफल नहीं होती, ऐसे, ७२७ नरसिंहनिपातनः—शरभरूपसे नृसिंहको धराशायी करनेवाले ॥ ९४ ॥

ब्रह्मचारी लोकचारी धर्मचारी धनाधिपः ।
नन्दी नन्दीश्वरोऽनन्तो नग्नव्रतधरः शुचिः ॥ ९५ ॥

७२८ ब्रह्मचारी—भगवती उमाके प्रेमकी परीक्षा लेनेके लिये ब्रह्मचारीरूपसे प्रकट, ७२९ लोकचारी—समस्त लोकोंमें विचरनेवाले, ७३० धर्मचारी—धर्मका आचरण करनेवाले, ७३१ धनाधिपः—धनके अधिपति कुबेर, ७३२ नन्दी—नन्दी नामक गण, ७३३ नन्दीश्वरः—इसी नामसे प्रसिद्ध वृषभ, ७३४ अनन्तः—अन्तरहित, ७३५ नग्नव्रतधरः—दिगम्बर रहनेका व्रत धारण करनेवाले, ७३६ शुचिः—नित्यशुद्ध ॥ ९५ ॥

लिङ्गाध्यक्षः सुराध्यक्षो योगाध्यक्षो युगावहः ।
स्वधर्मा स्वर्गतः स्वर्गस्वरः स्वरमयस्वनः ॥ ९६ ॥

७३७ लिङ्गाध्यक्षः—लिङ्गदेहके द्रष्टा, ७३८ सुराध्यक्षः—देवताओंके अधिपति, ७३९ योगाध्यक्षः—योगेश्वर, ७४० युगावहः—युगके निर्वाहक, ७४१ स्वधर्मा—आत्मविचाररूप धर्ममें स्थित अथवा स्वधर्मपरायण, ७४२ स्वर्गतः—स्वर्गलोकमें स्थित, ७४३ स्वर्गस्वरः—स्वर्गलोकमें जिनके यशका गान किया जाता है, ऐसे, ७४४ स्वरमयस्वनः—सात प्रकारके स्वरोंसे युक्त ध्वनिवाले ॥ ९६ ॥

बाणाध्यक्षो बीजकर्ता धर्मकृद्धर्मसम्भवः ।
दर्भोऽलोभोऽर्थविच्छम्भुः सर्वभूतमहेश्वरः ॥ ९७ ॥

७४५ बाणाध्यक्षः—बाणासुरके स्वामी अथवा बाणलिङ्ग नर्मदेश्वरमें अधिदेवतारूपसे स्थित, ७४६ बीजकर्ता—बीजके उत्पादक,

७४७ धर्मकृद्धर्मसम्भवः—**धर्मके पालक और उत्पादक,** ७४८ दम्भः—**मायामयरूपधारी,** ७४९ अलोभः—**लोभरहित,** ७५० अर्थविच्छम्भुः—**सबके प्रयोजनको जाननेवाले कल्याणनिकेतन शिव,** ७५१ सर्वभूतमहेश्वरः—**सम्पूर्ण प्राणियोंके परमेश्वर ॥ ९७ ॥**

श्मशाननिलयस्त्र्यक्षः सेतुरप्रतिमाकृतिः ।
लोकोत्तरस्फुटालोकस्त्र्यम्बको नागभूषणः ॥ ९८ ॥

७५२ श्मशाननिलयः—**श्मशानवासी,** ७५३ त्र्यक्षः—**त्रिनेत्रधारी,** ७५४ सेतुः—**धर्ममर्यादाके पालक,** ७५५ अप्रतिमाकृतिः—**अनुपम रूपवाले,** ७५६ लोकोत्तरस्फुटालोकः—**अलौकिक एवं सुस्पष्ट प्रकाशसे युक्त,** ७५७ त्र्यम्बकः—**त्रिनेत्रधारी अथवा त्र्यम्बक नामक ज्योतिर्लिङ्ग,** ७५८ नागभूषणः—**नागहारसे विभूषित ॥ ९८ ॥**

अन्धकारिर्मखद्वेषी विष्णुकन्धरपातनः ।
हीनदोषोऽक्षयगुणो दक्षारिः पूषदन्तभित् ॥ ९९ ॥

७५९ अन्धकारिः—**अन्धकासुरका वध करनेवाले,** ७६० मखद्वेषी—**दक्षके यज्ञका विध्वंस करनेवाले,** ७६१ विष्णुकन्धरपातनः—**यज्ञमय विष्णुका गला काटनेवाले,** ७६२ हीनदोषः—**दोषरहित,** ७६३ अक्षयगुणः—**अविनाशी गुणोंसे सम्पन्न,** ७६४ दक्षारिः—**दक्षद्रोही,** ७६५ पूषदन्तभित्—**पूषा देवताके दाँत तोड़नेवाले ॥ ९९ ॥**

धूर्जटिः खण्डपरशुः सकलो निष्कलोऽनघः ।
अकालः सकलाधारः पाण्डुराभो मृडो नटः ॥ १०० ॥

७६६ धूर्जटिः—**जटाके भारसे विभूषित,** ७६७ खण्डपरशुः—**खण्डित परशुवाले,** ७६८ सकलो निष्कलः—**साकार एवं निराकार परमात्मा,** ७६९ अनघः—**पापके स्पर्शसे शून्य,** ७७० अकालः—**कालके प्रभावसे रहित,** ७७१ सकलाधारः—**सबके आधार,** ७७२ पाण्डुराभः—**श्वेत कान्तिवाले,** ७७३ मृडो नटः—**सुखदायक एवं ताण्डवनृत्यकारी ॥ १०० ॥**

पूर्णः पूरयिता पुण्यः सुकुमारः सुलोचनः ।
सामगेयप्रियोऽक्रूरः पुण्यकीर्तिरनामयः ॥ १०१ ॥

७७४ पूर्णः—**सर्वव्यापी परब्रह्म परमात्मा,** ७७५ पूरयिता—**भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले,** ७७६ पुण्यः—**परम पवित्र,** ७७७ सुकुमारः—**सुन्दर कुमार हैं जिनके, ऐसे,** ७७८ सुलोचनः—**सुन्दर नेत्रवाले,** ७७९ सामगेयप्रियः—**सामगानके प्रेमी,** ७८० अक्रूरः—**क्रूरतारहित,** ७८१ पुण्यकीर्तिः—**पवित्र कीर्तिवाले,** ७८२ अनामयः—**रोग-शोकसे रहित ॥ १०१ ॥**

मनोजवस्तीर्थकरो जटिलो जीवितेश्वरः ।
जीवितान्तकरो नित्यो वसुरेता वसुप्रदः ॥ १०२ ॥

७८३ मनोजवः—**मनके समान वेगशाली,** ७८४ तीर्थकरः—**तीर्थोंके निर्माता,** ७८५ जटिलः—**जटाधारी,** ७८६ जीवितेश्वरः—**सबके प्राणेश्वर,** ७८७ जीवितान्तकरः—**प्रलयकालमें सबके जीवनका अन्त करनेवाले,** ७८८ नित्यः—**सनातन,** ७८९ वसुरेताः—**सुवर्णमय वीर्यवाले,** ७९० वसुप्रदः—**धनदाता ॥ १०२ ॥**

सद्गतिः सत्कृतिः सिद्धिः सज्जातिः खलकण्टकः ।
कलाधरो महाकालभूतः सत्यपरायणः ॥ १०३ ॥

७९१ सद्गतिः—**सत्पुरुषोंके आश्रय,** ७९२ सत्कृतिः—**शुभ कर्म करनेवाले,** ७९३ सिद्धिः—**सिद्धिस्वरूप,** ७९४ सज्जातिः—**सत्पुरुषोंके जन्मदाता,** ७९५ खलकण्टकः—**दुष्टोंके लिये कण्टकरूप,** ७९६ कलाधरः—**कलाधारी,** ७९७ महाकालभूतः—**महाकाल नामक ज्योतिर्लिङ्गस्वरूप अथवा**

कालके भी काल होनेसे महाकाल, ७९८ सत्यपरायणः— सत्यनिष्ठ ॥ १०३ ॥

लोकालवण्यकर्ता च लोकोत्तरसुखालयः।
चन्द्रसंजीवनः शास्ता लोकगूढो महाधिपः ॥ १०४ ॥

७९९ लोकलावण्यकर्ता—सब लोगोंको सौन्दर्य प्रदान करनेवाले, ८०० लोकोत्तर-सुखालयः—लोकोत्तर सुखके आश्रय, ८०१ चन्द्रसंजीवनः शास्ता—सोमनाथरूपसे चन्द्रमाको जीवन प्रदान करनेवाले सर्वशासक शिव, ८०२ लोकगूढः—समस्त संसारमें अव्यक्तरूपसे व्यापक, ८०३ महाधिपः—महेश्वर ॥ १०४ ॥

लोकबन्धुर्लोकनाथः कृतज्ञः कीर्तिभूषणः।
अनपायोऽक्षरः कान्तः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ १०५ ॥

८०४ लोकबन्धुर्लोकनाथः—सम्पूर्ण लोकोंके बन्धु एवं रक्षक, ८०५ कृतज्ञः—उपकारको माननेवाले, ८०६ कीर्तिभूषणः—उत्तम यशसे विभूषित, ८०७ अनपायोऽक्षरः—विनाशरहित—अविनाशी, ८०८ कान्तः—प्रजापति दक्षका अन्त करनेवाले, ८०९ सर्वशस्त्रभृतां वरः—सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ ॥ १०५ ॥

तेजोमयो द्युतिधरो लोकानामग्रणीरणुः।
शुचिस्मितः प्रसन्नात्मा दुर्जेयो दुरतिक्रमः ॥ १०६ ॥

८१० तेजोमयो द्युतिधरः—तेजस्वी और कान्तिमान्, ८११ लोकानामग्रणीः—सम्पूर्ण जगत्के लिये अग्रगण्य देवता अथवा जगत्को आगे बढ़ानेवाले, ८१२ अणुः— अत्यन्त सूक्ष्म, ८१३ शुचिस्मितः—पवित्र मुसकानवाले, ८१४ प्रसन्नात्मा—हर्षभरे हृदयवाले, ८१५ दुर्जेयः—जिनपर विजय पाना अत्यन्त कठिन है, ऐसे, ८१६ दुरतिक्रमः—दुर्लङ्घ्य ॥ १०६ ॥

ज्योतिर्मयो जगन्नाथो निराकारो जलेश्वरः।
तुम्बवीणो महाकोपो विशोकः शोकनाशनः ॥ १०७ ॥

८१७ ज्योतिर्मयः—तेजोमय, ८१८ जगन्नाथः—विश्वनाथ, ८१९ निराकारः—आकाररहित परमात्मा, ८२० जलेश्वरः—जलके स्वामी, ८२१ तुम्बवीणः—तूँबीकी वीणा बजानेवाले, ८२२ महाकोपः—संहारके समय महान् क्रोध करनेवाले, ८२३ विशोकः—शोकरहित, ८२४ शोकनाशनः—शोकका नाश करनेवाले ॥ १०७ ॥

त्रिलोकपस्त्रिलोकेशः सर्वशुद्धिरधोक्षजः।
अव्यक्तलक्षणो देवो व्यक्ताव्यक्तो विशाम्पतिः ॥ १०८ ॥

८२५ त्रिलोकपः—तीनों लोकोंका पालन करनेवाले, ८२६ त्रिलोकेशः—त्रिभुवनके स्वामी, ८२७ सर्वशुद्धिः—सबकी शुद्धि करनेवाले, ८२८ अधोक्षजः—इन्द्रियों और उनके विषयोंसे अतीत, ८२९ अव्यक्तलक्षणो देवः—अव्यक्त लक्षणवाले देवता, ८३० व्यक्ताव्यक्तः—स्थूलसूक्ष्मरूप, ८३१ विशाम्पतिः—प्रजाओंके पालक ॥ १०८ ॥

वरशीलो वरगुणः सारो मानधनो मयः।
ब्रह्मा विष्णुः प्रजापालो हंसो हंसगतिर्वयः ॥ १०९ ॥

८३२ वरशीलः—श्रेष्ठ स्वभाववाले, ८३३ वरगुणः—उत्तम गुणोंवाले, ८३४ सारः—सारतत्त्व, ८३५ मानधनः—स्वाभिमानके धनी, ८३६ मयः—सुखस्वरूप, ८३७ ब्रह्मा—सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, ८३८ विष्णुः प्रजापालः—प्रजापालक विष्णु, ८३९ हंसः—सूर्यस्वरूप, ८४० हंसगतिः—हंसके समान चालवाले, ८४१ वयः—गरुड़ पक्षी ॥ १०९ ॥

धेष्ठा विधाता धाता च स्रष्टा हर्ता चतुर्मुखः।
कैलासशिखरावासी सर्वावासी सदागतिः ॥ ११० ॥

८४२ धेष्ठा विधाता धाता—ब्रह्मा, धाता और विधाता नामक देवतास्वरूप, ८४३ स्रष्टा— सृष्टिकर्ता, ८४४ हर्ता—संहारकारी, ८४५ चतुर्मुखः—चार मुखवाले ब्रह्मा,

८४६ कैलासशिखरावासी—**कैलासके शिखरपर निवास करनेवाले,** ८४७ सर्वावासी—**सर्वव्यापी,** ८४८ सदागतिः—**निरन्तर गतिशील वायुदेवता ॥ ११० ॥**

हिरण्यगर्भो द्रुहिणो भूतपालोऽथ भूपतिः।
सद्योगी योगविद्योगी वरदो ब्राह्मणप्रियः ॥ १११ ॥

८४९ हिरण्यगर्भः—**ब्रह्मा,** ८५० द्रुहिणः—**ब्रह्मा,** ८५१ भूतपालः—**प्राणियोंका पालन करनेवाले,** ८५२ भूपतिः—**पृथ्वीके स्वामी,** ८५३ सद्योगी—**श्रेष्ठ योगी,** ८५४ योगविद्योगी—**योग-विद्याके ज्ञाता योगी,** ८५५ वरदः—**वर देनेवाले,** ८५६ ब्राह्मणप्रियः—**ब्राह्मणोंके प्रेमी ॥ १११ ॥**

देवप्रियो देवनाथो देवज्ञो देवचिन्तकः।
विषमाक्षो विशालाक्षो वृषदो वृषवर्धनः ॥ ११२ ॥

८५७ देवप्रियो देवनाथः—**देवताओंके प्रिय तथा रक्षक,** ८५८ देवज्ञः—**देवतत्त्वके ज्ञाता,** ८५९ देवचिन्तकः—**देवताओंका विचार करनेवाले,** ८६० विषमाक्षः—**विषम नेत्रवाले,** ८६१ विशालाक्षः—**बड़े-बड़े नेत्रवाले,** ८६२ वृषदो वृषवर्धनः—**धर्मका दान और वृद्धि करनेवाले ॥ ११२ ॥**

निर्ममो निरहंकारो निर्मोहो निरुपद्रवः।
दर्पहा दर्पदो दृप्तः सर्वर्तुपरिवर्तकः ॥ ११३ ॥

८६३ निर्ममः—**ममतारहित,** ८६४ निरहंकारः—**अहंकारशून्य,** ८६५ निर्मोहः—**मोहशून्य,** ८६६ निरुपद्रवः—**उपद्रव या उत्पातसे दूर,** ८६७ दर्पहा दर्पदः—**दर्पका हनन और खण्डन करनेवाले,** ८६८ दृप्तः—**स्वाभिमानी,** ८६९ सर्वर्तुपरिवर्तकः—**समस्त ऋतुओंको बदलते रहनेवाले ॥ ११३ ॥**

सहस्रजित् सहस्रार्चिः स्निग्धप्रकृतिदक्षिणः।
भूतभव्यभवन्नाथः प्रभवो भूतिनाशनः ॥ ११४ ॥

८७० सहस्रजित्—**सहस्रोंपर विजय पानेवाले,** ८७१ सहस्रार्चिः—**सहस्रों किरणोंसे प्रकाशमान सूर्यरूप,** ८७२ स्निग्धप्रकृतिदक्षिणः—**स्नेहयुक्त स्वभाववाले तथा उदार,** ८७३ भूतभव्यभवन्नाथः—**भूत, भविष्य और वर्तमानके स्वामी,** ८७४ प्रभवः—**सबकी उत्पत्तिके कारण,** ८७५ भूतिनाशनः—**दुष्टोंके ऐश्वर्यका नाश करनेवाले ॥ ११४ ॥**

अर्थोऽनर्थो महाकोशः परकार्यैकपण्डितः।
निष्कण्टकः कृतानन्दो निर्व्याजो व्याजमर्दनः ॥ ११५ ॥

८७६ अर्थः—**परमपुरुषार्थरूप,** ८७७ अनर्थः—**प्रयोजनरहित,** ८७८ महाकोशः—**अनन्त धनराशिके स्वामी,** ८७९ परकार्यैकपण्डितः—**पराये कार्यको सिद्ध करनेकी कलाके एकमात्र विद्वान,** ८८० निष्कण्टकः—**कण्टकरहित,** ८८१ कृतानन्दः—**नित्यसिद्ध आनन्दस्वरूप,** ८८२ निर्व्याजो व्याजमर्दनः—**स्वयं कपटरहित होकर दूसरेके कपटको नष्ट करनेवाले ॥ ११५ ॥**

सत्ववान्सात्त्विकः सत्यकीर्तिः स्नेहकृतागमः।
अकम्पितो गुणग्राही नैकात्मा नैककर्मकृत् ॥ ११६ ॥

८८३ सत्ववान्—**सत्त्वगुणसे युक्त,** ८८४ सात्त्विकः—**सत्त्वनिष्ठ,** ८८५ सत्यकीर्तिः—**सत्यकीर्तिवाले,** ८८६ स्नेहकृतागमः—**जीवोंके प्रति स्नेहके कारण विभिन्न आगमोंको प्रकाशमें लानेवाले,** ८८७ अकम्पितः—**सुस्थिर,** ८८८ गुणग्राही—**गुणोंका आदर करनेवाले,** ८८९ नैकात्मा नैककर्मकृत्—**अनेकरूप होकर अनेक प्रकारके कर्म करनेवाले ॥ ११६ ॥**

सुप्रीतः सुमुखः सूक्ष्मः सुकरो दक्षिणानिलः।
नन्दिस्कन्धधरो धुर्यः प्रकटः प्रीतिवर्धनः ॥ ११७ ॥

८९० सुप्रीतः—**अत्यन्त प्रसन्न,** ८९१ सुमुखः—**सुन्दर मुखवाले,** ८९२ सूक्ष्मः—**स्थूलभावसे रहित,** ८९३ सुकरः—**सुन्दर**

हाथवाले, ८९४ दक्षिणानिलः—मलयानिलके समान सुखद, ८९५ नन्दिस्कन्धधरः—नन्दीकी पीठपर सवार होनेवाले, ८९६ धुर्यः—उत्तरदायित्वका भार वहन करनेमें समर्थ, ८९७ प्रकटः—भक्तोंके सामने प्रकट होनेवाले अथवा ज्ञानियोंके सामने नित्य प्रकट, ८९८ प्रीतिवर्धनः—प्रेम बढ़ानेवाले ॥ ११७ ॥

अपराजितः सर्वसत्त्वो गोविन्दः सत्त्ववाहनः ।
अधृतः स्वधृतः सिद्धः पूतमूर्तिर्यशोधनः ॥ ११८ ॥

८९९ अपराजितः—किसीसे परास्त न होनेवाले, ९०० सर्वसत्त्वः—सम्पूर्ण सत्त्वगुणके आश्रय अथवा समस्त प्राणियोंकी उत्पत्तिके हेतु, ९०१ गोविन्दः—गोलोककी प्राप्ति करानेवाले, ९०२ सत्त्ववाहनः—सत्त्वस्वरूप धर्ममय वृषभसे वाहनका काम लेनेवाले, ९०३ अधृतः—आधाररहित, ९०४ स्वधृतः—अपने-आपमें ही स्थित, ९०५ सिद्धः—नित्यसिद्ध, ९०६ पूतमूर्तिः—पवित्र शरीरवाले, ९०७ यशोधनः—सुयशके धनी ॥ ११८ ॥

वाराहशृङ्गधृक्छृङ्गी बलवानेकनायकः ।
श्रुतिप्रकाशः श्रुतिमानेकबन्धुरनेककृत् ॥ ११९ ॥

९०८ वाराहशृङ्गधृक्छृङ्गी—वाराहको मारकर उसके दाढ़रूपी शृङ्गोंको धारण करनेके कारण शृङ्गी नामसे प्रसिद्ध, ९०९ बलवान्—शक्तिशाली, ९१० एकनायकः—अद्वितीय नेता, ९११ श्रुतिप्रकाशः—वेदोंको प्रकाशित करनेवाले, ९१२ श्रुतिमान्—वेदज्ञानसे सम्पन्न, ९१३ एकबन्धुः—सबके एकमात्र सहायक, ९१४ अनेककृत्—अनेक प्रकारके पदार्थोंकी सृष्टि करनेवाले ॥ ११९ ॥

श्रीवत्सलशिवारम्भः शान्तभद्रः समो यशः ।
भूशयो भूषणो भूतिर्भूतकृद् भूतभावनः ॥ १२० ॥

९१५ श्रीवत्सलशिवारम्भः—श्रीवत्सधारी विष्णुके लिये मङ्गलकारी, ९१६ शान्तभद्रः—शान्त एवं मङ्गलरूप, ९१७ समः—सर्वत्र समभाव रखनेवाले, ९१८ यशः—यशःस्वरूप, ९१९ भूशयः—पृथ्वीपर शयन करनेवाले, ९२० भूषणः—सबको विभूषित करनेवाले, ९२१ भूतिः—कल्याणस्वरूप, ९२२ भूतकृत्—प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले, ९२३ भूतभावनः—भूतोंके उत्पादक ॥ १२० ॥

अकम्पो भक्तिकायस्तु कालहा नीललोहितः ।
सत्यव्रतमहात्यागी नित्यशान्तिपरायणः ॥ १२१ ॥

९२४ अकम्पः—कम्पित न होनेवाले, ९२५ भक्तिकायः—भक्तिस्वरूप, ९२६ कालहा—कालनाशक, ९२७ नीललोहितः—नील और लोहित वर्णवाले, ९२८ सत्यव्रतमहात्यागी—सत्य-व्रतधारी एवं महान् त्यागी, ९२९ नित्यशान्तिपरायणः—निरन्तर शान्त ॥ १२१ ॥

परार्थवृत्तिर्वरदो विरक्तस्तु विशारदः ।
शुभदः शुभकर्ता च शुभनामा शुभः स्वयम् ॥ १२२ ॥

९३० परार्थवृत्तिर्वरदः—परोपकारव्रती एवं अभीष्ट वरदाता, ९३१ विरक्तः—वैराग्यवान्, ९३२ विशारदः—विज्ञानवान्, ९३३ शुभदः शुभकर्ता—शुभ देने और करनेवाले, ९३४ शुभनामा शुभः स्वयम्—स्वयं शुभस्वरूप होनेके कारण शुभ नामधारी ॥ १२२ ॥

अनर्थितोऽगुणः साक्षी ह्यकर्ता कनकप्रभः ।
स्वभावभद्रो मध्यस्थः शत्रुघ्नो विघ्ननाशनः ॥ १२३ ॥

९३५ अनर्थितः—याचनारहित, ९३६ अगुणः—निर्गुण, ९३७ साक्षी अकर्ता—द्रष्टा एवं कर्तृत्वरहित, ९३८ कनकप्रभः—सुवर्णके समान कान्तिमान्, ९३९ स्वभावभद्रः—

स्वभावतः कल्याणकारी, ९४० मध्यस्थः—उदासीन, ९४१ शत्रुघ्नः—शत्रुनाशक, ९४२ विघ्ननाशनः—विघ्नोंका निवारण करनेवाले ॥ १२३ ॥

शिखण्डी कवची शूली जटी मुण्डी च कुण्डली।
अमृत्युः सर्वदृक्सिंहस्तेजोराशिर्महामणिः ॥ १२४ ॥

९४३ शिखण्डी कवची शूली—मोरपंख, कवच और त्रिशूल धारण करनेवाले, ९४४ जटी मुण्डी च कुण्डली—जटा, मुण्डमाला और कवच धारण करनेवाले, ९४५ अमृत्युः—मृत्युरहित, ९४६ सर्वदृक्सिंहः—सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ, ९४७ तेजोराशिर्महामणिः—तेजःपुञ्ज महामणि कौस्तुभादिरूप ॥ १२४ ॥

असंख्येयोऽप्रमेयात्मा वीर्यवान् वीर्यकोविदः।
वेद्यश्चैव वियोगात्मा परावरमुनीश्वरः ॥ १२५ ॥

९४८ असंख्येयोऽप्रमेयात्मा—असंख्य नाम, रूप और गुणोंसे युक्त होनेके कारण किसीके द्वारा मापे न जा सकनेवाले, ९४९ वीर्यवान् वीर्यकोविदः—पराक्रमी एवं पराक्रमके ज्ञाता, ९५० वेद्यः—जाननेयोग्य, ९५१ वियोगात्मा—दीर्घकालतक सतीके वियोगमें अथवा विशिष्ट योगकी साधनामें संलग्न हुए मनवाले, ९५२ परावरमुनीश्वरः—भूत और भविष्यके ज्ञाता मुनीश्वररूप ॥ १२५ ॥

अनुत्तमो दुराधर्षो मधुरप्रियदर्शनः।
सुरेशः शरणं सर्वः शब्दब्रह्म सतां गतिः ॥ १२६ ॥

९५३ अनुत्तमो दुराधर्षः—सर्वोत्तम एवं दुर्जय, ९५४ मधुरप्रियदर्शनः—जिनका दर्शन मनोहर एवं प्रिय लगता है, ऐसे, ९५५ सुरेशः—देवताओंके ईश्वर, ९५६ शरणम्—आश्रयदाता, ९५७ सर्वः—सर्वस्वरूप, ९५८ शब्दब्रह्म सतां गतिः—प्रणवरूप तथा सत्पुरुषोंके आश्रय ॥ १२६ ॥

कालपक्षः कालकालः कङ्कणीकृतवासुकिः।
महेष्वासो महीभर्ता निष्कलङ्को विशृङ्खलः ॥ १२७ ॥

९५९ कालपक्षः—काल जिनका सहायक है, ऐसे, ९६० कालकालः—कालके भी काल, ९६१ कङ्कणीकृतवासुकिः—वासुकि नागको अपने हाथमें कंगनके समान धारण करनेवाले, ९६२ महेष्वासः—महाधनुर्धर, ९६३ महीभर्ता—पृथ्वीपालक, ९६४ निष्कलङ्कः—कलङ्कशून्य, ९६५ विशृङ्खलः—बन्धनरहित ॥ १२७ ॥

द्युमणिस्तरणिर्धन्यः सिद्धिदः सिद्धिसाधनः।
विश्वतः संवृतः स्तुत्यो व्यूढोरस्को महाभुजः ॥ १२८ ॥

९६६ द्युमणिस्तरणिः—आकाशमें मणिके समान प्रकाशमान तथा भक्तोंको भवसागरसे तारनेके लिये नौकारूप सूर्य, ९६७ धन्यः—कृतकृत्य, ९६८ सिद्धिदः सिद्धिसाधनः—सिद्धिदाता और सिद्धिके साधक, ९६९ विश्वतः संवृतः—सब ओरसे मायाद्वारा आवृत, ९७० स्तुत्यः—स्तुतिके योग्य, ९७१ व्यूढोरस्कः—चौड़ी छातीवाले, ९७२ महाभुजः—बड़ी बाँहवाले ॥ १२८ ॥

सर्वयोनिर्निरातङ्को नरनारायणप्रियः।
निर्लेपो निष्प्रपञ्चात्मा निर्व्यङ्गो व्यङ्गनाशनः ॥ १२९ ॥

९७३ सर्वयोनिः—सबकी उत्पत्तिके स्थान, ९७४ निरातङ्कः—निर्भय, ९७५ नरनारायणप्रियः—नर-नरायणके प्रेमी अथवा प्रियतम, ९७६ निर्लेपो निष्प्रपञ्चात्मा—दोषसम्पर्कसे रहित तथा जगत्प्रपञ्चसे अतीत स्वरूपवाले, ९७७ निर्व्यङ्गः—विशिष्ट अङ्गवाले प्राणियोंके प्राकट्यमें हेतु, ९७८ व्यङ्गनाशनः—यज्ञादि कर्मोंमें होनेवाले अङ्ग-वैगुण्यका नाश करनेवाले ॥ १२९ ॥

स्तव्यः स्तवप्रियः स्तोता व्यासमूर्तिर्निरङ्कुशः।
निरवद्यमयोपायो विद्याराशी रसप्रियः ॥ १३० ॥

९७९ स्तव्यः—स्तुतिके योग्य, ९८० स्तवप्रियः—स्तुतिके प्रेमी, ९८१ स्तोता—स्तुति करनेवाले, ९८२ व्यासमूर्तिः—व्यासस्वरूप, ९८३ निष्कुशः—अङ्कुशरहित स्वतन्त्र, ९८४ निरवद्यमयोपायः—मोक्ष-प्राप्तिके निर्दोष उपायरूप, ९८५ विद्याराशिः—विद्याओंके सागर, ९८६ रसप्रियः—ब्रह्मानन्दरसके प्रेमी ॥ १३० ॥

प्रशान्तबुद्धिरक्षुण्णः संग्रही नित्यसुन्दरः।
वैयाघ्रपूर्वो धात्रीशः शाकल्यः शर्वरीपतिः ॥ १३१ ॥

९८७ प्रशान्तबुद्धिः—शान्त बुद्धिवाले, ९८८ अक्षुण्णः—क्षोभ या नाशसे रहित, ९८९ संग्रही—भक्तोंका संग्रह करनेवाले, ९९० नित्यसुन्दरः—सतत मनोहर, ९९१ वैयाघ्रपूर्वः—व्याघ्रचर्मधारी, ९९२ धात्रीशः—ब्रह्माजीके स्वामी, ९९३ शाकल्यः—शाकल्य ऋषिरूप, ९९४ शर्वरीपतिः—रात्रिके स्वामी चन्द्रमारूप ॥ १३१ ॥

परमार्थगुरुर्दत्तः सूरिराश्रितवत्सलः।
सोमो रसज्ञो रसदः सर्वसत्त्वावलम्बनः ॥ १३२ ॥

९९५ परमार्थगुरुर्दत्तः सूरिः—परमार्थ-तत्त्वका उपदेश देनेवाले ज्ञानी गुरु दत्तात्रेयरूप, ९९६ आश्रितवत्सलः—शरणागतोंपर दया करनेवाले, ९९७ सोमः—उमासहित, ९९८ रसज्ञः—भक्तिरसके ज्ञाता, ९९९ रसदः—प्रेमरस प्रदान करनेवाले, १००० सर्वसत्त्वावलम्बनः—समस्त प्राणियोंको सहारा देनेवाले ॥ १३२ ॥

इस प्रकार श्रीहरि प्रतिदिन सहस्र नामोंद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति, सहस्र कमलोंद्वारा उनका पूजन एवं प्रार्थना किया करते थे। एक दिन भगवान् शिवकी लीलासे एक कमल कम हो जानेपर भगवान् विष्णुने अपना कमलोपम नेत्र ही चढ़ा दिया। इस तरह उनसे पूजित एवं प्रसन्न हो शिवने उन्हें चक्र दिया और इस प्रकार कहा—'हरे! सब प्रकारके अनर्थोंकी शान्तिके लिये तुम्हें मेरे स्वरूपका ध्यान करना चाहिये। अनेकानेक दुःखोंका नाश करनेके लिये इस सहस्रनामका पाठ करते रहना चाहिये तथा समस्त मनोरथोंकी सिद्धिके लिये सदा मेरे इस चक्रको प्रयत्नपूर्वक धारण करना चाहिये, यह सभी चक्रोंमें उत्तम है। दूसरे भी जो लोग प्रतिदिन इस सहस्रनामका पाठ करेंगे या करायेंगे, उन्हें स्वप्नमें भी कोई दुःख नहीं प्राप्त होगा। राजाओंकी ओरसे संकट प्राप्त होनेपर यदि मनुष्य साङ्गोपाङ्ग विधिपूर्वक इस सहस्रनामस्तोत्रका सौ बार पाठ करे तो निश्चय ही कल्याणका भागी होता है। यह उत्तम स्तोत्र रोगका नाशक, विद्या और धन देनेवाला, सम्पूर्ण अभीष्टकी प्राप्ति करानेवाला, पुण्यजनक तथा सदा ही शिवभक्ति देनेवाला है। जिस फलके उद्देश्यसे मनुष्य यहाँ इस श्रेष्ठ स्तोत्रका पाठ करेंगे, उसे निस्संदेह प्राप्त कर लेंगे। जो प्रतिदिन सवेरे उठकर मेरी पूजाके पश्चात् मेरे सामने इसका पाठ करता है, सिद्धि उससे दूर नहीं रहती। उसे इस लोकमें सम्पूर्ण अभीष्टको देनेवाली सिद्धि पूर्णतया प्राप्त होती है और अन्तमें वह सायुज्य मोक्षका भागी होता है, इसमें संशय नहीं है।'

सूतजी कहते हैं—मुनीश्वरो! ऐसा कहकर सर्वदेवेश्वर भगवान् रुद्र श्रीहरिके अङ्गका स्पर्श किये और उनके देखते-देखते

वहीं अन्तर्धान हो गये। भगवान् विष्णु भी शंकरजीके वचनसे तथा उस शुभ चक्रको पा जानेसे मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। फिर वे प्रतिदिन शम्भुके ध्यानपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करने लगे। उन्होंने अपने भक्तोंको भी इसका उपदेश दिया। तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने यह प्रसङ्ग सुनाया है, जो श्रोताओंके पापको हर लेनेवाला है। अब और क्या सुनना चाहते हो ?

(अध्याय ३५-३६)

☆

भगवान् शिवको संतुष्ट करनेवाले व्रतोंका वर्णन, शिवरात्रि-व्रतकी विधि एवं महिमाका कथन

तदनन्तर ऋषियोंके पूछनेपर सूतजीने शिवजीकी आराधनाके द्वारा उत्तम एवं मनोवाञ्छित फल प्राप्त करनेवाले बहुत-से महान् स्त्री-पुरुषोंके नाम बताये। इसके बाद ऋषियोंने फिर पूछा—'व्यासशिष्य ! किस व्रतसे संतुष्ट होकर भगवान् शिव उत्तम सुख प्रदान करते हैं ? जिस व्रतके अनुष्ठानसे भक्तजनोंको भोग और मोक्षकी प्राप्ति हो सके, उसका आप विशेषरूपसे वर्णन कीजिये।'

सूतजीने कहा—महर्षियो ! तुमने जो कुछ पूछा है, यही बात किसी समय ब्रह्मा, विष्णु तथा पार्वतीजीने भगवान् शिवसे पूछी थी। इसके उत्तरमें शिवजीने जो कुछ कहा, वह मैं तुमलोगोंको बता रहा हूँ।

भगवान् शिव बोले—मेरे बहुत-से व्रत हैं, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। उनमें मुख्य दस व्रत हैं, जिन्हें जाबालश्रुतिके विद्वान् 'दश शैवव्रत' कहते हैं। द्विजोंको सदा यत्नपूर्वक इन व्रतोंका पालन करना चाहिये। हरे ! प्रत्येक अष्टमीको केवल रातमें ही भोजन करे। विशेषतः कृष्ण-पक्षकी अष्टमीको भोजनका सर्वथा त्याग कर दे। शुक्लपक्षकी एकादशीको भी भोजन छोड़ दे। किंतु कृष्णपक्षकी एकादशीको रातमें मेरा पूजन करनेके पश्चात् भोजन किया जा सकता है। शुक्लपक्षकी त्रयोदशी-को तो रातमें भोजन करना चाहिये; परंतु कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको शिवव्रतधारी पुरुषोंके लिये भोजनका सर्वथा निषेध है। दोनों पक्षोंमें प्रत्येक सोमवारको प्रयत्नपूर्वक केवल रातमें ही भोजन करना चाहिये। शिवके व्रतमें तत्पर रहनेवाले लोगोंके लिये यह अनिवार्य नियम है। इन सभी व्रतोंमें व्रतकी पूर्तिके लिये अपनी शक्तिके अनुसार शिवभक्त ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। द्विजोंको इन सब व्रतोंका नियमपूर्वक पालन करना चाहिये। जो द्विज इनका त्याग करते हैं, वे चोर होते हैं। मुक्तिमार्गमें प्रवीण पुरुषोंको मोक्षकी प्राप्ति करानेवाले चार व्रतोंका नियमपूर्वक पालन करना चाहिये। वे चार व्रत इस प्रकार हैं—भगवान् शिवकी पूजा, रुद्रमन्त्रोंका जप, शिवमन्दिरमें उपवास तथा काशीमें मरण। ये मोक्षके सनातन मार्ग हैं। सोमवारकी अष्टमी और कृष्णपक्षकी चतुर्दशी—इन दो तिथियोंको उपवासपूर्वक व्रत रखा जाय तो यह भगवान् शिवको संतुष्ट करनेवाला होता

है, इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

हरे ! इन चारोंमें भी शिवरात्रिका व्रत ही सबसे अधिक बलवान् है। इसलिये भोग और मोक्षरूपी फलकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको मुख्यतः उसीका पालन करना चाहिये। इस व्रतको छोड़कर दूसरा कोई मनुष्योंके लिये हितकारक व्रत नहीं है। यह व्रत सबके लिये धर्मका उत्तम साधन है। निष्काम अथवा सकाम भाव रखनेवाले सभी मनुष्यों, वर्णों, आश्रमों, स्त्रियों, बालकों, दासों, दासियों तथा देवता आदि सभी देहधारियोंके लिये यह श्रेष्ठ व्रत हितकारक बताया गया है।

माघमासके[1] कृष्णपक्षमें शिवरात्रि तिथिका विशेष माहात्म्य बताया गया है। जिस दिन आधी रातके समयतक वह तिथि विद्यमान हो, उसी दिन उसे व्रतके लिये ग्रहण करना चाहिये। शिवरात्रि करोड़ों हत्याओंके पापका नाश करनेवाली है। केशव ! उस दिन सबेरेसे लेकर जो कार्य करना आवश्यक है, उसे प्रसन्नतापूर्वक तुम्हें बता रहा हूँ; तुम ध्यान देकर सुनो। बुद्धिमान् पुरुष सबेरे उठकर बड़े आनन्दके साथ स्नान आदि नित्य कर्म करे। आलस्यको पास न आने दे। फिर शिवालयमें जाकर शिवलिङ्गका विधिवत् पूजन करके मुझ शिवको नमस्कार करनेके पश्चात् उत्तम रीतिसे संकल्प करे—

संकल्प

देवदेव महादेव नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते।
करिष्यामीह देव शिवरात्रिव्रतं तव॥
तव प्रभावादेवेश निर्विघ्नेन भवेदिति।
कामाद्याः शत्रवो मां वै पीडां कुर्वन्तु नैव हि॥

'देवदेव ! महादेव ! नीलकण्ठ ! आपको नमस्कार है। देव ! मैं आपके शिवरात्रि-व्रतका अनुष्ठान करना चाहता हूँ। देवेश्वर ! आपके प्रभावसे यह व्रत बिना किसी विघ्न-बाधाके पूर्ण हो और काम आदि शत्रु मुझे पीड़ा न दें।'

ऐसा संकल्प करके पूजन-सामग्रीका संग्रह करे और उत्तम स्थानमें जो शास्त्रप्रसिद्ध शिवलिङ्ग हो, उसके पास रातमें जाकर स्वयं उत्तम विधि-विधानका सम्पादन करे; फिर शिवके दक्षिण या पश्चिम भागमें सुन्दर स्थानपर उनके निकट ही पूजाके लिये संचित सामग्रीको रखे। तदनन्तर श्रेष्ठ पुरुष वहाँ फिर स्नान करे। स्नानके बाद सुन्दर वस्त्र और उपवस्त्र धारण करके तीन बार आचमन करनेके पश्चात् पूजन आरम्भ करे। जिस मन्त्रके लिये जो द्रव्य नियत हो, उस मन्त्रको पढ़कर उसी द्रव्यके द्वारा पूजा करनी चाहिये। बिना मन्त्रके महादेवजीकी पूजा नहीं करनी चाहिये। गीत, वाद्य, नृत्य आदिके साथ भक्तिभावसे सम्पन्न हो रात्रिके प्रथम पहरमें पूजन करके विद्वान् पुरुष मन्त्रका जप करे। यदि मन्त्रज्ञ पुरुष उस समय श्रेष्ठ पार्थिवलिङ्गका निर्माण करे तो

---

१. शुक्लपक्षसे मासका आरम्भ माननेसे फाल्गुन मासकी कृष्ण त्रयोदशी माघ मासकी कही गयी है। जहाँ कृष्णपक्षसे मासका आरम्भ माना है, उनके अनुसार यहाँ माघका अर्थ फाल्गुन समझना चाहिये।

नित्यकर्म करनेके पश्चात् पार्थिव लिङ्गका ही पूजन करे। पहले पार्थिव बनाकर पीछे उसकी विधिवत् स्थापना करे। फिर पूजनके पश्चात् नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा भगवान् वृषभध्वजको संतुष्ट करे। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि उस समय शिवरात्रि-व्रतके माहात्म्यका पाठ करे। श्रेष्ठ भक्त अपने व्रतकी पूर्तिके लिये उस माहात्म्यको श्रद्धापूर्वक सुने। रात्रिके चारों पहरोंमें चार पार्थिव लिङ्गोंका निर्माण करके आवाहनसे लेकर विसर्जनतक क्रमशः उनकी पूजा करे और बड़े उत्सवके साथ प्रसन्नतापूर्वक जागरण करे। प्रातःकाल स्नान करके पुनः वहाँ पार्थिव शिवका स्थापन और पूजन करे। इस तरह व्रतको पूरा करके हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर बारंबार नमस्कारपूर्वक भगवान् शम्भुसे इस प्रकार प्रार्थना करे।

प्रार्थना एवं विसर्जन

नियमो यो महादेव कृतश्चैव त्वदाज्ञया।
विसृज्यते मया स्वामिन् व्रतं जातमनुत्तमम्॥
व्रतेनानेन देवेश यथाशक्तिकृतेन च।
संतुष्टो भव शर्वाद्य कृपां कुरु ममोपरि॥

'महादेव! आपकी आज्ञासे मैंने जो व्रत ग्रहण किया था, स्वामिन्! वह परम उत्तम व्रत पूर्ण हो गया। अतः अब उसका विसर्जन करता हूँ। देवेश्वर शर्व! यथाशक्ति किये गये इस व्रतसे आप आज मुझपर कृपा करके संतुष्ट हों।'

तत्पश्चात् शिवको पुष्पाञ्जलि समर्पित करके विधिपूर्वक दान दे। फिर शिवको नमस्कार करके व्रतसम्बन्धी नियमका विसर्जन कर दे। अपनी शक्तिके अनुसार शिवभक्त ब्राह्मणों, विशेषतः संन्यासियोंको भोजन कराकर पूर्णतया संतुष्ट करके स्वयं भी भोजन करे।

हरे! शिवरात्रिको प्रत्येक प्रहरमें श्रेष्ठ शिवभक्तोंको जिस प्रकार विशेष पूजा करनी चाहिये, उसे मैं बताता हूँ; सुनो! प्रथम प्रहरमें पार्थिव लिङ्गकी स्थापना करके अनेक सुन्दर उपचारोंद्वारा उत्तम भक्तिभावसे पूजा करे। पहले गन्ध, पुष्प आदि पाँच द्रव्योंद्वारा सदा महादेवजीकी पूजा करनी चाहिये। उस-उस द्रव्यसे सम्बन्ध रखनेवाले मन्त्रका उच्चारण करके पृथक्-पृथक् वह द्रव्य समर्पित करे। इस प्रकार द्रव्य समर्पणके पश्चात् भगवान् शिवको जलधारा अर्पित करे। विद्वान् पुरुष चढ़े हुए द्रव्योंको जलधारासे ही उतारे। जलधाराके साथ-साथ एक सौ आठ मन्त्रका जप करके वहाँ निर्गुण-सगुणरूप शिवका पूजन करे। गुरुसे प्राप्त हुए मन्त्रद्वारा भगवान् शिवकी पूजा करे। अन्यथा नाममन्त्रद्वारा सदाशिवका पूजन करना चाहिये। विचित्र चन्दन, अखण्ड चावल और काले तिलोंसे परमात्मा शिवकी पूजा करनी चाहिये। कमल और कनेरके फूल चढ़ाने चाहिये। आठ नाम-मन्त्रोंद्वारा शंकरजीको पुष्प समर्पित करे। वे आठ नाम इस प्रकार हैं—भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, उग्र, महान्, भीम और ईशान। इनके आरम्भमें श्री और अन्तमें चतुर्थी विभक्ति जोड़कर 'श्रीभवाय नमः' इत्यादि नाममन्त्रोंद्वारा शिवका पूजन करे। पुष्प-समर्पणके पश्चात् धूप, दीप और नैवेद्य निवेदन करे। पहले प्रहरमें विद्वान् पुरुष नैवेद्यके लिये पकवान बनवा ले। फिर श्रीफलयुक्त विशेषार्घ्य देकर ताम्बूल समर्पित करे। तदनन्तर नमस्कार और ध्यान करके गुरुके दिये हुए मन्त्रका जप करे।

गुरुदत्त मन्त्र न हो तो पञ्चाक्षर (नमः शिवाय) मन्त्रके जपसे भगवान् शंकरको संतुष्ट करे, धेनुमुद्रा[1] दिखाकर उत्तम जलसे तर्पण करे। पश्चात् अपनी शक्तिके अनुसार पाँच ब्राह्मणोंको भोजन करानेका संकल्प करे। फिर जबतक पहला प्रहर पूरा न हो जाय, तबतक महान् उत्सव करता रहे।

दूसरा प्रहर आरम्भ होनेपर पुनः पूजनके लिये संकल्प करे। अथवा एक ही समय चारों प्रहरोंके लिये संकल्प करके पहले प्रहरकी भाँति पूजा करता रहे। पहले पूर्वोक्त द्रव्योंसे पूजन करके फिर जलधारा समर्पित करे। प्रथम प्रहरकी अपेक्षा दुगुने मन्त्रोंका जप करके शिवकी पूजा करे। पूर्वोक्त तिल, जौ तथा कमल-पुष्पोंसे शिवकी अर्चना करे। विशेषतः बिल्वपत्रोंसे परमेश्वर शिवका पूजन करना चाहिये। दूसरे प्रहरमें बिजौरा नीबूके साथ अर्घ्य देकर खीरका नैवेद्य निवेदन करे। जनार्दन! इसमें पहलेकी अपेक्षा मन्त्रोंकी दुगुनी आवृत्ति करनी चाहिये। फिर ब्राह्मणोंको भोजन करानेका संकल्प करे। शेष सब बातें पहलेकी ही भाँति तबतक करता रहे, जबतक दूसरा प्रहर पूरा न हो जाय। तीसरे प्रहरके आनेपर पूजन तो पहलेके समान ही करे; किंतु जौके स्थानमें गेहूँका उपयोग करे और आकके फूल चढ़ाये। उसके बाद नाना प्रकारके धूप एवं दीप देकर पूएका नैवेद्य भोग लगाये। उसके साथ भाँति-भाँतिके शाक भी अर्पित करे। इस प्रकार पूजन करके कपूरसे आरती उतारे। अनारके फलके साथ अर्घ्य दे और दूसरे प्रहरकी अपेक्षा दुगुना मन्त्र-जप करे। तदनन्तर दक्षिणासहित ब्राह्मण-भोजनका संकल्प करे और तीसरे प्रहरके पूरे होनेतक पूर्ववत् उत्सव करता रहे। चौथा प्रहर आनेपर तीसरे प्रहरकी पूजाका विसर्जन कर दे। पुनः आवाहन आदि करके विधिवत् पूजा करे। उड़द, कँगनी, मूँग, सप्तधान्य, शङ्खपुष्पी तथा बिल्वपत्रोंसे परमेश्वर शंकरका पूजन करे। उस प्रहरमें भाँति-भाँतिकी मिठाइयोंका नैवेद्य लगाये अथवा उड़दके बड़े आदि बनाकर उनके द्वारा सदाशिवको संतुष्ट करे। केलेके फलके साथ अथवा अन्य विविध फलोंके साथ शिवको अर्घ्य दे। तीसरे प्रहरकी अपेक्षा दूना मन्त्र-जप करे और यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजनका संकल्प करे। गीत, वाद्य तथा नृत्यसे शिवकी आराधनापूर्वक समय बिताये। भक्तजनोंको तबतक महान् उत्सव करते रहना चाहिये,

---

१. धेनुमुद्राका लक्षण इस प्रकार है—

वामाङ्गुलीनां मध्येषु दक्षिणाङ्गुलिकास्तथा। संयोज्य तर्जनीं दक्षां मध्यमानामयोस्तथा॥
दक्षमध्यमयोर्वामां तर्जनीं च नियोजयेत्। वामयानामया दक्षकनिष्ठां च नियोजयेत्॥
दक्षयानामया वामां कनिष्ठां च नियोजयेत्। विहिताग्रेमुखी चैषा धेनुमुद्रा प्रकीर्तिता॥

'बायें हाथकी अँगुलियोंके बीचमें दाहिने हाथकी अँगुलियोंको संयुक्त करके दाहिनी तर्जनीको मध्यमामें लगाये। दाहिने हाथकी मध्यमामें बायें हाथकी तर्जनीको मिलाये। फिर बायें हाथकी अनामिकासे दाहिने हाथकी कनिष्ठिका और दाहिने हाथकी अनामिकाके साथ बायें हाथकी कनिष्ठिकाको संयुक्त करे। फिर इन सबका मुख नीचेकी ओर करे। यही धेनुमुद्रा कही गयी है।'

जबतक अरुणोदय न हो जाय। अरुणोदय होनेपर पुनः स्नान करके भाँति-भाँतिके पूजनोपचारों और उपहारोंद्वारा शिवकी अर्चना करे। तत्पश्चात् अपना अभिषेक कराये, नाना प्रकारके दान दे और प्रहरकी संख्याके अनुसार ब्राह्मणों तथा संन्यासियोंको अनेक प्रकारके भोज्य-पदार्थोंका भोजन कराये। फिर शंकरको नमस्कार करके पुष्पाञ्जलि दे और बुद्धिमान् पुरुष उत्तम स्तुति करके निम्नाङ्कित मन्त्रोंसे प्रार्थना करे—

तावकस्त्वद्गतप्राणस्त्वच्चित्तोऽहं सदा मृड।
कृपानिधे इति ज्ञात्वा यथा योग्यं तथा कुरु॥
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपपूजादिकं मया।
कृपानिधित्वाज्ज्ञातेन भूतनाथ प्रसीद मे॥
अनेनैवोपवासेन यज्जातं फलमेव च।
तेनैव प्रीयतां देवः शंकरः सुखदायकः॥
कुले मम महादेव भजनं तेऽस्तु सर्वदा।
माभूत्तस्य कुले जन्म यत्र त्वं नहि देवता॥

'सुखदायक कृपानिधान शिव ! मैं आपका हूँ। मेरे प्राण आपमें ही लगे हैं और मेरा चित्त सदा आपका ही चिन्तन करता है। यह जानकर आप जैसा उचित समझें, वैसा करें। भूतनाथ ! मैंने जानकर या अनजानमें जो जप और पूजन आदि किया है, उसे समझकर दयासागर होनेके नाते ही आप मुझपर प्रसन्न हों। उस उपवासव्रतसे जो फल हुआ हो, उसीसे सुखदायक भगवान् शंकर मुझपर प्रसन्न हों। महादेव ! मेरे कुलमें सदा आपका भजन होता रहे। जहाँके आप इष्टदेवता न हों, उस कुलमें मेरा कभी जन्म न हो।'

इस प्रकार प्रार्थना करनेके पश्चात् भगवान् शिवको पुष्पाञ्जलि समर्पित करके ब्राह्मणोंसे तिलक और आशीर्वाद ग्रहण करे। तदनन्तर शम्भुका विसर्जन करे। जिसने इस प्रकार व्रत किया हो, उससे मैं दूर नहीं रहता। इस व्रतके फलका वर्णन नहीं किया जा सकता। मेरे पास ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे शिवरात्रि-व्रत करनेवालेके लिये मैं दे न डालूँ। जिसके द्वारा अनायास ही इस व्रतका पालन हो गया, उसके लिये भी अवश्य ही मुक्तिका बीज बो दिया गया। मनुष्योंको प्रतिमास भक्तिपूर्वक शिवरात्रि-व्रत करना चाहिये। तत्पश्चात् इसका उद्यापन करके मनुष्य साङ्गोपाङ्ग फल लाभ करता है। इस व्रतका पालन करनेमें मैं शिव निश्चय ही उपासकके समस्त दुःखोंका नाश कर देता हूँ और उसे भोग-मोक्ष आदि सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फल प्रदान करता हूँ।

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! भगवान् शिवका यह अत्यन्त हितकारक और अद्भुत वचन सुनकर श्रीविष्णु अपने धामको लौट आये। उसके बाद इस उत्तम व्रतका अपना हित चाहनेवाले लोगोंमें प्रचार हुआ। किसी समय केशवने नारदजीसे भोग और मोक्ष देनेवाले इस दिव्य शिवरात्रि-व्रतका वर्णन किया था। (अध्याय ३७-३८)

☆

शिवरात्रि-व्रतके उद्यापनकी विधि

ऋषि बोले—सूतजी! अब हमें शिवरात्रि-व्रतके उद्यापनकी विधि बताइये, जिसका अनुष्ठान करनेसे साक्षात् भगवान् शंकर निश्चय ही प्रसन्न होते हैं।

सूतजीने कहा—ऋषियो! तुमलोग भक्तिभावसे आदरपूर्वक शिवरात्रिके उद्यापनकी विधि सुनो, जिसका अनुष्ठान करनेसे वह व्रत अवश्य ही पूर्ण फल देनेवाला होता है। लगातार चौदह वर्षोंतक शिवरात्रिके शुभव्रतका पालन करना चाहिये। त्रयोदशीको एक समय भोजन करके चतुर्दशीको पूरा उपवास करना चाहिये। शिवरात्रिके दिन नित्यकर्म सम्पन्न करके शिवालयमें जाकर विधिपूर्वक शिवका पूजन करे। तत्पश्चात् वहाँ यत्नपूर्वक एक दिव्य मण्डल बनवाये, जो तीनों लोकोंमें गौरीतिलक नामसे प्रसिद्ध है। उसके मध्यभागमें दिव्य लिङ्गतोभद्र मण्डलकी रचना करे अथवा मण्डपके भीतर सर्वतोभद्र मण्डलका निर्माण करे। वहाँ प्राजापत्य नामक कलशोंकी स्थापना करनी चाहिये। वे शुभ कलश वस्त्र, फल और दक्षिणाके साथ होने चाहिये। उन सबको मण्डपके पार्श्वभागमें यत्नपूर्वक स्थापित करे। मण्डपके मध्यभागमें एक सोनेका अथवा दूसरी धातु ताँबे आदिका बना हुआ कलश स्थापित करे। व्रती पुरुष उस कलशपर पार्वतीसहित शिवकी सुवर्णमयी प्रतिमा बनाकर रखे। वह प्रतिमा एक पल (तोले) अथवा आधे पल सोनेकी होनी चाहिये या जैसी अपनी शक्ति हो, उसके अनुसार प्रतिमा बनवा ले। वामभागमें पार्वतीकी और दक्षिणभागमें शिवकी प्रतिमा स्थापित करके रात्रिमें उनका पूजन करे। आलस्य छोड़कर पूजनका काम करना चाहिये। उस कार्यमें चार ऋत्विजोंके साथ एक पवित्र आचार्यका वरण करे और उन सबकी आज्ञा लेकर भक्तिपूर्वक शिवकी पूजा करे। रातको प्रत्येक प्रहरमें पृथक्-पृथक् पूजा करते हुए जागरण करे। व्रती पुरुष भगवत्सम्बन्धी कीर्तन, गीत एवं नृत्य आदिके द्वारा सारी रात बिताये। इस प्रकार विधिवत् पूजनपूर्वक भगवान् शिवको संतुष्ट करके प्रातःकाल पुनः पूजन करनेके पश्चात् सविधि होम करे। फिर यथाशक्ति प्राजापत्य विधान करे। फिर ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक भोजन कराये और यथाशक्ति दान दे।

इसके बाद वस्त्र, अलंकार तथा आभूषणोंद्वारा पत्नीसहित ऋत्विजोंको अलंकृत करके उन्हें विधिपूर्वक पृथक्-पृथक् दान दे। फिर आवश्यक सामग्रियोंसे युक्त बछड़ेसहित गौका आचार्यको यह कहकर विधिपूर्वक दान दे कि इस दानसे भगवान् शिव मुझपर प्रसन्न हों। तत्पश्चात् कलशसहित उस मूर्तिको वस्त्रके साथ वृषभकी पीठपर रखकर सम्पूर्ण अलंकारोंसहित उसे आचार्यको अर्पित कर दे। इसके बाद हाथ जोड़ मस्तक झुका बड़े प्रेमसे गद्गद वाणीमें महाप्रभु महेश्वरदेवसे प्रार्थना करे।

प्रार्थना

देवदेव महादेव शरणागतवत्सल।
प्रीत्यनेन देवेश कृपां कुरु ममोपरि॥
मया भक्त्यनुसारेण व्रतमेतत् कृतं शिव।
न्यूनं सम्पूर्णतां यातु प्रसादात्तव शंकर॥

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाच्चयपूजादिकं मया।
कृतं तदस्तु कृपया सफलं तव शंकर॥

'देवदेव ! महादेव ! शरणागतवत्सल! देवेश्वर ! इस व्रतसे संतुष्ट हो आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये। शिव-शंकर ! मैंने भक्तिभावसे इस व्रतका पालन किया है। इसमें जो कमी रह गयी हो, वह आपके प्रसादसे पूरी हो जाय। शंकर ! मैंने अनजानमें या जान-बूझकर जो जप-पूजन आदि किया है, वह आपकी कृपासे सफल हो।'

इस तरह परमात्मा शिवको पुष्पाञ्जलि अर्पण करके फिर नमस्कार एवं प्रार्थना करे। जिसने इस प्रकार व्रत पूरा कर लिया, उसके उस व्रतमें कोई न्यूनता नहीं रहती। उससे वह मनोवाञ्छित सिद्धि प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं है।

(अध्याय ३९)

☆

अनजानमें शिवरात्रि-व्रत करनेसे एक भीलपर भगवान् शंकरकी अद्भुत कृपा

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! पूर्वकालमें किसने इस उत्तम शिवरात्रि-व्रतका पालन किया था और अनजानमें भी इस व्रतका पालन करके किसने कौन-सा फल प्राप्त किया था ?

सूतजीने कहा—ऋषियो ! तुम सब लोग सुनो ! मैं इस विषयमें एक निषादका प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। पहलेकी बात है-किसी वनमें एक भील रहता था, जिसका नाम था—गुरुद्रुह। उसका कुटुम्ब बड़ा था तथा वह बलवान् और क्रूर स्वभावका होनेके साथ ही क्रूरतापूर्ण कर्ममें तत्पर रहता था। वह प्रतिदिन वनमें जाकर मृगोंको मारता और वहीं रहकर नाना प्रकारकी चोरियाँ करता था। उसने बचपनसे ही कभी कोई शुभ कर्म नहीं किया था। इस प्रकार वनमें रहते हुए उस दुरात्मा भीलका बहुत समय बीत गया। तदनन्तर एक दिन बड़ी सुन्दर एवं शुभकारक शिवरात्रि आयी। किंतु वह दुरात्मा घने जंगलमें निवास करनेवाला था, इसलिये उस व्रतको नहीं जानता था। उसी दिन उस भीलके माता-पिता और पत्नीने भूखसे पीड़ित होकर उससे याचना की—'वनेचर ! हमें खानेको दो।'

उनके इस प्रकार याचना करनेपर वह तुरंत धनुष लेकर चल दिया और मृगोंके शिकारके लिये सारे वनमें घूमने लगा। दैवयोगसे उसे उस दिन कुछ भी नहीं मिला और सूर्य अस्त हो गया। इससे उसको बड़ा दुःख हुआ और वह सोचने लगा—'अब मैं क्या करूँ ! कहाँ जाऊँ ? आज तो कुछ नहीं मिला। घरमें जो बच्चे हैं, उनका तथा माता-पिताका क्या होगा ? मेरी जो पत्नी है, उसकी भी क्या दशा होगी ? अतः मुझे कुछ लेकर ही घर जाना चाहिये; अन्यथा नहीं।' ऐसा सोचकर वह व्याध एक जलाशयके समीप पहुँचा और जहाँ पानीमें उतरनेका घाट था, वहाँ जाकर खड़ा हो गया। वह मन-ही-मन यह विचार करता था कि 'यहाँ कोई-न-कोई जीव पानी पीनेके लिये अवश्य आयेगा। उसीको मारकर कृतकृत्य

हो उसे साथ लेकर प्रसन्नतापूर्वक घरको जाऊँगा।' ऐसा निश्चय करके वह व्याध एक बेलके पेड़पर चढ़ गया और वहीं जल साथ लेकर बैठ गया। उसके मनमें केवल यही चिन्ता थी कि कब कोई जीव आयेगा और कब मैं उसे मारूँगा। इसी प्रतीक्षामें भूख-प्याससे पीड़ित हो वह बैठा रहा। उस रातके पहले पहरमें एक प्यासी हरिणी वहाँ आयी, जो चकित होकर जोर-जोरसे चौकड़ी भर रही थी। ब्राह्मणो! उस मृगीको देखकर व्याधको बड़ा हर्ष हुआ और उसने तुरंत ही उसके वधके लिये अपने धनुषपर एक बाणका संधान किया। ऐसा करते हुए उसके हाथके धक्केसे थोड़ा-सा जल और बिल्वपत्र नीचे गिर पड़े। उस पेड़के नीचे शिवलिङ्ग

था। उक्त जल और बिल्वपत्रसे शिवकी प्रथम प्रहरकी पूजा सम्पन्न हो गयी। उस पूजाके माहात्म्यसे उस व्याधका बहुत-सा पातक तत्काल नष्ट हो गया। वहाँ होनेवाली खड़खड़ाहटकी आवाजको सुनकर हरिणीने भयसे ऊपरकी ओर देखा। व्याधको देखते ही वह व्याकुल हो गयी और बोली—

मृगीने कहा—व्याध! तुम क्या करना चाहते हो मेरे सामने सच-सच बताओ।

हरिणीकी वह बात सुनकर व्याधने कहा—आज मेरे कुटुम्बके लोग भूखे हैं; अतः तुमको मारकर उनकी भूख मिटाऊँगा, उन्हें तृप्त करूँगा।

व्याधका वह दारुण वचन सुनकर तथा जिसे रोकना कठिन था, उस दुष्ट भीलको बाण ताने देखकर मृगी सोचने लगी कि 'अब मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? अच्छा कोई उपाय रचती हूँ।' ऐसा विचारकर उसने वहाँ इस प्रकार कहा।

मृगी बोली—भील! मेरे मांससे तुमको सुख होगा, इस अनर्थकारी शरीरके लिये इससे अधिक महान् पुण्यका कार्य और क्या हो सकता है? उपकार करनेवाले प्राणीको इस लोकमें जो पुण्य प्राप्त होता है, उसका सौ वर्षोंमें भी वर्णन नहीं किया जा सकता *। परंतु इस समय मेरे सब बच्चे मेरे आश्रममें ही हैं। मैं उन्हें अपनी बहिनको अथवा स्वामीको सौंपकर लौट आऊँगी। वनेचर! तुम मेरी इस बातको मिथ्या न समझो। मैं फिर तुम्हारे पास लौट आऊँगी, इसमें संशय नहीं है। सत्यसे ही धरती टिकी हुई है, सत्यसे ही समुद्र अपनी मर्यादामें स्थित है और सत्यसे ही निर्झरोंसे जलकी

* उपकारकरस्यैव यत् पुण्यं जायते त्विह। तत् पुण्यं शक्यते नैव वक्तुं वर्षशतैरपि॥

(शि० पु० को० रु० सं० ४०। २६)

धाराएँ गिरती रहती हैं। सत्यमें ही सब कुछ स्थित है।*

सूतजी कहते हैं—मृगीके ऐसा कहनेपर भी जब व्याधने उसकी बात नहीं मानी, तब उसने अत्यन्त विस्मित एवं भयभीत हो पुनः इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

मृगी बोली—व्याध! सुनो, मैं तुम्हारे सामने ऐसी शपथ खाती हूँ, जिससे घर जानेपर मैं अवश्य तुम्हारे पास लौट आऊँगी। ब्राह्मण यदि वेद बेचे और तीनों काल संध्या न करे तो उसे जो पाप लगता है, पतिकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके स्वेच्छानुसार कार्य करनेवाली स्त्रियोंको जिस पापकी प्राप्ति होती है, किये हुए उपकारको न माननेवाले, भगवान् शंकरसे विमुख रहनेवाले, दूसरोंसे द्रोह करनेवाले, धर्मको लाँघनेवाले तथा विश्वासघात और छल करनेवाले लोगोंको जो पाप लगता है, उसी पापसे मैं भी लिप्त हो जाऊँ, यदि लौटकर यहाँ न आऊँ।

इस तरह अनेक शपथ खाकर जब मृगी चुपचाप खड़ी हो गयी, तब उस व्याधने उसपर विश्वास करके कहा—'अच्छा, अब तुम अपने घरको जाओ।' तब वह मृगी बड़े हर्षके साथ पानी पीकर अपने आश्रममण्डलमें गयी। इतनेमें ही रातका वह पहला प्रहर व्याधके जागते-ही-जागते बीत गया। तब उस हिरनीकी बहिन दूसरी मृगी, जिसका पहलीने स्मरण किया था, उसीकी राह देखती हुई जल पीनेके लिये वहाँ आ गयी। उसे देखकर भीलने स्वयं बाणको तरकससे खींचा। ऐसा करते समय पुनः पहलेकी भाँति भगवान् शिवके ऊपर जल और बिल्वपत्र गिरे। उसके द्वारा महात्मा शम्भुकी दूसरे प्रहरकी पूजा सम्पन्न हो गयी। यद्यपि वह प्रसङ्गवश ही हुई थी, तो भी व्याधके लिये सुखदायिनी हो गयी। मृगीने उसे बाण खींचते देख पूछा—'वनेचर! यह क्या करते हो?' व्याधने पूर्ववत् उत्तर दिया—'मैं अपने भूखे कुटुम्बको तृप्त करनेके लिये तुझे मारूँगा।' यह सुनकर वह मृगी बोली।

मृगीने कहा—व्याध! मेरी बात सुनो। मैं धन्य हूँ। मेरा देह-धारण सफल हो गया; क्योंकि इस अनित्य शरीरके द्वारा उपकार होगा। परंतु मेरे छोटे-छोटे बच्चे घरमें हैं। अतः मैं एक बार जाकर उन्हें अपने स्वामीको सौंप दूँ, फिर तुम्हारे पास लौट आऊँगी।

व्याध बोला—तुम्हारी बातपर मुझे विश्वास नहीं है। मैं तुझे मारूँगा, इसमें संशय नहीं है।

यह सुनकर वह हरिणी भगवान् विष्णुकी शपथ खाती हुई बोली—'व्याध! जो कुछ मैं कहती हूँ, उसे सुनो। यदि मैं लौटकर न आऊँ तो अपना सारा पुण्य हार जाऊँ; क्योंकि जो वचन देकर उससे पलट जाता है, वह अपने पुण्यको हार जाता है। जो पुरुष अपनी विवाहिता स्त्रीको त्यागकर दूसरीके पास जाता है, वैदिक धर्मका उल्लङ्घन करके कपोलकल्पित धर्मपर

---

*स्थिता सत्येन धरणी सत्येनैव च वारिधिः। सत्येन जलधाराश्च सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम्॥

(शि॰ पु॰ को॰ रु॰ सं॰ ४० । २९)

चलता है, भगवान् विष्णुका भक्त होकर शिवकी निन्दा करता है, माता-पिताकी निधन-तिथिको श्राद्ध आदि न करके उसे सूना बिता देता है तथा मनमें संतापका अनुभव करके अपने दिये हुए वचनको पूरा करता है, ऐसे लोगोंको जो पाप लगता है, वही मुझे भी लगे, यदि मैं लौटकर न आऊँ।'

सूतजी कहते हैं—उसके ऐसा कहनेपर व्याधने उस मृगीसे कहा—'जाओ।' मृगी जल पीकर हर्षपूर्वक अपने आश्रमको गयी। इतनेमें ही रातका दूसरा प्रहर भी व्याधके जागते-जागते बीत गया। इसी समय तीसरा प्रहर आरम्भ हो जानेपर मृगीके लौटनेमें बहुत विलम्ब हुआ जान चकित हो व्याध उसकी खोज करने लगा। इतनेमें ही उसने जलके मार्गमें एक हिरनको देखा। वह बड़ा हृष्ट-पुष्ट था। उसे देखकर वनेचरको बड़ा हर्ष हुआ और वह धनुषपर बाण रखकर उसे मार डालनेको उद्यत हुआ। ऐसा करते समय उसके प्रारब्धवश कुछ जल और बिल्वपत्र शिवलिङ्गपर गिरे, उससे उसके सौभाग्यसे भगवान् शिवकी तीसरे प्रहरकी पूजा सम्पन्न हो गयी। इस तरह भगवान्‌ने उसपर अपनी दया दिखायी। पत्तोंके गिरने आदिका शब्द सुनकर उस मृगने व्याधकी ओर देखा और पूछा—'क्या करते हो ?' व्याधने उत्तर दिया—'मैं अपने कुटुम्बको भोजन देनेके लिये तुम्हारा वध करूँगा।' व्याधकी यह बात सुनकर हरिणके मनमें बड़ा हर्ष हुआ और तुरंत ही व्याधसे इस प्रकार बोला।

हरिणने कहा—मैं धन्य हूँ। मेरा हृष्ट-पुष्ट होना सफल हो गया; क्योंकि मेरे शरीरसे आपलोगोंकी तृप्ति होगी। जिसका शरीर परोपकारके काममें नहीं आता, उसका सब कुछ व्यर्थ चला गया। जो सामर्थ्य रहते हुए भी किसीका उपकार नहीं करता है, उसकी वह सामर्थ्य व्यर्थ चली जाती है तथा वह परलोकमें नरकगामी होता है *। परंतु एक बार मुझे जाने दो। मैं अपने बालकोंको उनकी माताके हाथमें सौंपकर और उन सबको धीरज बँधाकर यहाँ लौट आऊँगा।

उसके ऐसा कहनेपर व्याध मन-ही-मन बड़ा विस्मित हुआ। उसका हृदय कुछ शुद्ध हो गया था और उसके सारे पापपुञ्ज नष्ट हो चुके थे। उसने इस प्रकार कहा।

व्याध बोला—जो-जो यहाँ आये, वे सब तुम्हारी ही तरह बातें बनाकर चले गये; परंतु वे वञ्चक अभीतक यहाँ नहीं लौटे हैं। मृग ! तुम भी इस समय संकटमें हो, इसलिये झूठ बोलकर चले जाओगे। फिर आज मेरा जीवन-निर्वाह कैसे होगा ?

मृग बोला—व्याध ! मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे सुनो। मुझमें असत्य नहीं है। सारा चराचर ब्रह्माण्ड सत्यसे ही टिका हुआ है। जिसकी वाणी झूठी होती है, उसका पुण्य उसी क्षण नष्ट हो जाता है; तथापि भील ! तुम मेरी सच्ची प्रतिज्ञा सुनो। संध्याकालमें मैथुन तथा शिवरात्रिके दिन भोजन करनेसे जो पाप लगता है, झूठी

---

* यो वै सामर्थ्ययुक्तश्च नोपकारं करोति वै। तत्सामर्थ्यं भवेद् व्यर्थं परत्र नरकं व्रजेत्॥
(शि० पु० को० रु० सं० ४०। ५७)

गवाही देने, धरोहरको हड़प लेने तथा संध्या न करनेसे द्विजको जो पाप होता है, वही पाप मुझे भी लगे, यदि मैं लौटकर न आऊँ। जिसके मुखसे कभी शिवका नाम नहीं निकलता, जो सामर्थ्य रहते हुए भी दूसरोंका उपकार नहीं करता, पर्वके दिन श्रीफल तोड़ता, अभक्ष्य-भक्षण करता तथा शिवकी पूजा किये बिना और भस्म लगाये बिना भोजन कर लेता है, इन सबका पातक मुझे लगे, यदि मैं लौटकर न आऊँ।

सूतजी कहते हैं—उसकी बात सुनकर व्याधने कहा—'जाओ, शीघ्र लौटना।' व्याधके ऐसा कहनेपर मृग पानी पीकर चला गया। वे सब अपने आश्रमपर मिले। तीनों ही प्रतिज्ञाबद्ध हो चुके थे। आपसमें एक-दूसरेके वृत्तान्तको भलीभाँति सुनकर सत्यके पाशसे बँधे हुए उन सबने यही निश्चय किया कि वहाँ अवश्य जाना चाहिये। इस निश्चयके बाद वहाँ बालकोंको आश्वासन देकर वे सब-के-सब जानेके लिये उत्सुक हो गये। उस समय जेठी मृगीने वहाँ अपने स्वामीसे कहा—'स्वामिन्! आपके बिना यहाँ बालक कैसे रहेंगे? प्रभो! मैंने ही वहाँ पहले जाकर प्रतिज्ञा की है, इसलिये केवल मुझको जाना चाहिये। आप दोनों यहीं रहें।' उसकी यह बात सुनकर छोटी मृगी बोली—'बहिन! मैं तुम्हारी सेविका हूँ, इसलिये आज मैं ही व्याधके पास जाती हूँ। तुम यहीं रहो।' यह सुनकर मृग बोला—'मैं ही वहाँ जाता हूँ। तुम दोनों यहाँ रहो; क्योंकि शिशुओंकी रक्षा मातासे ही होती है।' स्वामीकी यह बात सुनकर उन दोनों मृगियोंने धर्मकी दृष्टिसे उसे स्वीकार नहीं किया। वे दोनों अपने पतिसे प्रेमपूर्वक बोलीं—'प्रभो! पतिके बिना इस जीवनको धिक्कार है।' तब उन सबने अपने बच्चोंको सान्त्वना देकर उन्हें पड़ोसियोंके हाथमें सौंप दिया और स्वयं शीघ्र ही उस स्थानको प्रस्थान किया, जहाँ वह व्याध-शिरोमणि उनकी प्रतीक्षामें बैठा था। उन्हें जाते देख उनके वे सब बच्चे भी पीछे-पीछे चले आये। उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि इन माता-पिताकी जो गति होगी, वही हमारी भी हो। उन सबको एक साथ आया देख व्याधको बड़ा हर्ष हुआ। उसने धनुषपर बाण रखा। उस समय पुनः जल और बिल्वपत्र शिवके ऊपर गिरे। उससे शिवकी चौथे प्रहरकी शुभ पूजा भी सम्पन्न हो गयी। उस समय व्याधका सारा पाप तत्काल भस्म हो गया। इतनेमें ही दोनों मृगियाँ और मृग बोल उठे—'व्याधशिरोमणे! शीघ्र कृपा करके हमारे शरीरको सार्थक करो।'

उनकी यह बात सुनकर व्याधको बड़ा

विस्मय हुआ। शिवपूजाके प्रभावसे उसको दुर्लभ ज्ञान प्राप्त हो गया। उसने सोचा—'ये मृग ज्ञानहीन पशु होनेपर भी धन्य हैं, सर्वथा

मुक्ति और भक्तिके स्वरूपका विवेचन

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! आपने बारंबार मुक्तिका नाम लिया है। यहाँ मुक्ति मिलनेपर क्या होता है ? मुक्तिमें जीवकी कैसी अवस्था होती है ? यह हमें बताइये।

सूतजीने कहा—महर्षियो ! सुनो। मैं तुमसे संसारक्लेशका निवारण तथा परमानन्दका दान करनेवाली मुक्तिका स्वरूप बताता हूँ। मुक्ति चार प्रकारकी कही गयी है—सारूप्या, सालोक्या, सांनिध्या तथा चौथी सायुज्या। इस शिवरात्रिव्रतसे सब प्रकारकी मुक्ति सुलभ हो जाती है। जो ज्ञानरूप अविनाशी, साक्षी, ज्ञान-गम्य और द्वैतरहित साक्षात् शिव हैं, वे ही यहाँ कैवल्यमोक्षके तथा धर्म, अर्थ और कामरूप त्रिवर्गके भी दाता हैं। कैवल्या नामक जो पाँचवीं मुक्ति है, वह मनुष्योंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है। मुनिवरो ! मैं उसका लक्षण बताता हूँ, सुनो। जिनसे यह समस्त जगत् उत्पन्न होता है, जिनके द्वारा इसका पालन होता है तथा अन्ततोगत्वा यह जिनमें लीन होता है, वे ही शिव हैं। जिससे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है, वही शिवका रूप है। मुनीश्वरो ! वेदोंमें शिवके दो रूप बताये गये हैं—सकल और निष्कल। शिवतत्त्व सत्य, ज्ञान, अनन्त एवं सच्चिदानन्द नामसे प्रसिद्ध है। निर्गुण, उपाधिरहित, अविनाशी, शुद्ध एवं निरञ्जन (निर्मल) है। वह न लाल है न पीला; न सफेद है न नीला; न छोटा है न बड़ा और न मोटा है न महीन। जहाँसे मनसहित वाणी उसे न पाकर लौट आती है, वह परब्रह्म परमात्मा ही शिव कहलाता है। जैसे आकाश सर्वत्र व्यापक है, उसी प्रकार यह शिवतत्त्व भी सर्वव्यापी है। यह मायासे परे, सम्पूर्ण द्वन्द्वोंसे रहित तथा मत्सरताशून्य परमात्मा है। यहाँ शिवज्ञानका उदय होनेसे निश्चय ही उसकी प्राप्ति होती है अथवा द्विजो ! सूक्ष्म बुद्धिके द्वारा शिवका ही भजन-ध्यान करनेसे सत्पुरुषोंको शिवपदकी प्राप्ति होती है * ।

संसारमें ज्ञानकी प्राप्ति अत्यन्त कठिन है, परंतु भगवान्‌का भजन अत्यन्त सुकर माना गया है। इसलिये संतशिरोमणि पुरुष मुक्तिके लिये भी शिवका भजन ही करते हैं। ज्ञानस्वरूप मोक्षदाता परमात्मा शिव भजनके ही अधीन हैं। भक्तिसे ही बहुत-से पुरुष सिद्धि-लाभ करके प्रसन्नतापूर्वक परम मोक्ष पा गये हैं। भगवान् शम्भुकी भक्ति ज्ञानकी जननी मानी गयी है जो सदा भोग और मोक्ष देनेवाली है। वह साधु महापुरुषोंके कृपा-प्रसादसे सुलभ होती है। उत्तम प्रेमका अङ्कुर ही उसका लक्षण है। द्विजो ! वह भक्ति भी सगुण और निर्गुणके भेदसे दो प्रकारकी जाननी चाहिये। फिर वैधी और स्वाभाविकी—ये दो भेद और होते हैं। इनमें वैधीकी अपेक्षा स्वाभाविकी श्रेष्ठ मानी

---

* सत्यं ज्ञानमनन्तं च सच्चिदानन्दसंज्ञितम्। निर्गुणो निरुपाधिश्चाव्ययः शुद्धो निरञ्जनः॥
न रक्तो नैव पीतश्च न श्वेतो नील एव च। न ह्रस्वो न च दीर्घश्च न स्थूलः सूक्ष्म एव च॥
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। तदेव परमं प्रोक्तं ब्रह्मैव शिवसंज्ञकम्॥
आकाशं व्यापकं यद्वत् तथैव व्यापकं त्विदम्। मायातीतं परात्मानं द्वन्द्वातीतं विमत्सरम्॥
तत्प्राप्तिश्च भवेदत्र शिवज्ञानोदयाद् ध्रुवम्। भजनाद्वा शिवस्यैव सूक्ष्ममत्या सतां द्विजाः॥
(शि॰ पु॰ को॰ रु॰ सं॰ ४१। १२—१६)

आदरणीय हैं; क्योंकि अपने शरीरसे ही परोपकारमें लगे हुए हैं। मैंने इस समय मनुष्य-जन्म पाकर भी किस पुरुषार्थका साधन किया ? दूसरेके शरीरको पीड़ा देकर अपने शरीरको पोसा है। प्रतिदिन अनेक प्रकारके पाप करके अपने कुटुम्बका पालन किया है। हाय ! ऐसे पाप करके मेरी क्या गति होगी ? अथवा मैं किस गतिको प्राप्त होऊँगा ? मैंने जन्मसे लेकर अबतक जो पातक किया है, उसका इस समय मुझे स्मरण हो रहा है। मेरे जीवनको धिक्कार है, धिक्कार है।' इस प्रकार ज्ञानसम्पन्न होकर व्याधने अपने बाणको रोक लिया और कहा—'श्रेष्ठ मृगो ! तुम जाओ। तुम्हारा जीवन धन्य है।'

व्याधके ऐसा कहनेपर भगवान् शंकर तत्काल प्रसन्न हो गये और उन्होंने व्याधको अपने सम्मानित एवं पूजित स्वरूपका दर्शन कराया तथा कृपापूर्वक उसके शरीरका स्पर्श करके उससे प्रेमसे कहा—'भील ! मैं तुम्हारे व्रतसे प्रसन्न हूँ। वर माँगो।' व्याध भी भगवान् शिवके उस रूपको देखकर तत्काल जीवन्मुक्त हो गया और 'मैंने सब कुछ पा लिया' यों कहता हुआ उनके चरणोंके आगे गिर पड़ा। उसके इस भावको देखकर भगवान् शिव भी मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए और उसे 'गुह' नाम देकर कृपादृष्टिसे देखते हुए उन्होंने उसे दिव्य वर दिये।

शिव बोले—व्याध ! सुनो, आजसे तुम शृङ्गवेरपुरमें उत्तम राजधानीका आश्रय ले दिव्य भोगोंका उपभोग करो। तुम्हारे वंशकी वृद्धि निर्विघ्नरूपसे होती रहेगी। देवता भी तुम्हारी प्रशंसा करेंगे। व्याध ! मेरे भक्तोंपर स्नेह रखनेवाले भगवान् श्रीराम एक दिन निश्चय ही तुम्हारे घर पधारेंगे और तुम्हारे साथ मित्रता करेंगे। तुम मेरी सेवामें मन लगाकर दुर्लभ मोक्ष पा जाओगे।

इसी समय वे सब मृग भगवान् शंकरका दर्शन और प्रणाम करके मृगयोनिसे मुक्त हो गये तथा दिव्य-देहधारी हो विमानपर बैठकर शिवके दर्शनमात्रसे शापमुक्त हो दिव्यधामको चले गये। तबसे अर्बुद पर्वतपर भगवान् शिव व्याधेश्वरके नामसे प्रसिद्ध हुए, जो दर्शन और पूजन करनेपर तत्काल भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। महर्षियो ! वह व्याध भी उस दिनसे दिव्य भोगोंका उपभोग करता हुआ अपनी राजधानीमें रहने लगा। उसने भगवान् श्रीरामकी कृपा पाकर शिवका सायुज्य प्राप्त कर लिया। अनजानमें ही इस व्रतका अनुष्ठान करनेसे उसको सायुज्य मोक्ष मिल गया; फिर जो भक्तिभावसे सम्पन्न होकर इस व्रतको करते हैं, वे शिवका शुभ सायुज्य प्राप्त कर लें, इसके लिये तो कहना ही क्या है। सम्पूर्ण शास्त्रों तथा अनेक प्रकारके धर्मोंके विषयमें भलीभाँति विचार करके इस शिवरात्रि-व्रतको सबसे उत्तम बताया गया है। इस लोकमें जो नाना प्रकारके व्रत, विविध तीर्थ, भाँति-भाँतिके विचित्र दान, अनेक प्रकारके यज्ञ, तरह-तरहके तप तथा बहुत-से जप हैं, वे सब इस शिवरात्रि-व्रतकी समानता नहीं कर सकते। इसलिये अपना हित चाहनेवाले मनुष्योंको इस शुभतर व्रतका अवश्य पालन करना चाहिये। यह शिवरात्रि-व्रत दिव्य है। इससे सदा भोग और मोक्षकी प्राप्ति होती है। महर्षियो ! यह शुभ शिवरात्रि-व्रत व्रतराजके नामसे विख्यात है। इसके विषयमें सब बातें मैंने तुम्हें बता दीं। अब और क्या सुनना चाहते हो ?

(अध्याय ४०)

☆

मुक्ति और भक्तिके स्वरूपका विवेचन

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! आपने बारंबार मुक्तिका नाम लिया है। यहाँ मुक्ति मिलनेपर क्या होता है ? मुक्तिमें जीवकी कैसी अवस्था होती है ? यह हमें बताइये।

सूतजीने कहा—महर्षियो ! सुनो। मैं तुमसे संसारक्लेशका निवारण तथा परमानन्दका दान करनेवाली मुक्तिका स्वरूप बताता हूँ। मुक्ति चार प्रकारकी कही गयी है—सारूप्या, सालोक्या, सांनिध्या तथा चौथी सायुज्या। इस शिवरात्रिव्रतसे सब प्रकारकी मुक्ति सुलभ हो जाती है। जो ज्ञानरूप अविनाशी, साक्षी, ज्ञान-गम्य और द्वैतरहित साक्षात् शिव हैं, वे ही यहाँ कैवल्यमोक्षके तथा धर्म, अर्थ और कामरूप त्रिवर्गके भी दाता हैं। कैवल्या नामक जो पाँचवीं मुक्ति है, वह मनुष्योंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है। मुनिवरो ! मैं उसका लक्षण बताता हूँ, सुनो। जिनसे यह समस्त जगत् उत्पन्न होता है, जिनके द्वारा इसका पालन होता है तथा अन्ततोगत्वा यह जिनमें लीन होता है, वे ही शिव हैं। जिससे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है, वही शिवका रूप है। मुनीश्वरो ! वेदोंमें शिवके दो रूप बताये गये हैं—सकल और निष्कल। शिवतत्त्व सत्य, ज्ञान, अनन्त एवं सच्चिदानन्द नामसे प्रसिद्ध है। निर्गुण, उपाधिरहित, अविनाशी, शुद्ध एवं निरञ्जन (निर्मल) है। वह न लाल है न पीला; न सफेद है न नीला; न छोटा है न बड़ा और न मोटा है न महीन। जहाँसे मनसहित वाणी उसे न पाकर लौट आती है, वह परब्रह्म परमात्मा ही शिव कहलाता है। जैसे आकाश सर्वत्र व्यापक है, उसी प्रकार यह शिवतत्त्व भी सर्वव्यापी है। यह मायासे परे, सम्पूर्ण द्वन्द्वोंसे रहित तथा मत्सरताशून्य परमात्मा है। यहाँ शिवज्ञानका उदय होनेसे निश्चय ही उसकी प्राप्ति होती है अथवा द्विजो ! सूक्ष्म बुद्धिके द्वारा शिवका ही भजन-ध्यान करनेसे सत्पुरुषोंको शिवपदकी प्राप्ति होती है *।

संसारमें ज्ञानकी प्राप्ति अत्यन्त कठिन है, परंतु भगवान्‌का भजन अत्यन्त सुकर माना गया है। इसलिये संतशिरोमणि पुरुष मुक्तिके लिये भी शिवका भजन ही करते हैं। ज्ञानस्वरूप मोक्षदाता परमात्मा शिव भजनके ही अधीन हैं। भक्तिसे ही बहुत-से पुरुष सिद्धि-लाभ करके प्रसन्नतापूर्वक परम मोक्ष पा गये हैं। भगवान् शम्भुकी भक्ति ज्ञानकी जननी मानी गयी है जो सदा भोग और मोक्ष देनेवाली है। वह साधु महापुरुषोंके कृपा-प्रसादसे सुलभ होती है। उत्तम प्रेमका अङ्कुर ही उसका लक्षण है। द्विजो ! वह भक्ति भी सगुण और निर्गुणके भेदसे दो प्रकारकी जाननी चाहिये। फिर वैधी और स्वाभाविकी—ये दो भेद और होते हैं। इनमें वैधीकी अपेक्षा स्वाभाविकी श्रेष्ठ मानी

---

* सत्यं ज्ञानमनन्तं च सच्चिदानन्दसंज्ञितम्। निर्गुणो निरुपाधिश्चाव्ययः शुद्धो निरञ्जनः॥
न रक्तो नैव पीतश्च न श्वेतो नील एव च। न ह्रस्वो न च दीर्घश्च न स्थूलः सूक्ष्म एव च॥
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। तदेव परमं प्रोक्तं ब्रह्मैव शिवसंज्ञकम्॥
आकाशं व्याप्य यद्वत् तथैव व्यापकं त्विदम्। मायातीतं परात्मानं द्वन्द्वातीतं विमत्सरम्॥
तत्प्राप्तिश्च भवेदत्र शिवज्ञानोदयाद् ध्रुवम्। भजनाद्धि शिवस्यैव सूक्ष्मबुद्ध्या सतां द्विजाः॥
(शि० पु० को० रु० सं० ४१। १२—१५)

गयी है। इनके सिवा नैष्ठिकी और अनैष्ठिकीके भेदसे भक्तिके दो प्रकार और बताये गये हैं। नैष्ठिकी भक्ति छः प्रकारकी जाननी चाहिये और अनैष्ठिकी एक ही प्रकारकी। फिर विहिता और अविहिताके भेदसे विद्वानोंने उसके अनेक प्रकार माने हैं। उनके बहुत-से भेद होनेके कारण यहाँ विस्तृत वर्णन नहीं किया जा रहा है। उन दोनों प्रकारकी भक्तियोंके श्रवण आदि भेदसे नौ अङ्ग जानने चाहिये। भगवान्‌की कृपाके बिना इन भक्तियोंका सम्पादन होना कठिन है और उनकी कृपासे सुगमतापूर्वक इनका साधन होता है। द्विजो ! भक्ति और ज्ञानको शम्भुने एक-दूसरेसे भिन्न नहीं बताया है। इसलिये उनमें भेद नहीं करना चाहिये। ज्ञान और भक्ति दोनोंके ही साधकको सदा सुख मिलता है। ब्राह्मणो ! जो भक्तिका विरोधी है, उसे ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती। भगवान् शिवकी भक्ति करनेवालेको ही शीघ्रतापूर्वक ज्ञान प्राप्त होता है। अतः मुनीश्वरो ! महेश्वरकी भक्तिका साधन करना आवश्यक है। उसीसे सबकी सिद्धि होगी, इसमें संशय नहीं है। महर्षियो ! तुमने जो कुछ पूछा था, उसीका मैंने वर्णन किया है। इस प्रसङ्गको सुनकर मनुष्य सब पापोंसे निस्संदेह मुक्त हो जाता है।

(अध्याय ४१)

☆

शिव, विष्णु, रुद्र और ब्रह्माके स्वरूपका विवेचन

ऋषियोंने पूछा—शिव कौन हैं ? विष्णु कौन हैं ? रुद्र कौन हैं और ब्रह्मा कौन हैं ? इन सबमें निर्गुण कौन है ? हमारे इस संदेहका आप निवारण कीजिये।

सूतजीने कहा—महर्षियो ! वेद और वेदान्तके विद्वान् ऐसा मानते हैं कि निर्गुण परमात्मासे सर्वप्रथम जो सगुणरूप प्रकट हुआ, उसीका नाम शिव है। शिवसे पुरुष-सहित प्रकृति उत्पन्न हुई। उन दोनोंने मूलस्थानमें स्थित जलके भीतर तप किया। वह स्थान पञ्चक्रोशी काशीके नामसे विख्यात है, जो भगवान् शिवको अत्यन्त प्रिय है। यह जल सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त था। उस जलका आश्रय ले योगमायासे युक्त श्रीहरि वहाँ सोये। नार अर्थात् जलको अयन (निवासस्थान) बनानेके कारण फिर 'नारायण' नामसे प्रसिद्ध हुए और प्रकृति 'नारायणी' कहलायी। नारायणके नाभि-कमलसे जिनकी उत्पत्ति हुई, वे ब्रह्मा कहलाते हैं। ब्रह्माने तपस्या करके जिनका साक्षात्कार किया, उन्हें विष्णु कहा गया है। ब्रह्मा और विष्णुके विवादको शान्त करनेके लिये निर्गुण शिवने जो रूप प्रकट किया, उसका नाम 'महादेव' है। उन्होंने कहा—'मैं शम्भु ब्रह्माजीके ललाटसे प्रकट होऊँगा' इस कथनके अनुसार समस्त लोकोंपर अनुग्रह करनेके लिये जो ब्रह्माजीके ललाटसे प्रकट हुए, उनका नाम रुद्र हुआ। इस प्रकार रूपरहित परमात्मा सबके चिन्तनका विषय बननेके लिये साकाररूपमें प्रकट हुए। वे ही साक्षात् भक्तवत्सल शिव हैं। तीनों गुणोंसे भिन्न शिवमें तथा गुणोंके धाम रुद्रमें उसी तरह वास्तविक भेद नहीं है, जैसे सुवर्ण और उसके आभूषणमें नहीं है। दोनोंके रूप और कर्म समान हैं। दोनों समानरूपसे भक्तोंको उत्तम गति प्रदान करनेवाले हैं। दोनों समानरूपसे सबके सेवनीय हैं तथा नाना प्रकारके लीला-विहार करनेवाले हैं। भयानक

पराक्रमी रुद्र सर्वथा शिवरूप ही हैं। वे भक्तोंके कार्यकी सिद्धिके निमित्त विष्णु और ब्रह्माकी सहायता करनेके लिये प्रकट हुए हैं। अन्य जो-जो देवता जिस क्रमसे प्रकट हुए हैं, उसी क्रमसे लयको प्राप्त होते हैं। परंतु रुद्रदेव उस तरह लीन नहीं होते। उनका साक्षात् शिवमें ही लय होता है। ये प्राकृत प्राणी रुद्रमें मिलकर ही लयको प्राप्त होते हैं। परंतु रुद्र इनमें मिलकर लयको नहीं प्राप्त होते। यह भगवती श्रुतिका उपदेश है। सब लोग रुद्रका भजन करते हैं, किंतु रुद्र किसीका भजन नहीं करते। ये भक्तवत्सल होनेके कारण कभी-कभी अपने-आप भक्त-जनोंका चिन्तन कर लेते हैं। जो दूसरे देवताका भजन करते हैं, वे उसीमें लीन होते हैं; इसीलिये वे दीर्घकालके बाद रुद्रमें लीन होनेका अवसर पाते हैं। जो कोई रुद्रके भक्त हैं, वे तत्काल शिव हो जाते हैं; अतः उनके लिये दूसरेकी अपेक्षा नहीं रहती। यह सनातन श्रुतिका संदेश है।

द्विजो ! अज्ञान अनेक प्रकारका होता है, परंतु विज्ञानका एक ही स्वरूप है। वह अनेक प्रकारका नहीं होता। उसको समझनेका प्रकार मैं बताऊँगा, तुमलोग आदरपूर्वक सुनो। ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जो कुछ भी यहाँ देखा जाता है, वह सब शिवरूप ही है। उसमें नानात्वकी कल्पना मिथ्या है। सृष्टिके पूर्व भी शिवकी सत्ता बतायी गयी है, सृष्टिके मध्यमें भी शिव विराज रहे हैं, सृष्टिके अन्तमें भी शिव रहते हैं और जब सब कुछ शून्यतामें परिणत हो जाता है, उस समय भी शिवकी सत्ता रहती ही है। अतः मुनीश्वरो ! शिवको ही चतुर्गुण कहा गया है। वे ही शिव शक्तिमान् होनेके कारण 'सगुण' जाननेयोग्य हैं। इस प्रकार वे सगुण-निर्गुणके भेदसे दो प्रकारके हैं। जिन शिवने ही भगवान् विष्णुको सम्पूर्ण सनातन वेद, अनेक वर्ण, अनेक मात्रा तथा अपना ध्यान एवं पूजन दिये हैं, वे ही सम्पूर्ण विद्याओंके ईश्वर हैं—ऐसी सनातन श्रुति है। अतएव शम्भुको 'वेदोंका प्राकट्यकर्ता' तथा 'वेदपति' कहा गया है। वे ही सबपर अनुग्रह करनेवाले साक्षात् शंकर हैं। कर्ता, भर्ता, हर्ता, साक्षी तथा निर्गुण भी वे ही हैं। दूसरोंके लिये कालका मान है, परंतु काल-स्वरूप रुद्रके लिये कालकी कोई गणना नहीं है; क्योंकि वे साक्षात् स्वयं महाकाल हैं और महाकाली उनके आश्रित हैं। ब्राह्मण, रुद्र और कालीको एक-से ही बताते हैं। उन दोनोंने सत्य लीला करनेवाली अपनी इच्छासे ही सब कुछ प्राप्त किया है। शिवका कोई उत्पादक नहीं है। उनका कोई पालक और संहारक भी नहीं है। वे स्वयं सबके हेतु हैं। एक होकर भी अनेकताको प्राप्त हो सकते हैं और अनेक होकर भी एकताको। एक ही बीज बाहर होकर वृक्ष और फल आदिके रूपमें परिणत होता हुआ पुनः बीजभावको प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार शिवरूपी महेश्वर स्वयं एकसे अनेक होनेमें हेतु हैं। यह उत्तम शिवज्ञान तत्त्वतः बताया गया है। ज्ञानवान् पुरुष ही इसको जानता है, दूसरा नहीं।

मुनि बोले—सूतजी ! आप लक्षणसहित ज्ञानका वर्णन कीजिये, जिसको जानकर मनुष्य शिवभावको प्राप्त हो जाता है। सारा जगत् शिव कैसे है अथवा शिव ही सम्पूर्ण जगत् कैसे हैं ?

ऋषियोंका यह प्रश्न सुनकर पौराणिक-शिरोमणि सूतजीने भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका चिन्तन करके उनसे कहा।

(अध्याय ४२)

☆

शिवसम्बन्धी तत्त्वज्ञानका वर्णन तथा उसकी महिमा, कोटिरुद्रसंहिताका माहात्म्य एवं उपसंहार

सूतजीने कहा—ऋषियो ! मैंने शिवज्ञान जैसा सुना है, उसे बता रहा हूँ। तुम सब लोग सुनो, वह अत्यन्त गुह्य और परम मोक्षस्वरूप है। ब्रह्मा, नारद, सनकादि, मुनि व्यास तथा कपिल—इनके समाजमें इन्हीं लोगोंने निश्चय करके ज्ञानका जो स्वरूप बताया है, उसीको यथार्थ ज्ञान समझना चाहिये। सम्पूर्ण जगत् शिवमय है, यह ज्ञान सदा अनुशीलन करनेयोग्य है। सर्वज्ञ विद्वान्को यह निश्चितरूपसे जानना चाहिये कि शिव सर्वमय हैं। ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जो कुछ जगत् दिखायी देता है, वह सब शिव ही हैं। वे महादेवजी ही शिव कहलाते हैं। जब उनकी इच्छा होती है, तब वे इस जगत्की रचना करते हैं। वे ही सबको जानते हैं, उनको कोई नहीं जानता। वे इस जगत्की रचना करके स्वयं इसके भीतर प्रविष्ट होकर भी इससे दूर हैं। वास्तवमें उनका इसमें प्रवेश नहीं हुआ है; क्योंकि वे निर्लिप्त, सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। जैसे सूर्य आदि ज्योतियोंका जलमें प्रतिबिम्ब पड़ता है, वास्तवमें जलके भीतर उनका प्रवेश नहीं होता, उसी प्रकार साक्षात् शिवके विषयमें समझना चाहिये। वस्तुतः तो वे स्वयं ही सब कुछ हैं। मतभेद ही अज्ञान है; क्योंकि शिवसे भिन्न किसी द्वैत वस्तुकी सत्ता नहीं है। सम्पूर्ण दर्शनोंमें मतभेद ही दिखाया जाता है, परंतु वेदान्ती नित्य अद्वैत तत्त्वका वर्णन करते हैं। जीव परमात्मा शिवका ही अंश है; परंतु अविद्यासे मोहित होकर अवश हो रहा है और अपनेको शिवसे भिन्न समझता है। अविद्यासे मुक्त होनेपर वह शिव ही हो जाता है। शिव सबको व्याप्त करके स्थित हैं और सम्पूर्ण जन्तुओंमें व्यापक हैं। वे जड और चेतन—सबके ईश्वर होकर स्वयं ही सबका कल्याण करते हैं। जो विद्वान् पुरुष वेदान्तमार्गका आश्रय ले उनके साक्षात्कारके लिये साधना करता है, उसे वह साक्षात्काररूप फल अवश्य प्राप्त होता है। व्यापक अग्नितत्त्व प्रत्येक काष्ठमें स्थित है; परंतु जो उस काष्ठका मन्थन करता है, वही असंदिग्धरूपसे अग्निको प्रकट करके देखता है। उसी तरह जो बुद्धिमान् यहाँ भक्ति आदि साधनोंका अनुष्ठान करता है, उसे अवश्य शिवका दर्शन प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं है। सर्वत्र केवल शिव हैं, शिव हैं, शिव हैं; दूसरी कोई वस्तु नहीं है। वे शिव भ्रमसे ही सदा नाना रूपोंमें भासित होते हैं।

जैसे समुद्र, मिट्टी अथवा सुवर्ण—ये उपाधिभेदसे नानात्वको प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार भगवान् शंकर भी उपाधियोंसे ही अनेक रूपोंमें भासते हैं। कार्य और कारणमें वास्तविक भेद नहीं होता। केवल भ्रमसे भरी हुई बुद्धिके द्वारा ही उसमें भेदकी प्रतीति होती है। भ्रम दूर होते ही भेदबुद्धिका नाश हो जाता है। जब बीजसे अङ्कुर उत्पन्न होता है, तब वह नानात्वको प्रकट करता है; फिर अन्तमें वह बीजरूपमें ही स्थित होता है और अङ्कुर नष्ट हो जाता है। ज्ञानी बीजरूपमें ही स्थित है और नाना प्रकारके विकार अङ्कुररूप हैं। उन विकारस्वरूप अङ्कुरोंकी निवृत्ति हो जानेपर पुरुष फिर ज्ञानीरूपमें ही स्थित होता है—इसमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। सब कुछ शिव है और शिव ही सब कुछ हैं। शिव तथा

नहीं है। उनकी शरण लेकर जीव संसार-बन्धनसे छूट जाता है।

ब्राह्मणो ! इस प्रकार वहाँ पधारे हुए ऋषियोंने परस्पर निश्चय करके जो यह ज्ञानकी बात बतायी है, इसे अपनी बुद्धिके द्वारा प्रयत्नपूर्वक धारण करना चाहिये। मुनीश्वरो ! तुमने जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने तुम्हें बता दिया। इसे तुम्हें प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये। बताओ, अब और क्या सुनना चाहते हो ?

ऋषि बोले—व्यासशिष्य ! आपको नमस्कार है। आप धन्य हैं, शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ हैं। आपने हमें शिवतत्त्वसम्बन्धी परम उत्तम ज्ञानका श्रवण कराया है। आपकी कृपासे हमारे मनकी भ्रान्ति मिट गयी। हम आपसे मोक्षदायक शिवतत्त्वका ज्ञान पाकर बहुत संतुष्ट हुए हैं।

सूतजीने कहा—द्विजो ! जो नास्तिक हो, श्रद्धाहीन हो और शठ हो, जो भगवान् शिवका भक्त न हो तथा इस विषयको सुननेकी रुचि न रखता हो, उसे इस तत्त्वज्ञानका उपदेश नहीं देना चाहिये। व्यासजीने इतिहास, पुराणों, वेदों और शास्त्रोंका बारंबार विचार करके उनका सार निकालकर मुझे उपदेश दिया है। इसका एक बार श्रवण करनेमात्रसे सारे पाप भस्म हो जाते हैं, अभक्तको भक्ति प्राप्त होती है और भक्तकी भक्ति बढ़ती है। दुबारा सुननेसे उत्तम भक्ति प्राप्त होती है। तीसरी बार सुननेसे मोक्ष प्राप्त होता है। अतः भोग और मोक्षरूप फलकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको इसका बारंबार श्रवण करना चाहिये। उत्तम फलको पानेके उद्देश्यसे इस पुराणकी पाँच आवृत्तियाँ करनी चाहिये। ऐसा करनेपर मनुष्य उसे अवश्य पाता है, इसमें संदेह नहीं है; क्योंकि यह व्यासजीका वचन है। जिसने इस उत्तम पुराणको सुना है, उसे कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

यह शिव-विज्ञान भगवान् शंकरको अत्यन्त प्रिय है। यह भोग और मोक्ष देनेवाला तथा शिवभक्तिको बढ़ानेवाला है। इस प्रकार मैंने शिवपुराणकी यह चौथी आनन्ददायिनी तथा परम पुण्यमयी संहिता कही है, जो कोटिरुद्रसंहिताके नामसे विख्यात है। जो पुरुष एकाग्रचित्त हो भक्तिभावसे इस संहिताको सुनेगा या सुनायेगा, वह समस्त भोगोंका उपभोग करके अन्तमें परमगतिको प्राप्त कर लेगा।

(अध्याय ४३)

☆

॥ कोटिरुद्रसंहिता सम्पूर्ण ॥

☆

उमासंहिता

भगवान् श्रीकृष्णके तपसे संतुष्ट हुए शिव और पार्वतीका उन्हें अभीष्ट वर देना तथा शिवकी महिमा

यो धत्ते भुवनानि सप्त गुणवान् स्रष्टा रजःसंश्रयः
संहर्ता तमसान्वितो गुणवतीं मायामतीत्य स्थितः।
सत्यानन्दमनन्तबोधममलं ब्रह्मादिसंज्ञास्पदं
नित्यं सत्त्वसमन्वयादधिगतं पूर्णं शिवं धीमहि॥

'जो रजोगुणका आश्रय ले संसारकी सृष्टि करते हैं, सत्त्वगुणसे सम्पन्न हो सातों भुवनोंका धारण-पोषण करते हैं, तमोगुणसे युक्त हो सबका संहार करते हैं तथा त्रिगुणमयी मायाको लाँघकर अपने शुद्ध स्वरूपमें स्थित रहते हैं, उन सत्यानन्द-स्वरूप, अनन्त बोधमय, निर्मल एवं पूर्ण ब्रह्म शिवका हम ध्यान करते हैं। वे ही सृष्टिकालमें ब्रह्मा, पालनके समय विष्णु और संहार कालमें रुद्र नाम धारण करते हैं तथा सदैव सात्त्विक-भावको अपनानेसे ही प्राप्त होते हैं।

ऋषि बोले—महाज्ञानी व्यासशिष्य सूतजी! आपको नमस्कार है। आपने कोटिरुद्र नामक चौथी संहिता हमें सुना दी। अब उमासंहिताके अन्तर्गत नाना प्रकारके उपाख्यानोंसे युक्त जो परमात्मा साम्ब सदाशिवका चरित्र है, उसका वर्णन कीजिये।

सूतजीने कहा—शौनक आदि महर्षियो! भगवान् शंकरका मङ्गलमय चरित्र परम दिव्य एवं भोग और मोक्षको देनेवाला है। तुमलोग प्रेमसे इसका श्रवण करो। पूर्वकालमें मुनिवर व्यासने सनत्कुमारके सामने ऐसे ही पवित्र प्रश्नको उपस्थित किया था और इसके उत्तरमें उन्होंने भगवान् शिवके उत्तम चरित्रका गान किया था।

उस समय पुत्रकी प्राप्तिके निमित्त श्रीकृष्णके हिमवान् पर्वतपर जाकर महर्षि उपमन्युसे मिलने, उनकी बतायी हुई पद्धतिके अनुसार भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये तप करने, उनके तपसे प्रसन्न होकर पार्वती, कार्तिकेय तथा गणेशसहित शिवके प्रकट होने तथा श्रीकृष्णके द्वारा उनकी स्तुतिपूर्वक वरदान माँगनेकी कथा सुनाकर सनत्कुमारजीने कहा—श्रीकृष्णका वचन सुनकर भगवान् भव उनसे बोले—'वासुदेव! तुमने जो कुछ मनोरथ किया है, वह सब पूर्ण होगा।' इतना कहकर त्रिशूलधारी भगवान् शिव फिर बोले—''यादवेन्द्र! तुम्हें साम्ब नामसे प्रसिद्ध एक महापराक्रमी बलवान् पुत्र प्राप्त होगा। एक समय मुनियोंने भयानक संवर्तक (प्रलयंकर) सूर्यको शाप दिया था कि 'तुम मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होओगे' अतः वे संवर्तक सूर्य ही तुम्हारे पुत्र होंगे। इसके सिवा जो-जो वस्तु तुम्हें अभीष्ट है, वह सब तुम प्राप्त करो।''

सनत्कुमारजी कहते हैं—इस प्रकार परमेश्वर शिवसे सम्पूर्ण वरोंको प्राप्त करके श्रीकृष्णने विविध प्रकारकी बहुत-सी स्तुतियोंद्वारा उन्हें पूर्णतया संतुष्ट किया। तदनन्तर भक्तवत्सला गिरिराजकुमारी शिवाने प्रसन्न हो उन तपस्वी शिवभक्त महात्मा वासुदेवसे कहा।

पार्वती बोलीं—परम बुद्धिमान् वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण! मैं तुमसे बहुत

संतुष्ट हूँ। अनघ! तुम मुझसे भी उन मनोवाञ्छित वरोंको ग्रहण करो, जो भूतलपर दुर्लभ हैं।

श्रीकृष्णने कहा—देवि! यदि आप मेरे इस सत्य तपसे संतुष्ट हैं और मुझे वर दे रही हैं तो मैं यह चाहता हूँ कि ब्राह्मणोंके प्रति कभी मेरे मनमें द्वेष न हो, मैं सदा द्विजोंका पूजन करता रहूँ। मेरे माता-पिता सदा मुझसे संतुष्ट रहें। मैं जहाँ कहीं भी जाऊँ, समस्त प्राणियोंके प्रति मेरे हृदयमें अनुकूल भाव रहे। आपके दर्शनके प्रभावसे मेरी संतति उत्तम हो। मैं सैकड़ों यज्ञ करके इन्द्र आदि देवताओंको तृप्त करूँ। सहस्रों साधु-संन्यासियों और अतिथियोंको सदा अपने घरपर श्रद्धासे पवित्र अन्नका भोजन कराऊँ। भाई-बन्धुओंके साथ नित्य मेरा प्रेम बना रहे तथा मैं सदा संतुष्ट रहूँ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर सम्पूर्ण अभीष्टोंको देनेवाली सनातनी देवी पार्वती विस्मित हो उनसे बोलीं— 'वासुदेव! ऐसा ही होगा। तुम्हारा कल्याण हो।' इस प्रकार श्रीकृष्णपर उत्तम कृपा करके उन्हें उन वरोंको देकर पार्वतीदेवी तथा परमेश्वर शिव दोनों वहीं अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर केशिहन्ता श्रीकृष्णने मुनिवर उपमन्युको प्रणाम करके उनसे वर-प्राप्तिका सारा समाचार बताया। तब उन मुनिने कहा—'जनार्दन! संसारमें भगवान् शिवके सिवा दूसरा कौन महादानी ईश्वर है तथा क्रोधके समय दूसरा कौन अत्यन्त दुस्सह हो उठता है। महायशस्वी गोविन्द! दान, तप, शौर्य तथा स्थिरतामें शिवसे बढ़कर कौन है। अतः तुम शम्भुके दिव्य ऐश्वर्यका सदा श्रवण करते रहो।' *

तदनन्तर उपमन्युके द्वारा शिवकी महिमा सुननेके बाद उन मुनीश्वरको नमस्कार करके वसुदेवनन्दन केशव मन-ही-मन शम्भुका स्मरण करते हुए द्वारकापुरीको चले गये।

(अध्याय १—३)

☆

* महर्षि उपमन्युके द्वारा श्रीकृष्णके प्रति शिवतत्त्वके उपदेश तथा उपमन्युकी कथा वायवीयसंहितामें विस्तारसे कही जायगी।

नरकमें गिरानेवाले पापोंका संक्षिप्त परिचय

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! जो पाप-परायण जीव महानरकके अधिकारी हैं, उनका संक्षेपसे परिचय दिया जाता है; सावधान होकर सुनो। परस्त्रीको प्राप्त करनेका संकल्प, पराये धनको अपहरण करनेकी इच्छा, चित्तके द्वारा अनिष्ट-चिन्तन तथा न करनेयोग्य कर्ममें प्रवृत्त होनेका दुराग्रह—ये चार प्रकारके मानसिक पापकर्म हैं। असंगत प्रलाप (बेसिर-पैरकी बातें), असत्य-भाषण, अप्रिय बोलना और पीठ-पीछे चुगली खाना—ये चार वाचिक (वाणीद्वारा होनेवाले) पापकर्म हैं। अभक्ष्य-भक्षण, प्राणियोंकी हिंसा, व्यर्थके कार्योंमें लगना और दूसरोंके धनको हड़प लेना—ये चार प्रकारके शारीरिक पापकर्म हैं। इस प्रकार ये बारह कर्म बताये गये, जो मन, वाणी और शरीर इन तीन साधनोंसे सम्पन्न होते हैं। जो संसार-सागरसे पार उतारनेवाले महादेवजीसे द्वेष करते हैं, वे सब-के-सब नरकोंके समुद्रमें गिरनेवाले हैं। उनको बड़ा भारी पातक लगता है। जो शिवज्ञानका उपदेश देनेवाले तपस्वीकी, गुरुजनोंकी और पिता-ताऊ आदिकी निन्दा करते हैं, वे उन्मत्त मनुष्य नरक-समुद्रमें गिरते हैं। ब्रह्महत्यारा, मदिरा पीनेवाला, सुवर्ण चुरानेवाला, गुरुपत्नीगामी तथा इन चारोंसे सम्पर्क रखनेवाला पाँचवीं श्रेणीका पापी—ये सब-के-सब महापातकी कहे गये हैं।

जो क्रोधसे, लोभसे, भयसे तथा द्वेषसे ब्राह्मणके वधके लिये महान् मर्मभेदी दोषका वर्णन करता है, वह ब्रह्महत्यारा होता है। जो ब्राह्मणको बुलाकर उसे कोई वस्तु देनेके पश्चात् फिर ले लेता है तथा जो निर्दोष पुरुषपर दोषारोपण करता है, वह मनुष्य भी ब्रह्म-हत्यारा होता है। जो भरी सभामें उदासीन भावसे बैठे हुए श्रेष्ठ द्विजको अपनी विद्याके अभिमानसे अपमानित करके उसे निस्तेज (हतप्रतिभ) कर देता है, उसे ब्रह्महत्यारा कहा गया है। जो दूसरोंके यथार्थ गुणोंका भी बलात् खण्डन करके झूठे गुणोंद्वारा अपने-आपको उत्कृष्ट सिद्ध करता है, वह भी निश्चय ही ब्रह्महत्यारा होता है। जो साँड़ोंद्वारा वाही जाती हुई गौओंके तथा गुरुसे उपदेश ग्रहण करते हुए द्विजोंके कार्यमें विघ्न डालता है, उसे ब्रह्महत्यारा कहते हैं। जो देवताओं, ब्राह्मणों तथा गौओंके उपयोगके लिये दी हुई भूमिको हर लेता है, उसे ब्रह्महत्यारा कहा गया है। देवता और ब्राह्मणके धनको हर लेना तथा अन्यायसे धन कमाना ब्रह्महत्याके समान ही पातक जानना चाहिये। जिस किसी व्रत, नियम तथा यज्ञको ग्रहण करके उसे त्याग देना तथा पञ्चमहायज्ञोंका अनुष्ठान न करना मदिरापानके समान पातक बताया गया है। पिता और माताको त्याग देना, झूठी गवाही देना, ब्राह्मणसे झूठा वादा करना, शिव-भक्तोंको मांस खिलाना तथा अभक्ष्य वस्तुका भक्षण करना ब्रह्महत्याके तुल्य कहा गया है। वनमें निरपराध प्राणियोंका वध कराना भी ब्रह्महत्याके ही तुल्य है। साधु पुरुषको चाहिये कि वह ब्राह्मणके धनको त्याग दे। उसे धर्मके कार्यमें भी न लगाये, अन्यथा ब्रह्महत्याका दोष लगता है। गौओंके मार्गमें, वनमें तथा गाँवमें जो लोग आग लगाते हैं, वे भी ब्रह्महत्या ही करते हैं।

इस तरहके जो भयानक पाप हैं, वे ब्रह्महत्याके समान माने गये हैं।

ब्राह्मणके द्रव्यका अपहरण करना, पैतृक सम्पत्तिके बँटवारेमें उलट-फेर करना, अत्यन्त अभिमान और अधिक क्रोध करना, पाखण्ड फैलाना, कृतघ्नता करना, विषयोंमें अत्यन्त आसक्त होना, कंजूसी करना, सत्पुरुषोंसे द्वेष रखना, परस्त्री-समागम करना, श्रेष्ठ कुलकी कन्याओंको कलङ्कित करना, यज्ञ, बाग-बगीचे, सरोवर तथा स्त्री-पुरुषोंका विक्रय करना, तीर्थयात्रा, उपवास तथा व्रत एवं उपनयन आदिका सौदा करना, स्त्रीके धनसे जीविका चलाना, स्त्रियोंके अत्यन्त वशीभूत होना, स्त्रियोंकी रक्षा न करना तथा छलसे परायी स्त्रियोंका सेवन करना, ब्रह्मचर्य आदि व्रतोंको त्याग देना, दूसरोंके आचारका सेवन करना, असत्-शास्त्रोंका अध्ययन करना, सूखे तर्कका सहारा लेना, देवता, अग्नि, गुरु, साधु तथा ब्राह्मणकी निन्दा करना, पितृयज्ञ और देवयज्ञको त्याग देना, अपने कर्मोंका परित्याग करना, बुरे स्वभावको अपनाना, नास्तिक होना, पापोंमें लगना और सदा झूठ बोलना—इस तरहके पापोंसे युक्त स्त्री-पुरुषोंको उपपातकी कहा गया है।

जो मनुष्य गौओं, ब्राह्मणकन्याओं, स्वामी, मित्र तथा तपस्वी महात्माओंके कार्य नष्ट कर देते हैं, वे नरकगामी माने गये हैं। जो ब्राह्मणोंको दुःख देते हैं, उन्हें मारनेके लिये शस्त्र उठाते हैं, जो द्विज होकर शूद्रोंकी सेवा करते हैं तथा जो कामवश मदिरापान करते हैं, जो पापपरायण, क्रूर तथा हिंसाके प्रेमी हैं, जो गोशालामें, अग्निमें, जलमें, सड़कोंपर, पेड़ोंकी छायामें, पर्वतोंपर, बगीचोंमें तथा देवमन्दिरोंके आस-पास मल-मूत्रका त्याग करते हैं, बाँस, ईंट, पत्थर, काठ, सींग और कीलोंद्वारा जो रास्ता रूँधते या रोकते हैं, दूसरोंके खेत आदिकी सीमा (मेड़) मिटा देते हैं, छलसे शासन करते हैं, छल-कपटके ही कार्योंमें लगे रहते हैं, किसीको ठगकर लाये हुए पाक, अन्न तथा वस्त्रोंका छलसे ही उपयोग करते हैं, जो स्त्री, पुत्र, मित्र, बाल, वृद्ध, दुर्बल, आतुर, भृत्य, अतिथि तथा बन्धुजनोंको भूखे छोड़कर स्वयं खा लेते हैं, जो अजितेन्द्रिय पुरुष स्वयं नियमोंको ग्रहण करके फिर उन्हें त्याग देते हैं, संन्यास धारण करके भी फिरसे घर बसा लेते हैं, जो शिवप्रतिमाका भेदन करनेवाले हैं, गौओंको क्रूरतापूर्वक मारते और बारंबार उनका दमन करते हैं, जो दुर्बल पशुओंका पोषण नहीं करते, सदा उन्हें छोड़े रखते हैं, अधिक भार लादकर उन्हें पीड़ा देते हैं तथा सहन न होनेपर भी बलपूर्वक उन्हें हल या गाड़ीमें जोतते हैं अथवा उनसे असह्य बोझ खिंचवाते हैं, जो उन पशुओंको खिलाये बिना ही भार ढोने या हल खींचनेके काममें जोत देते हैं, बँधे हुए भूखे पशुओंको चरनेके लिये नहीं छोड़ते तथा जो भारसे घायल, रोगसे पीड़ित और भूखसे आतुर गाय-बैलोंका यत्नपूर्वक पालन नहीं करते, वे सब-के-सब गो-हत्यारे तथा नरकगामी माने गये हैं।

जो पापिष्ठ मनुष्य बैलोंके अण्डकोश कुटवाते हैं और बन्ध्या गायको जोतते हैं, वे महानारकी हैं। जो आशासे घरपर आये हुए भूख, प्यास और परिश्रमसे कष्ट पाते हुए और अन्नकी इच्छा रखनेवाले अतिथियों,

अनाथों, स्वाधीन पुरुषों, दीनों, बाल, वृद्ध, दुर्बल एवं रोगियोंपर कृपा नहीं करते, वे मूढ़ नरकके समुद्रमें गिरते हैं। मनुष्य जब मरता है तब उसका कमाया हुआ धन घरमें ही रह जाता है। भाई-बन्धु भी श्मशानतक जाकर लौट आते हैं, केवल उसके किये हुए पाप और पुण्य ही परलोकके पथपर जानेवाले उस जीवके साथ जाते हैं।

जो औचित्यकी सीमाको लाँघकर मनमाना कर वसूल करता है तथा दूसरोंको दण्ड देनेमें ही रुचि रखता है, वह राजा नरकमें पकाया जाता है। जिस राजाके राज्यमें प्रजा घूसखोरों, अपनी रुचिके अनुसार कम दाम देकर अधिक कीमतका माल ले लेनेवाले अधिकारियों तथा चोर-डाकुओंसे अधिक सतायी जाती है, वह राजा भी नरकोंमें पकाया जाता है। परायी स्त्रियोंके साथ व्यभिचार और चोरी करनेवाले प्रचण्ड पुरुषोंको जो पाप लगता है, वही परस्त्रीगामी राजाको भी लगता है। जो साधुको चोर और चोरको साधु समझता है तथा बिना विचारे ही निरपराधको प्राणदण्ड दे देता है, वह राजा नरकमें पड़ता है। जिस-किसी पराये द्रव्यको सरसों बराबर भी चुरा लेनेपर मनुष्य नरकमें गिरते हैं, इसमें संशय नहीं है। इस तरहके पापोंसे युक्त मनुष्य मरनेके पश्चात् यातना भोगनेके लिये नूतन शरीर पाता है, जिसमें सम्पूर्ण आकार अभिव्यक्त रहते हैं। इसलिये किये हुए पापका प्रायश्चित्त कर लेना चाहिये। अन्यथा सौ करोड़ कल्पोंमें भी बिना भोगे हुए पापका नाश नहीं हो सकता। जो मन, वाणी और शरीरद्वारा स्वयं पाप करता, दूसरेसे कराता तथा किसीके दुष्कर्मका अनुमोदन करता है, उसके लिये पापगति (नरक) ही फल है। (अध्याय ४—६)

☆

पापियों और पुण्यात्माओंकी यमलोकयात्रा

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! मनुष्य चार प्रकारके पापोंसे यमलोकमें जाते हैं। यमलोक अत्यन्त भयदायक और भयंकर है। वहाँ समस्त देहधारियोंको विवश होकर जाना पड़ता है। कोई ऐसे प्राणी नहीं हैं, जो यमलोकमें न जाते हों। किये हुए कर्मका फल कर्ताको अवश्य भोगना पड़ता है, इसका विचार करो। जीवोंमें जो शुभ कर्म करनेवाले, सौम्यचित्त और दयालु हैं, वे सौम्यमार्गसे यमपुरीके पूर्व द्वारको जाते हैं। जो पापी पापकर्मपरायण तथा दानसे रहित हैं, वे भयानक दक्षिण मार्गसे यमलोककी यात्रा करते हैं। मर्त्यलोकसे छियासी हजार योजनकी दूरी लाँघकर नानारूपवाले यमलोककी स्थिति है, यह जानना चाहिये। पुण्यकर्म करनेवाले लोगोंको तो वह नगर निकटवर्ती-सा जान पड़ता है; परंतु भयानक मार्गसे यात्रा करनेवाले पापियोंको वह बहुत दूर स्थित दिखायी देता है। वहाँका मार्ग कहीं तो तीखे काँटोंसे युक्त है; कहीं कंकड़ोंसे व्याप्त है; कहीं छूरेकी धारके समान तीखे पत्थर उस मार्गपर जड़े गये हैं, कहीं बड़ी भारी कीचड़ फैली हुई है। बड़े-छोटे पातकोंके अनुसार वहाँकी कठिनाइयोंमें भी भारीपन और हलकापन है। कहीं-कहीं यमपुरीके मार्गपर लोहेकी सूईके समान

तीखे डाभ फैले हुए हैं।

तदनन्तर यमपुरीके मार्गकी भीषण यातनाओं और कष्टोंका वर्णन करके सनत्कुमारजीने कहा—व्यासजी! जिन्होंने कभी दान नहीं किया है, वे लोग ही इस प्रकार दुःख उठाते और सुखकी याचना करते हुए उस मार्गपर जाते हैं। जिन्होंने पहलेसे ही दानरूपी पाथेय (राहखर्च) ले रखा है, वे सुखपूर्वक यमलोककी यात्रा करते हैं। इस रीतिसे कष्ट उठाकर पापी जीव जब प्रेतपुरीमें पहुँच जाते हैं, तब उनके विषयमें यमराजको सूचना दी जाती है। उनकी आज्ञा पाकर दूत उन पापियोंको यमराजके आगे ले जाकर खड़े करते हैं। वहाँ जो शुभ कर्म करनेवाले लोग होते हैं, उनको यमराज स्वागतपूर्वक आसन देकर पाद्य और अर्घ्य निवेदन करके प्रिय वर्तावके द्वारा सम्मानित करते हैं और कहते हैं—'वेदोक्त कर्म करनेवाले महात्माओ! आपलोग धन्य हैं, जिन्होंने दिव्य सुखकी प्राप्तिके लिये पुण्यकर्म किया है। अतः आपलोग

दिव्याङ्गनाओंके भोगसे भूषित तथा सम्पूर्ण मनोवाञ्छित पदार्थोंसे सम्पन्न निर्मल स्वर्गलोकमें जाइये। वहाँ महान् भोगोंका उपभोग करके अन्तमें पुण्यके क्षीण हो जानेपर जो कुछ थोड़ा-सा अशुभ शेष रह जाय; उसे फिर यहाँ आकर भोगियेगा।' जो धर्मात्मा मनुष्य होते हैं, वे मानो यमराजके लिये मित्रके समान हैं। वे यमराजको सुखपूर्वक सौम्य धर्मराजके रूपमें देखते हैं।

किंतु जो क्रूर कर्म करनेवाले हैं, वे यमराजको भयानक रूपमें देखते हैं। उनकी दृष्टिमें यमराजका मुख दाढ़ोंके कारण विकराल जान पड़ता है। नेत्र टेढ़ी भौंहोंसे युक्त प्रतीत होते हैं। उनके केश ऊपरको उठे होते हैं। दाढ़ी-मूँछ बड़ी-बड़ी होती है। ओठ

ऊपरकी ओर फड़कते रहते हैं। उनके अठारह भुजाएँ होती हैं, वे कुपित तथा काले कोयलोंके ढेर-से दिखायी देते हैं। उनके हाथोंमें सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र उठे होते हैं।

वे सब प्रकारके दण्डका भय दिखाकर उन पापियोंको डाँटते रहते हैं। बहुत बड़े भैंसेपर आरूढ़, लाल वस्त्र और लाल माला धारण करके बहुत ऊँचे महामेरुके समान दृष्टिगोचर होते हैं। उनके नेत्र प्रज्वलित अग्निके समान उद्दीप्त दिखायी देते हैं। उनका शब्द प्रलयकालके मेघकी गर्जनाके समान गम्भीर होता है। वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो महासागरको पी रहे हैं, गिरिराजको निगल रहे हैं और मुँहसे आग उगल रहे हैं।

उनके समीप प्रलयकालकी अग्निके समान प्रभावाले मृत्यु देवता खड़े रहते हैं। काजलके समान काले कालदेवता और भयानक कृतान्त देवता भी रहते हैं। इनके सिवा मारी, उग्र महामारी, भयंकर कालरात्रि, अनेक प्रकारके रोग तथा भाँति-भाँतिके भयावह कुष्ठ मूर्तिमान् हो हाथोंमें शक्ति, शूल, अङ्कुश, पाश, चक्र और खड्ग लिये खड़े रहते हैं।

वज्रतुल्य मुख धारण करनेवाले रुद्रगण क्षुर, तरकस और धनुष धारण किये वहाँ उपस्थित होते हैं। सभी नाना प्रकारके आयुध धारण करनेवाले; महान् वीर एवं भयंकर हैं। इनके अतिरिक्त असंख्य महावीर यमदूत, जिनकी अङ्गकान्ति काले कोयलेके समान काली होती है, सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र लिये बड़े भयंकर जान पड़ते हैं। ऐसे परिवारसे घिरे हुए घोर यमराज तथा भीषण चित्रगुप्तको पापिष्ठ प्राणी देखते हैं। यमराज उन पापकर्मियोंको बहुत डाँटते हैं और भगवान् चित्रगुप्त धर्मयुक्त वचनोंद्वारा उन्हें समझाते हैं। (अध्याय ७)

☆

नरकोंकी अट्ठाईस कोटियों तथा प्रत्येकके पाँच-पाँच नायकके क्रमसे एक सौ चालीस रौरवादि नरकोंकी नामावली

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! तदनन्तर यमदूत पापियोंको अत्यन्त तपे हुए पत्थरपर बड़े वेगसे दे मारते हैं, मानो वज्रसे बड़े-बड़े वृक्षोंको धराशायी कर दिया गया हो। उस समय शरीरसे जर्जर हुआ देहधारी जीव कानसे खून बहाने लगता है और सुध-बुध खोकर निश्चेष्ट हो जाता है। तब वायुका स्पर्श कराकर वे यमदूत फिर उसे जीवित कर देते हैं और उसके पापोंकी शुद्धिके लिये उसे नरक-समुद्रमें डाल देते हैं। पृथ्वीके नीचे नरककी सात कोटियाँ हैं, जो सातवें तलके अन्तमें घोर अन्धकारके भीतर स्थित हैं। उन सबकी अट्ठाईस कोटियाँ हैं। पहली कोटि घोरा कही गयी है। दूसरी सुघोरा है, जो उसके नीचे स्थित है। तीसरी अतिघोरा, चौथी महाघोरा, पाँचवीं घोररूपा, छठी तलातला, सातवीं भयानका, आठवीं कालरात्रि, नवीं भयोत्कटा, उसके नीचे दसवीं चण्डा, उसके भी नीचे महाचण्डा, फिर चण्ड-कोलाहला तथा उससे भिन्न प्रचण्डा है, जो चण्डोंकी नायिका कही गयी है; उसके बाद पद्मा, पद्मावती, भीता और भीमा है, जो भीषण नरकोंकी नायिका मानी गयी है। अठारहवीं कराला, उन्नीसवीं विकराला और बीसवीं नरककोटि वज्रा कही गयी है। तदनन्तर त्रिकोणा, पञ्चकोणा, सुदीर्घा, अखिलातिदा, समा, भीमबला, भीमा तथा अट्ठाईसवीं दीप्तप्राया

है। इस प्रकार मैंने तुमसे भयानक नरक-कोटियोंके नाम बताये हैं। इनकी संख्या अट्ठाईस ही है। ये पापियोंको यातना देनेवाली हैं। उन कोटियोंके क्रमशः पाँच-पाँच नायक जानने चाहिये।

अब उन सब कोटियोंके नाम बताये जाते हैं, सुनो। उनमें प्रथम रौरव नरक है, जहाँ पहुँचकर देहधारी जीव रोने लगते हैं। महारौरवकी पीड़ासे तो महान् पुरुष भी रो देते हैं। इसके बाद शीत और उष्ण नामक नरक हैं। फिर सुघोर है। रौरवसे सुघोरतक आदिके पाँच नरक नायक माने गये हैं। इसके बाद सुमहातीक्ष्ण, संजीवन, महातम, विलोम, विलोप, कण्टक, तीव्रवेग, कराल, विकराल, प्रकम्पन, महावक्त्र, काल, कालसूत्र, प्रगर्जन, सूचीमुख, सुनेमि, खादक, सुप्रपीडन, कुम्भीपाक, सुपाक, क्रकच, अतिदारुण, अङ्गारराशिभवन, मेरु, असृक्प्रहित, तीक्ष्णतुण्ड, शकुनि, महासंवर्तक, क्रतु, तप्तजन्तु, पङ्कलेप, प्रतिमांस, त्रपूद्भव, उच्छ्वास, सुनिरुच्छ्वास, सुदीर्घ, कूटशाल्मलि, दुरिष्ट, सुमहावाद, प्रवाद, सुप्रतापन, मेघ, वृष, शाल्म, सिंहमुख, व्याघ्रमुख, गजमुख, कुक्कुरमुख, सूकरमुख, अजमुख, महिषमुख, घूकमुख, कोकमुख, वृकमुख, ग्राह, कुम्भीनस, नक्र, सर्प, कूर्म, काक, गृध्र, उलूक, हलौक, शार्दूल, क्रथ, कर्कट, मण्डूक, पूतिमुख, रक्ताक्ष, पूतिमृत्तिक, कणधूम्र, अग्नि, कृमि, गन्धिवपु, अग्नीध्र, अप्रतिष्ठ, रुधिराभ, श्वभोजन, लालाभक्ष, अन्त्रभक्ष, सर्वभक्ष, सुदारुण, कण्टक, सुविशाल, विकट, कटपूतन, अम्बरीष, कटाह, कष्टदायिनी वैतरणी नदी, सुतप्त लोहशयन, एकपाद, प्रपूरण, घोर असितालवन, अस्थिभङ्ग, सुपूरण, विलातस, असुयन्त्र, कूटपाश, प्रमर्दन, महाचूर्ण, असुचूर्ण, तप्तलोहमय, पर्वत, क्षुरधारा, यमलपर्वत, मूत्रकूप, विष्ठाकूप, अश्रुकूप, शीतल क्षारकूप, मुसलोलूखल, यन्त्र, शिला, शकट, लाङ्गल, तालपत्रवन, असिपत्रवन, महाशकटमण्डप, सम्मोह, अस्थिभङ्ग, तप्त, चञ्चल, अयोगुड (लोहेकी गोली), बहुदुःख, महाक्लेश, कश्मल, शमल, मलावह, हालाहल, विरूप, स्वरूप, यमानुग, एकपाद, त्रिपाद, तीव्र, अचीवर और तम।

इस प्रकार ये अट्ठाईस नरक और क्रमशः उनके पाँच-पाँच नायक कहे गये हैं। अट्ठाईस कोटियोंके क्रमशः रौरव आदि पाँच-पाँच ही नायक बताये जाते हैं। उपर्युक्त २८ कोटियोंको छोड़कर लगभग सौ नरक माने जाते हैं और महानरकमण्डल एक सौ चालीस नरकोंका बताया गया है।*

(अध्याय ८)

☆

* यहाँ अट्ठाईस कोटियोंका पहले पृथक् वर्णन आया है, फिर प्रत्येकके पाँच-पाँच नायक बताकर शेष एक सौ चालीस नरकोंका नामोल्लेख किया गया है। कोटियोंकी संख्या मिला देनेसे सब एक सौ अड़सठ होते हैं।

विभिन्न पापोंके कारण मिलनेवाली नरकयातनाका वर्णन तथा कुक्कुरबलि, काकबलि एवं देवता आदिके लिये दी हुई बलिकी आवश्यकता एवं महत्ताका प्रतिपादन

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! इन सब भयानक पीड़ादायक नरकोंमें पापी जीवोंको अत्यन्त भीषण नरकयातना भोगनी पड़ती है। जो मिथ्या आगम (पाखण्डियोंके शास्त्र) में प्रवृत्त होता है, वह द्विजिह्व नामक नरकमें जाता है और जिह्वाके आकारमें आधे कोसतक फैले हुए तीक्ष्ण हलोंद्वारा वहाँ उसे विशेष पीड़ा दी जाती है। जो क्रूर मनुष्य माता-पिता और गुरुको डाँटता है, उसके मुँहमें कीड़ोंसे युक्त विष्ठा ठूँसकर उसे खूब पीटा जाता है। जो मनुष्य शिवमन्दिर, बगीचे, बावड़ी, कूप, तड़ाग तथा ब्राह्मणके स्थानको नष्ट-भ्रष्ट कर देते और वहाँ स्वेच्छानुसार रमण करते हैं, वे नाना प्रकारके भयंकर कोल्हू आदिके द्वारा पेरे और पकाये जाते हैं तथा प्रलयकाल-पर्यन्त नरकाग्नियोंमें पकते रहते हैं। परस्त्रीगामी पुरुष उस-उस रूपसे ही व्यभिचार करते हुए मारे-पीटे जाते हैं। पुरुष अपने पहले-जैसे शरीरको धारण करके लोहेकी बनी और खूब तपायी हुई नारीका गाढ़ आलिङ्गन करके सब ओरसे जलते रहते हैं। वे उस दुराचारिणी स्त्रीका गाढ़ आलिङ्गन करते और रोते हैं। जो सत्पुरुषोंकी निन्दा सुनते हैं, उनके कानोंमें लोहे या ताँबे आदिकी बनी हुई कीलें आगसे खूब तपाकर भर दी जाती हैं; इनके सिवा जस्ते, शीशे और पीतलको गलाकर पानीके समान करके उनके कानमें भरा जाता है। फिर बारंबार गरम दूध और खूब तपाया हुआ तेल उनके कानोंमें डाला जाता है। फिर उन कानोंपर वज्रका-सा लेप कर दिया जाता है। इस तरह क्रमशः उनके कानोंको उपर्युक्त वस्तुओंसे भरकर उनको नरकोंमें यातनाएँ दी जाती हैं। क्रमशः सभी नरकोंमें सब ओर ये यातनाएँ प्राप्त होती हैं और सभी नरकोंकी यातनाएँ बड़ा कष्ट देनेवाली होती हैं। जो माता-पिताके प्रति भौंहें टेढ़ी करते अथवा उनकी ओर उद्दण्डतापूर्वक दृष्टि डालते या हाथ उठाते हैं, उनके मुखोंको अन्ततक लोहेकी कीलोंसे दृढ़तापूर्वक भर दिया जाता है। जो मनुष्य लुभाकर स्त्रियोंकी ओर अपलक दृष्टिसे देखते हैं, उनकी आँखोंमें तपाकर आगके समान लाल की हुई सुइयाँ भर दी जाती हैं।

जो देवता, अग्नि, गुरु तथा ब्राह्मणोंको अग्रभाग निवेदन किये बिना ही भोजन कर लेते हैं, उनकी जिह्वा और मुखमें लोहेकी सैकड़ों कीलें तपाकर ठूँस दी जाती हैं। जो लोग धर्मका उपदेश करनेवाले महात्मा कथावाचककी निन्दा करते हैं, देवता, अग्नि और गुरुके भक्तोंकी तथा सनातन धर्मशास्त्रकी भी खिल्लियाँ उड़ाते हैं, उनकी छाती, कण्ठ, जिह्वा, दाँतोंकी संधि, तालु, ओठ, नासिका, मस्तक तथा सम्पूर्ण अङ्गोंकी संधियोंमें आगके समान तपायी हुई तीन शाखावाली लोहेकी कीलें मुद्गरोंसे ठोकी जाती हैं। उस समय उन्हें बहुत कष्ट होता है। तत्पश्चात् सब ओरसे उनके घावोंपर तपाया हुआ नमक छिड़क दिया

जाता है। फिर उस शरीरमें सब ओर बड़ी भारी यातनाएँ होती हैं। जो पापी शिव-मन्दिरके पास अथवा देवताके बगीचोंमें मल-मूत्रका त्याग करते हैं, उनके लिङ्ग और अण्डकोशको लोहेके मुद्गरोंसे चूर-चूर कर दिया जाता है तथा आगसे तपायी हुई सुइयाँ उसमें भर दी जाती हैं, जिससे मन और इन्द्रियोंको महान् दुःख होता है। जो धन रहते हुए भी तृष्णाके कारण उसका दान नहीं करते और भोजनके समय घरपर आये हुए अतिथिका अनादर करते हैं, वे पापका फल पाकर अपवित्र नरकमें गिरते हैं *। जो कुत्तों और गौओंको उनका भाग अर्थात् बलि न देकर स्वयं भोजन कर लेते हैं, उनके खुले हुए मुँहमें दो कीलें ठोक दी जाती हैं। 'यमराजके मार्गका अनुसरण करनेवाले जो श्याम और शबल (साँवले तथा चितकबरे) दो कुत्ते हैं, मैं उनके लिये यह अन्नका भाग देता हूँ, वे इस बलिको ग्रहण करें।' 'पश्चिम, वायव्य, दक्षिण और नैर्ऋत्य दिशामें रहनेवाले जो पुण्यकर्मा कौए हैं, वे मेरी इस दी हुई बलिको ग्रहण करें†।' इस अभिप्रायके दो मन्त्रोंसे क्रमशः कुत्ते और कौएको बलि देनी चाहिये। जो लोग यत्नपूर्वक भगवान् शंकरकी पूजा करके विधिवत् अग्निमें आहुति दे शिवसम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा बलि समर्पित करते हैं, वे यमराजको नहीं देखते और स्वर्गमें जाते हैं। इसलिये प्रतिदिन बलि देनी चाहिये।

एक चौकोर मण्डप बनाकर उसे गन्ध आदिसे अधिवासित करे। फिर ईशान-कोणमें धन्वन्तरिके लिये और पूर्व दिशामें इन्द्रके लिये बलि दे। दक्षिण दिशामें यमके लिये, पश्चिम दिशामें सुदक्षोमके लिये और दक्षिण दिशामें पितरोंके लिये बलि देकर पुनः पूर्व दिशामें अर्यमाको अन्नका भाग अर्पित करे। द्वारदेशमें धाता और विधाताके लिये बलि निवेदन करे। तदनन्तर कुत्तों, कुत्तोंके स्वामी और पक्षियोंके लिये भूतलपर अन्न डाल दे। देवता, पितर, मनुष्य, प्रेत, भूत, गुह्यक, पक्षी, कृमि और कीट—ये सभी गृहस्थसे अपनी जीविका चलाते हैं। स्वाहाकार, स्वधाकार, वषट्कार तथा हन्तकार—ये धर्ममयी धेनुके चार स्तन हैं। स्वाहाकार नामक स्तनका पान देवता करते हैं, स्वधाका पितर लोग, वषट्कारका दूसरे-दूसरे देवता और भूतेश्वर तथा हन्तकार नामक स्तनका सदा ही मनुष्यगण पान करते हैं। जो मानव श्रद्धापूर्वक इस धर्ममयी धेनुका सदा ठीक समयपर पालन करता है, वह अग्निहोत्री हो जाता है। जो स्वस्थ रहते हुए भी उसका त्याग कर देता है, वह अन्धकार-पूर्ण नरकमें डूबता है। इसलिये उन सबको बलि देनेके पश्चात् द्वारपर खड़ा हो क्षणभर

---

* धने सत्यपि ये दानं न प्रयच्छन्ति तृष्णया ॥
अतिथिं चावमन्यन्ते काले प्राप्ते गृहाश्रमे । तस्मात् ते दुष्कृतं प्राप्य गच्छन्ति निरयेऽशुचौ ॥
(शि० पु० उ० सं० १० । ३१-३२)

† द्वौ श्वानौ श्यामशबलौ यममार्गानुरोधकौ । तौ ताभ्यां प्रयच्छामि तौ गृह्णीतामिमं बलिम् ॥
ऐन्द्रवारुणवायव्या याम्या नैर्ऋत्यकास्तथा । वायसाः पुण्यकर्माणस्ते प्रगृह्णन्तु मे बलिम् ॥
(शि० पु० उ० सं० १० । ३५-३६)

अतिथिकी प्रतीक्षा करे। यदि कोई भूखसे पीड़ित अतिथि या उसी गाँवका निवासी पुरुष मिल जाय तो उसे अपने भोजनसे पहले यथाशक्ति शुभ अन्नका भोजन कराये। जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौटता है, उसे वह अपना पाप दे बदलेमें उसका पुण्य लेकर चला जाता है*।

(अध्याय ९-१०)

☆

यमलोकके मार्गमें सुविधा प्रदान करनेवाले विविध दानोंका वर्णन

व्यासजी बोले—प्रभो! पापी मनुष्य बड़े दुःखसे यमलोकके मार्गमें जाते हैं। अब आप मुझे उन धर्मोंका परिचय दीजिये, जिनसे जीव सुखपूर्वक यममार्गपर यात्रा करते हैं।

सनत्कुमारजीने कहा—मुने! अपना किया हुआ शुभाशुभ कर्म बिना विचारे विवश होकर भोगना पड़ता है। अब मैं उन धर्मोंका वर्णन करता हूँ, जो सुख देनेवाले हैं। इस लोकमें जो श्रेष्ठ कर्म करनेवाले, कोमलचित्त और दयालु पुरुष हैं, वे भयंकर यममार्गपर सुखसे यात्रा करते हैं। जो श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको जूता और खड़ाऊँ दान करता है, वह मनुष्य विशाल घोड़ेपर सवार हो बड़े सुखसे यमलोकको जाता है। छत्र दान करनेसे मनुष्य उस मार्गपर उसी तरह छाता लगाकर चलते हैं, जैसे यहाँ छातेवाले लोग चलते हैं। शिबिकाका दान करनेसे मनुष्य रथके द्वारा सुखसे यात्रा करते हैं। शय्या और आसनका दान करनेसे दाता यमलोकके मार्गमें विश्राम करते हुए सुखपूर्वक जाता है। जो बगीचे लगाते और छायादार वृक्षका आरोपण करते हैं अथवा सड़कके किनारे वृक्षारोपण करते हैं, वे धूपमें भी बिना कष्ट उठाये यमलोकको जाते हैं। जो मनुष्य फुलवाड़ी लगाते हैं, वे पुष्पक विमानसे यात्रा करते हैं। देवमन्दिर बनानेवाले उस मार्गपर घरके भीतर क्रीड़ा करते हैं। जो यतियोंके आश्रमका निर्माण कराते हैं और अनाथोंके लिये घर बनवाते हैं, वे भी घरके भीतर क्रीड़ा करते हैं। जो देवता, अग्नि, गुरु, ब्राह्मण, माता और पिताकी पूजा करते हैं, वे मनुष्य स्वयं ही पूजित हो अपनी इच्छाके अनुकूल मार्गद्वारा सुखसे यात्रा करते हैं। दीपदान करनेवाले मनुष्य सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते हुए जाते हैं। गृहदान करनेसे दाता रोग-शोकसे रहित हो सुखपूर्वक यात्रा करते हैं। गुरुजनोंकी सेवा करनेवाले मानव विश्राम करते हुए जाते हैं। बाजा देनेवाले उसी तरह सुखसे यात्रा करते हैं, मानो अपने घर जा रहे हों। गोदान करनेवाले लोग सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तुओंसे भरे-पूरे मार्गद्वारा जाते हैं। मनुष्य उस मार्गपर इस लोकमें दिये हुए अन्न-पानको ही पाता है। जो किसीको पैर धोनेके लिये जल देता है, वह ऐसे मार्गसे जाता है, जहाँ जलकी सुविधा हो। जो आदरणीय पुरुषोंके पैरोंमें उबटन लगाता है,

---

* अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रति निवर्तते। स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति॥

(शि० पु० उ० सं० १० । ४८)

वह घोड़ेकी पीठपर बैठकर यात्रा करता है।

व्यासजी! जो पाद्य, अभ्यङ्ग (अङ्गराग), दीपक, अन्न और घर दान करता है, उसके पास यमराज कभी नहीं जाते। सुवर्ण और रत्नका दान करनेसे मनुष्य दुर्गम संकटों और स्थानोंको लाँघता हुआ जाता है। चाँदी, गाड़ी ढोनेवाले बैल और फूलोंकी माला दान करनेसे दाता सुखपूर्वक यमलोकमें जाता है। इस तरहके दानोंसे मनुष्य सुखपूर्वक यमलोककी यात्रा करते हैं और स्वर्गमें सदा भाँति-भाँतिके भोग पाते हैं। सब दानोंमें अन्नदानको ही उत्तम बताया गया है; क्योंकि यह तत्काल तृप्ति प्रदान करनेवाला, मनको प्रिय लगनेवाला तथा बल और बुद्धिको बढ़ानेवाला है। मुनिश्रेष्ठ! अन्नदानके समान दूसरा कोई दान नहीं है; क्योंकि अन्नसे ही प्राणी उत्पन्न होते हैं और अन्नके अभावमें मर जाते हैं। अतएव अन्नदानसे महान् पुण्य बताया गया है; क्योंकि अन्नके बिना भूखकी आगसे तप्त हुए समस्त प्राणी मर जाते हैं। अतः अन्नकी ही सब लोग प्रशंसा करते हैं; क्योंकि अन्नमें ही सब कुछ प्रतिष्ठित है। अन्नके समान दान न तो हुआ है और न होगा। मुने! यह सम्पूर्ण जगत् अन्नसे ही धारण किया जाता है। लोकमें अन्नको बलकारक बताया गया है; क्योंकि अन्नमें ही प्राण प्रतिष्ठित हैं।*

प्राप्त हुए अन्नकी कभी निन्दा न करे और न किसी तरह उसे फेंके ही। कुत्ते और चाण्डालके लिये भी किया हुआ अन्नदान कभी नष्ट नहीं होता। जो मनुष्य थके-माँदे और अपरिचित पथिकको अन्न देता है और देते समय कष्टका अनुभव नहीं करता, वह समृद्धिका भागी होता है। महामुने! जो देवताओं, पितरों, ब्राह्मणों और अतिथियोंको अन्नसे तृप्त करता है, उसे महान् पुण्यफलकी प्राप्ति होती है। अन्न और जलका दान शूद्र और ब्राह्मणके लिये भी समानरूपसे महत्त्व रखता है। अन्नकी इच्छावाले पुरुषसे उसका गोत्र, शाखा, स्वाध्याय और देश नहीं पूछना चाहिये।

अन्न साक्षात् ब्रह्मा है, अन्न साक्षात् विष्णु और शिव है। इसलिये अन्नके समान दान न हुआ है और न होगा! जो पहले बड़ा भारी पाप करके भी पीछे अन्नका दान करनेवाला हो जाता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर स्वर्गलोकमें जाता है। अन्न, जल, घोड़ा, गौ, वस्त्र, शय्या, छत्र और आसन—इन आठ वस्तुओंके दान यमलोकके लिये उत्तम माने गये हैं। इस प्रकार दान-विशेषसे मनुष्य विमानपर बैठकर धर्मराजके नगरमें जाता है; इसलिये सबको दान करना

---

* सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम्। सद्यः प्रीतिकरं हृद्यं बलबुद्धिविवर्धनम्॥
नान्नदानसमं दानं विद्यते मुनिसत्तम। अन्नाद्भवन्ति भूतानि तदभावे म्रियन्ति च॥
अतएव महत्पुण्यमन्नदाने प्रकीर्तितम्। तथा क्षुधाग्निना तप्ता म्रियन्ते सर्वदेहिनः॥
अन्नमेव प्रशंसन्ति सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम्। अन्नेन सदृशं दानं न भूतं न भविष्यति॥
अन्नेन धार्यते सर्वं विश्वं जगदिदं मुने। अन्नमूर्जस्करं लोके प्राणा ह्यन्ने प्रतिष्ठिताः॥
(शि० पु० उ० सं० ११। १७-१८, २४, २९-३०)

चाहिये। महामुने! जो इस प्रसङ्गको सुनता अथवा श्राद्धमें ब्राह्मणोंको सुनाता है, उसके पितरोंको अक्षय अन्नदान प्राप्त होता है।

(अध्याय ११)

☆

जलदान, जलाशय-निर्माण, वृक्षारोपण, सत्यभाषण और तपकी महिमा

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! जलदान सबसे श्रेष्ठ है। वह सब दानोंमें सदा उत्तम है; क्योंकि जल सभी जीवसमुदायको तृप्त करनेवाला जीवन कहा गया है *। इसलिये बड़े स्नेहके साथ अनिवार्यरूपसे प्रपादान (पौसला चलाकर दूसरोंको पानी पिलानेका प्रबन्ध) करना चाहिये। जलाशयका निर्माण इस लोक और परलोकमें भी महान् आनन्दकी प्राप्ति करानेवाला होता है—यह सत्य है, सत्य है। इसमें संशय नहीं है। इसलिये मनुष्यको चाहिये कि वह कुआँ, बावड़ी और तालाब बनवाये। कुएँमें जब पानी निकल आता है, तब वह पापी पुरुषके पापकर्मका आधा भाग हर लेता है तथा सत्कर्ममें लगे हुए मनुष्यके सदा समस्त पापोंको हर लेता है। जिसके खुदवाये हुए जलाशयमें गौ, ब्राह्मण तथा साधुपुरुष सदा पानी पीते हैं, वह अपने सारे वंशका उद्धार कर देता है। जिसके जलाशयमें गरमीके मौसममें भी अनिवार्यरूपसे पानी टिका रहता है, वह कभी दुर्गम एवं विषम संकटको नहीं प्राप्त होता। जिसके पोखरेमें केवल वर्षा-ऋतुमें जल ठहरता है, उसे प्रतिदिन अग्निहोत्र करनेका फल मिलता है—ऐसा ब्रह्माजीका कथन है। जिसके तड़ागमें शरत्कालतक जल ठहरता है, उसे सहस्र गोदानका फल मिलता है—इसमें संशय नहीं है। जिसके तालाबमें हेमन्त और शिशिर-ऋतुतक पानी मौजूद रहता है, वह बहुत-सी सुवर्ण-मुद्राओंकी दक्षिणासे युक्त यज्ञका फल पाता है। जिसके सरोवरमें वसन्त और ग्रीष्मकालतक पानी बना रहता है, उसे अतिरात्र और अश्वमेध यज्ञोंका फल मिलता है—ऐसा मनीषी महात्माओंका कथन है।

मुनिवर व्यास! जीवोंको तृप्ति प्रदान करनेवाले जलाशयके उत्तम फलका वर्णन किया गया। अब वृक्ष लगानेमें जो गुण हैं, उनका वर्णन सुनो। जो वीरान एवं दुर्गम स्थानोंमें वृक्ष लगाता है, वह अपनी बीती तथा आनेवाली सम्पूर्ण पीढ़ियोंको तार देता है। इसलिये वृक्ष अवश्य लगाना चाहिये †। ये वृक्ष लगानेवालेके पुत्र होते हैं, इसमें संशय नहीं है। वृक्ष लगानेवाला पुरुष परलोकमें जानेपर अक्षय लोकोंको पाता है। पोखरा खुदानेवाला, वृक्ष लगानेवाला और यज्ञ करानेवाला जो द्विज है, वह तथा दूसरे-दूसरे सत्यवादी पुरुष—ये स्वर्गसे

---

* पानीयदानं परमं दानानामुत्तमं सदा। सर्वेषां जीवपुञ्जानां तर्पणं जीवनं स्मृतम्॥

(शि० पु० उ० सं० १२।१)

† अतीतानागतान् सर्वान् पितृवंशांस्तु तारयेत्। कान्तारे वृक्षरोपी यस्तस्माद् वृक्षांस्तु रोपयेत्॥

(शि० पु० उ० सं० १२।१७)

कभी नीचे नहीं गिरते।

सत्य ही परब्रह्म है, सत्य ही परम तप है, सत्य ही श्रेष्ठ यज्ञ है और सत्य ही उत्कृष्ट शास्त्रज्ञान है। सोये हुए पुरुषोंमें सत्य ही जागता है, सत्य ही परमपद है, सत्यसे ही पृथ्वी टिकी हुई है और सत्यमें ही सब कुछ प्रतिष्ठित है। तप, यज्ञ, पुण्य, देवता, ऋषि और पितरोंका पूजन, जल और विद्या—ये सब सत्यपर ही अवलम्बित हैं। सबका आधार सत्य ही है। सत्य ही यज्ञ, तप, दान, मन्त्र, सरस्वतीदेवी तथा ब्रह्मचर्य है। ओंकार भी सत्यरूप ही है। सत्यसे ही वायु चलती है, सत्यसे ही सूर्य तपता है, सत्यसे ही आग जलाती है और सत्यसे ही स्वर्ग टिका हुआ है। लोकमें सम्पूर्ण वेदोंका पालन तथा सम्पूर्ण तीर्थोंका स्नान केवल सत्यसे सुलभ हो जाता है। सत्यसे सब कुछ प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं है। एक सहस्र अश्वमेध और लाखों यज्ञ एक ओर तराजूपर रखे जायँ और दूसरी ओर सत्य हो तो सत्यका ही पलड़ा भारी होगा। देवता, पितर, मनुष्य, नाग, राक्षस तथा चराचर प्राणियोंसहित समस्त लोक सत्यसे ही प्रसन्न होते हैं। सत्यको परम धर्म कहा गया है। सत्यको ही परमपद बताया गया है और सत्यको ही परब्रह्म परमात्मा कहते हैं। इसलिये सदा सत्य बोलना चाहिये *। सत्यपरायण मुनि अत्यन्त दुष्कर तप करके स्वर्गको प्राप्त हुए हैं तथा सत्यधर्ममें अनुरक्त रहनेवाले सिद्ध पुरुष भी सत्यसे ही स्वर्गके निवासी हुए हैं। अतः सदा सत्य बोलना चाहिये। सत्यसे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। सत्यरूपी तीर्थ अगाध, विशाल, सिद्ध एवं पवित्र जलाशय है। उसमें योगयुक्त होकर मनके द्वारा स्नान करना चाहिये। सत्यको परमपद कहा गया है। जो मनुष्य अपने लिये, दूसरेके लिये अथवा अपने बेटेके लिये भी झूठ नहीं बोलते वे ही स्वर्गगामी होते हैं। वेद, यज्ञ तथा मन्त्र—ये ब्राह्मणोंमें सदा निवास करते हैं; परंतु असत्यवादी ब्राह्मणोंमें इनकी प्रतीति नहीं होती। अतः सदा सत्य बोलना चाहिये।

तदनन्तर तपकी बड़ी भारी महिमा बताते हुए सनत्कुमारजीने कहा—मुने! संसारमें ऐसा कोई सुख नहीं है जो तपस्याके बिना सुलभ होता हो। तपसे ही सारा सुख मिलता

---

* सत्यमेव परं ब्रह्म सत्यमेव परं तपः। सत्यमेव परो यज्ञः सत्यमेव परं श्रुतम्॥
सत्यं सुप्तेषु जागर्ति सत्यं च परमं पदम्। सत्येनैव धृता पृथ्वी सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम्॥
तपो यज्ञश्च पुण्यं च देवर्षिपितृपूजने। आपो विद्या च ते सर्वे सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्॥
सत्यं यज्ञस्तपो दानं मन्त्रा देवी सरस्वती। ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमोंकारः सत्यमेव च॥
सत्येन वायुरभ्येति सत्येन तपते रविः। सत्येनाग्निर्दहति स्वर्गः सत्येन तिष्ठति॥
पालनं सर्ववेदानां सर्वतीर्थावगाहनम्। सत्येन वहते लोके सर्वमाप्नोत्यसंशयम्॥
अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम्। लक्षाणि क्रतवश्चैव सत्यमेव विशिष्यते॥
सत्येन देवाः पितरो मानवोरगराक्षसाः। प्रीयन्ते सत्यतः सर्वे लोकाश्च सचराचराः॥
सत्यमाहुः परं धर्मं सत्यमाहुः परं पदम्। सत्यमाहुः परं ब्रह्म तस्मात्सत्यं सदा वदेत्॥
(शि० पु० उ० सं० १२।२३—३१)

है, इस बातको वेदवेत्ता पुरुष जानते हैं। ज्ञान, विज्ञान, आरोग्य, सुन्दर रूप, सौभाग्य तथा शाश्वत सुख तपसे ही प्राप्त होते हैं। तपस्यासे ही ब्रह्मा बिना परिश्रमके ही सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करते हैं। तपस्यासे ही विष्णु इसका पालन करते हैं। तपस्याके बलसे ही रुद्रदेव संहार करते हैं तथा तपके प्रभावसे ही शेष अशेष भूमण्डलको धारण करते हैं। (अध्याय १२)

☆

वेद और पुराणोंके स्वाध्याय तथा विविध प्रकारके दानकी महिमा, नरकोंका वर्णन तथा उनमें गिरानेवाले पापोंका दिग्दर्शन, पापोंके लिये सर्वोत्तम प्रायश्चित्त शिवस्मरण तथा ज्ञानके महत्त्वका प्रतिपादन

सनत्कुमारजी कहते हैं— मुने! जो वनमें जंगली फल-मूल खाकर तप करता है और जो वेदकी एक ऋचाका स्वाध्याय करता है, इन दोनोंका फल समान है। श्रेष्ठ द्विज वेदाध्ययनसे जिस पुण्यको पाता है, उससे दूना फल वह उस वेदको पढ़ानेसे पाता है। मुने! जैसे चन्द्रमा और सूर्यके बिना जगत्‌में अन्धकार छा जाता है, उसी प्रकार पुराणके बिना ज्ञानका आलोक नहीं रह जाता है—अज्ञानका अन्धकार छाया रहता है। इसलिये सदा पुराणका अध्ययन करना चाहिये। अज्ञानके कारण नरकमें पड़कर सदा संतप्त होनेवाले लोकको जो शास्त्रका ज्ञान देकर समझाता है, वह पुराणवक्ता अपनी इसी महत्ताके कारण सदा पूजनीय है। जो साधु पुरुष पुराणवक्ता विद्वान्‌को दानका पात्र समझकर बड़ी प्रसन्नताके साथ उसे उत्तमोत्तम वस्तुएँ देता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। जो सुपात्र ब्राह्मणको भूमि, गौ, रथ, हाथी और सुन्दर घोड़े देता है, उसके पुण्यफलका वर्णन सुनो। वह इस जन्ममें और परलोकमें भी सम्पूर्ण अक्षय मनोरथोंको पा लेता है तथा अश्वमेधयज्ञके फलका भी भागी होता है।

मुनीश्वर! जो पुरुष भगवान् शिवकी कथा सुनता है, वह कर्मोंके विशाल वनको जलाकर संसारसे तर जाता है। जो दो घड़ी, एक घड़ी अथवा एक क्षण भी भक्तिभावसे भगवान् शिवकी कथा सुनते हैं, उनकी कभी दुर्गति नहीं होती। मुने! सम्पूर्ण दानों अथवा सम्पूर्ण यज्ञोंमें जो पुण्य होता है, वही फल शिवपुराण सुननेसे अविचलरूपमें प्राप्त हो जाता है। व्यासजी! विशेषतः कलियुगमें पुराणश्रवणके सिवा मनुष्योंके लिये दूसरा कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं है। वही उनके लिये मोक्ष एवं ध्यानरूपी फल देनेवाला बताया गया है। शिवपुराणका श्रवण और शिव-नामका कीर्तन मनुष्योंके लिये कल्पवृक्षका रमणीय फल है, इसमें संशय नहीं है। यज्ञ, दान, तप और तीर्थसेवनसे जो फल मिलता है, उसीको मनुष्य पुराणोंके श्रवणमात्रसे पा लेता है।

प्रतिदिन सुपात्र लोगोंको बड़े-बड़े दान देने चाहिये, वे दान दाताके उद्धारक होते हैं। विप्रवर! सुवर्णदान, गोदान और भूमिदान—ये पवित्र दान हैं, जो दाताको

तो तारते ही हैं, लेनेवालोंका भी उद्धार कर देते हैं। सुवर्णदान, गोदान और पृथ्वीदान—इन श्रेष्ठ दानोंको करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। तुलादानकी बड़ी प्रशंसा की गयी है, गौ और पृथ्वीके दान भी प्रशस्त एवं समान शक्तिवाले हैं। परंतु सरस्वतीका दान इन सबसे अधिक उत्तम है। नित्य दुही जानेवाली गाय, छाता, वस्त्र, जूता तथा अन्न और जल—ये सब वस्तुएँ याचकोंको देनी चाहिये। ब्राह्मणोंको तथा अपीड़ित याचकोंको जो संकल्पपूर्वक धनादि वस्तुओंका दान किया जाता है, उससे दाता मनस्वी होता है। लोकमें जो-जो अत्यन्त अभीष्ट और प्रिय है, वह यदि घरमें हो तो उसे अक्षय बनानेकी इच्छावाले पुरुषको गुणवान् पुरुषको दान करना चाहिये। तुला-पुरुषका दान सब दानोंमें उत्तम है। जो अपने लिये कल्याण चाहे, उसे तराजूपर बैठना और अपने शरीरसे तौली गयी वस्तुका दान करना चाहिये। दिनमें, रातमें, दोनों संध्याओंके समय, दोपहरमें, आधी रातके समय तथा भूत, वर्तमान और भविष्य—तीनों कालोंमें मन, वाणी और शरीरद्वारा किये गये सारे पापोंको तुला-पुरुषका दान दूर कर देता है।

इसके बाद ब्रह्माण्डदानका माहात्म्य एवं ब्रह्माण्डका वर्णन करके सनत्कुमारजीने कहा—मुनिवरोंमें श्रेष्ठ व्यास! पाताललोकसे ऊपर जो नरक हैं, उनका वर्णन मुझसे सुनो; पापी पुरुष उन्हींमें यातनाएँ भोगते हैं। रौरव, शूकर, रोध, ताल, विवसन या विशसन, महाज्वाल, तप्तकुम्भ, लवण, विलोहित, पूय वहानेवाली वैतरणी, कृमि या कृमीश, कृमिभोजन, कृष्ण, असिपत्रवन, दारुण लालाभक्ष, पूयवह, पाप, वह्निज्वाल, अधःशिरा, संदंश, कालसूत्र, तमस, अवीचि, रोधन, क्षुभोजन, अप्रतिष्ठ, महारौरव और शाल्मलि इत्यादि बहुत-से दुःखदायक नरक वहाँ हैं। व्यासजी! उनमें जो पापकर्म-परायण पुरुष पकाये जाते हैं, उनका क्रमशः वर्णन करता हूँ; सावधान होकर सुनो। जो मनुष्य ब्राह्मणों, देवताओं तथा गौओंके लिये हितकर कार्योंके सिवा अन्य किसी कार्यके लिये झूठी गवाही देता है अथवा सदा झूठ बोलता है, वह रौरव नरकमें जाता है।

जो भ्रूण (गर्भस्थ शिशु) की हत्या और सुवर्णकी चोरी करनेवाला, गायको कटघरेमें बंद करनेवाला, विश्वासघाती, शराबी, ब्रह्महत्यारा, दूसरोंके द्रव्यका अपहरण करनेवाला तथा इन सबका संगी है, वह मरनेपर तप्तकुम्भ नामक नरकमें जाता है। गुरुके वधसे भी इसी नरककी प्राप्ति होती है। बहिन, माता, गौ तथा पुत्रीका वध करनेसे भी तप्तकुम्भमें ही गिरना पड़ता है। साध्वी स्त्रीको बेचनेवाला, अधिक ब्याज लेनेवाला, केश-विक्रय करनेवाला तथा अपने भक्तको त्यागनेवाला—ये सब पापी तप्तलोह नामक नरकमें पकाये जाते हैं। जो नराधम गुरुजनोंका अपमान करनेवाला तथा उनके प्रति दुर्वचन बोलनेवाला है और जो वेदकी निन्दा करनेवाला, वेद बेचनेवाला तथा अगम्या स्त्रीसे सम्भोग करनेवाला है, वे सब-के-सब लवण नामक नरकमें जाते हैं। चोर विलोहित नामक नरकमें गिरता है। मर्यादाको दूषित करनेवाले पुरुषकी भी ऐसी

ही गति होती है। जो पुरुष देवता, ब्राह्मण और पितृगणसे द्वेष करनेवाला है तथा जो रत्नको दूषित (उसमें मिलावट) करता है, वह कृमिभक्ष नामक नरकमें पड़ता है। जो दूषित यज्ञ (दूसरोंको हानि पहुँचानेके लिये आभिचारिक प्रयोग या हिंसाप्रधान तामस यज्ञ) करता है, वह कृमीश नामक नरकमें पड़ता है। जो नराधम पितृगण, देवगण और अतिथियोंको छोड़कर (बलिवैश्वदेवके द्वारा देवता आदिका भाग उन्हें अर्पण किये बिना ही) भोजन कर लेता है, वह उग्र लालाभक्ष नरकमें गिरता है। जो शस्त्र-समूहोंका निर्माण करता है, वह भी उसीमें जाता है। जो द्विज अन्त्यजसे सेवा लेता है, असत् दान ग्रहण करता है, यज्ञके अनधिकारियोंसे यज्ञ कराता है और अभक्ष्य-भक्षण करता है, ये सब-के-सब रुधिरौघ (पूयवह) नामक नरकमें गिरते हैं। जो सोमरसको बेचनेवाले हैं, उनकी भी यही गति होती है। यज्ञ और ग्रामको नष्ट करनेवाला घोर वैतरणी नदीमें पड़ता है।

जो नयी जवानीसे मतवाले हो धर्मकी मर्यादाको तोड़ते हैं, अपवित्र आचार-विचारसे रहते हैं और छल-कपटसे जीविका चलाते हैं, वे कृत्य नामक नरकमें जाते हैं। जो अकारण ही वृक्षोंको काटता है, वह असिपत्रवन नामक नरकमें जाता है। भेड़ोंको बेचकर जीविका चलानेवाले तथा पशुओंकी हिंसा करनेवाले कसाई वह्निज्वाल नामक नरकमें गिरते हैं। भ्रष्टाचारी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तथा जो कच्चे खपड़ों अथवा ईंट आदिको पकानेके लिये पजावेमें आग देता है, वे सब उसी वह्निज्वाल नरकमें गिरते हैं। जो व्रतोंका लोप करनेवाले तथा अपने आश्रमसे गिरे हुए हैं, वे दोनों ही प्रकारके पुरुष अत्यन्त दारुण संदंश नामक नरककी यातनामें पड़ते हैं। जो ब्रह्मचारी होकर भी स्वप्नमें वीर्यस्खलन करते हैं तथा जो पुत्रोंसे विद्या पढ़ते हैं, वे क्षभोजन नामक नरकमें गिरते हैं। इस तरह ये तथा और भी सैकड़ों, हजारों नरक हैं, जिनमें पापकर्मी प्राणी यातनाओंकी आगमें डालकर पकाये जाते हैं। इन उपर्युक्त पापोंके समान और भी सहस्रों पापकर्म हैं, जिन्हें नरकोंमें पड़कर मनुष्य भोगा करते हैं। जो लोग मन, वाणी और क्रियाद्वारा अपने वर्ण और आश्रमके विरुद्ध कर्म करते हैं, वे नरकमें गिरते हैं। नरकमें सिर नीचे करके लटकाये गये प्राणी स्वर्गलोकमें रहनेवाले देवताओंको देखा करते हैं और देवतालोग भी नीचे दृष्टि डालनेपर उन सभी अधोमुख नारकी जीवोंको देखते हैं। पापीलोग नरक-भोगके अनन्तर क्रमशः उन्नति करते हुए स्थावर, कृमि, जलचर, पक्षी, पशु, मनुष्य, धर्मात्मा मानव-देवता तथा मुमुक्षु होते और अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। जितने जीव स्वर्गमें हैं, उतने ही नरकमें हैं। जो पापी पुरुष अपने पापका प्रायश्चित्त नहीं करता वही नरकमें जाता है।

कालीनन्दन! स्वायम्भु मनुने महान् पापोंके लिये महान् और लघु पापोंके लिये लघु प्रायश्चित्त बताये हैं। उन अशेष पापकर्मोंके लिये जो-जो प्रायश्चित्त-सम्बन्धी कर्म बताये गये हैं, उन सबमें भगवान् शंकरका स्मरण ही सर्वश्रेष्ठ प्रायश्चित्त है। जिस पुरुषके चित्तमें पापकर्म करनेके अनन्तर पश्चात्ताप होता है, उसके लिये तो

एकमात्र भगवान् शिवका स्मरण ही सर्वोत्तम प्रायश्चित्त है। प्रातःकाल, सायंकाल, रातमें तथा मध्याह्न आदिमें भगवान् शिवका स्मरण करनेसे पापरहित हुआ मनुष्य माहेश्वर धामको प्राप्त कर लेता है। भगवान् शिवके स्मरणसे समस्त पापों और क्लेशोंका क्षय हो जानेसे मनुष्य स्वर्ग अथवा मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जिसका चित्त जप, होम और पूजा आदि करते समय निरन्तर भगवान् महेश्वरमें ही लगा रहता हो उसके लिये इन्द्र आदि पदकी प्राप्तिरूप फल तो अन्तराय (विघ्न) ही है। मुने ! जो पुरुष भक्तिभावसे दिन-रात भगवान् शिवका स्मरण करता है, उसके सारे पातक नष्ट हो जाते हैं। इसलिये वह कभी नरकमें नहीं पड़ता। नरक और स्वर्ग—ये पाप और पुण्यके ही दूसरे नाम हैं। इनमेंसे एक तो दुःख देनेवाला है और दूसरा सुख देनेवाला। जब एक ही वस्तु कभी प्रीति प्रदान करनेवाली होती है और कभी दुःख देनेवाली बन जाती है, तब यह निश्चय होता है कि कोई भी पदार्थ न तो दुःखमय है और न सुखमय ही है। ये सुख-दुःख तो मनके ही विकार हैं। ज्ञान ही परब्रह्म है और ज्ञान ही तात्त्विक बोधका कारण है। यह सारा चराचर विश्व ज्ञानमय ही है। उस परम विज्ञानसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु नहीं है।

(अध्याय १३—१६)

☆

मृत्युकाल निकट आनेके कौन-कौनसे लक्षण हैं, इसका वर्णन

इसके पश्चात् द्वीपों, लोकों और मनुओंका परिचय देकर संग्रामके फल, शरीर एवं स्त्री-स्वभाव आदिका वर्णन किया गया। तदनन्तर कालके विषयमें व्यासजीके पूछनेपर सनत्कुमारजीने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! पूर्वकालमें पार्वतीजीने नाना प्रकारकी दिव्य कथाएँ सुनकर परमेश्वर शिवको प्रणाम करके उनसे यही बात पूछी थी।

पार्वती बोलीं—भगवन् ! मैंने आपकी कृपासे सम्पूर्ण मत जान लिया। देव ! जिन मन्त्रोंद्वारा जिस विधिसे जिस प्रकार आपकी पूजा होती है, वह भी मुझे ज्ञात हो गया। किंतु प्रभो ! अब भी एक संशय रह गया है। वह संशय है कालचक्रके सम्बन्धमें। देव ! मृत्युका क्या चिह्न है ? आयुका क्या प्रमाण है ? नाथ ! यदि मैं आपकी प्रिया हूँ तो मुझे ये सब बातें बताइये।

महादेवजीने कहा—प्रिये ! यदि अकस्मात् शरीर सब ओरसे सफेद या पीला

पड़ जाय और ऊपरसे कुछ लाल दीखे तो यह जानना चाहिये कि उस मनुष्यकी मृत्यु छः महीनेके भीतर हो जायगी। शिवे ! जब मुँह, कान, नेत्र और जिह्वाका स्तम्भन हो जाय, तब भी छः महीनेके भीतर ही मृत्यु जाननी चाहिये। भद्रे ! जो रुरु मृगके पीछे होनेवाली शिकारियोंकी भयानक आवाजको भी जल्दी नहीं सुनता, उसकी मृत्यु भी छः महीनेके भीतर ही जाननी चाहिये। जब सूर्य, चन्द्रमा या अग्निके सांनिध्यसे प्रकट होनेवाले प्रकाशको मनुष्य नहीं देखता, उसे सब कुछ काला-काला— अन्धकाराच्छन्न ही दिखायी देता है, तब उसका जीवन छः माससे अधिक नहीं होता। देवि ! प्रिये ! जब मनुष्यका बायाँ हाथ लगातार एक सप्ताहतक फड़कता ही रहे, तब उसका जीवन एक मास ही शेष है—ऐसा जानना चाहिये। इसमें संशय नहीं है। जब सारे अङ्गोंमें अँगड़ाई आने लगे और तालु सूख जाय, तब वह मनुष्य एक मासतक ही जीवित रहता है—इसमें संशय नहीं है। त्रिदोषमें जिसकी नाक बहने लगे, उसका जीवन पंद्रह दिनसे अधिक नहीं चलता। मुँह और कण्ठ सूखने लगे तो यह जानना चाहिये कि छः महीने बीतते-बीतते इसकी आयु समाप्त हो जायगी। भामिनि ! जिसकी जीभ फूल जाय और दाँतोंसे मवाद निकलने लगे, उसकी भी छः महीनेके भीतर ही मृत्यु हो जाती है। इन चिह्नोंसे मृत्युकालको समझना चाहिये। सुन्दरि ! जल, तेल, घी तथा दर्पणमें भी जब अपनी परछाईं न दिखायी दे या विकृत दिखायी दे, तब कालचक्रके ज्ञाता पुरुषको यह जान लेना चाहिये कि उसकी भी आयु छः माससे अधिक शेष नहीं है। देवेश्वरि ! अब दूसरी बात सुनो, जिससे मृत्युका ज्ञान होता है। जब अपनी छायाको सिरसे रहित देखे अथवा अपनेको छायासे रहित पाये, तब वह मनुष्य एक मास भी जीवित नहीं रहता।

पार्वती ! ये मैंने अङ्गोंमें प्रकट होनेवाले मृत्युके लक्षण बताये हैं। भद्रे ! अब बाहर प्रकट होनेवाले लक्षणोंका वर्णन करता हूँ, सुनो ! देवि ! जब चन्द्रमण्डल या सूर्यमण्डल प्रभाहीन एवं लाल दिखायी दे, तब आधे मासमें ही मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है। अरुन्धती, महायान, चन्द्रमा—इन्हें जो न देख सके अथवा जिसे ताराओंका दर्शन न हो, ऐसा पुरुष एक मासतक जीवित रहता है। यदि ग्रहोंका दर्शन होनेपर भी दिशाओंका ज्ञान न हो—मनपर मूढ़ता छायी रहे तो छः महीनेमें निश्चय ही मृत्यु हो जाती है। यदि उलथ्य नामक ताराका, ध्रुवका अथवा सूर्यमण्डलका भी दर्शन न हो सके, रातमें इन्द्रधनुष और मध्याह्नमें उल्कापात होता दिखायी दे तथा गीध और कौवे घेरे रहें तो उस मनुष्यकी आयु छः महीनेसे अधिककी नहीं है। यदि आकाशमें सप्तर्षि तथा स्वर्गमार्ग (छायापथ) न दिखायी दे तो कालज्ञ पुरुषोंको उस पुरुषकी आयु छः मास ही शेष समझनी चाहिये। जो अकस्मात् सूर्य और चन्द्रमाको राहुसे ग्रस्त देखता है और सम्पूर्ण दिशाएँ जिसे घूमती दिखायी देती हैं, वह अवश्य ही छः महीनेमें मर जाता है। यदि अकस्मात् नीली मक्खियाँ आकर पुरुषको घेर लें तो वास्तवमें उसकी आयु एक मास ही शेष जाननी चाहिये। यदि गीध, कौवा अथवा कबूतर सिरपर चढ़ जाय तो वह पुरुष शीघ्र ही एक मासके भीतर ही मर जाता है, इसमें संशय नहीं है। (अध्याय १७—२५)

कालको जीतनेका उपाय, नवधा शब्दब्रह्म एवं तुंकारके अनुसंधान और उससे प्राप्त होनेवाली सिद्धियोंका वर्णन

देवी पार्वतीने कहा—प्रभो ! कालसे आकाशका भी नाश होता है। वह भयंकर काल बड़ा विकराल है। वह स्वर्गका भी एकमात्र स्वामी है। आपने उसे दग्ध कर दिया था, परंतु अनेक प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा जब उसने आपकी स्तुति की, तब आप फिर संतुष्ट हो गये और वह काल पुनः अपनी प्रकृतिको प्राप्त हुआ—पूर्णतः स्वस्थ हो गया। आपने उससे बातचीतमें कहा—'काल ! तुम सर्वत्र विचरोगे, किन्तु लोग तुम्हें देख नहीं सकेंगे।' आप प्रभुकी कृपादृष्टि होने और वर मिलनेसे वह काल जी उठा तथा उसका प्रभाव बहुत बढ़ गया। अतः महेश्वर ! क्या यहाँ ऐसा कोई साधन है, जिससे उस कालको नष्ट किया जा सके ? यदि हो तो मुझे बताइये; क्योंकि आप योगियोंमें शिरोमणि और स्वतन्त्र प्रभु हैं। आप परोपकारके लिये ही शरीर धारण करते हैं।

शिव बोले—देवि ! श्रेष्ठ देवता, दैत्य, यक्ष, राक्षस, नाग और मनुष्य—किसीके द्वारा भी कालका नाश नहीं किया जा सकता; परंतु जो ध्यान-परायण योगी हैं, वे शरीरधारी होनेपर भी सुखपूर्वक कालको नष्ट कर देते हैं। वरारोहे ! यह पाञ्चभौतिक शरीर सदा उन भूतोंके गुणोंसे युक्त ही उत्पन्न होता है और उन्हींमें इसका लय होता है। मिट्टीकी देह मिट्टीमें ही मिल जाती है। आकाशसे वायु उत्पन्न होती है, वायुसे तेजस्तत्त्व प्रकट होता है, तेजसे जलका प्राकट्य बताया गया है। और जलसे पृथ्वीका आविर्भाव होता है। पृथ्वी आदि भूत क्रमशः अपने कारणमें लीन होते हैं। पृथ्वीके पाँच, जलके चार, तेजके तीन और वायुके दो गुण होते हैं। आकाशका एकमात्र शब्द ही गुण है। पृथ्वी आदिमें जो गुण बताये गये हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। जब भूत अपने गुणको त्याग देता है, तब नष्ट हो जाता है और जब गुणको ग्रहण करता है, तब उसका प्रादुर्भाव हुआ बताया जाता है। देवेश्वरि ! इस प्रकार तुम पाँचों भूतोंके यथार्थ स्वरूपको समझो। देवि ! इस कारण कालको जीतनेकी इच्छावाले योगीको चाहिये कि वह प्रतिदिन प्रयत्नपूर्वक अपने-अपने कालमें उसके अंशभूत गुणोंका चिन्तन करे।

योगवेत्ता पुरुषको चाहिये कि सुखद आसनपर बैठकर विशुद्ध श्वास (प्राणायाम) द्वारा योगाभ्यास करे। रातमें जब सब लोग सो जायँ, उस समय दीपक बुझाकर अन्धकारमें योग धारण करे। तर्जनी अँगुलीसे दोनों कानोंको बंद करके दो घड़ीतक दबाये रखे। उस अवस्थामें अग्निप्रेरित शब्द सुनायी देता है। इससे संध्याके बादका खाया हुआ अन्न क्षणभरमें पच जाता है और सम्पूर्ण रोगों तथा ज्वर आदि बहुत-से उपद्रवोंका शीघ्र नाश कर देता है। जो साधक प्रतिदिन इसी प्रकार दो घड़ीतक शब्दब्रह्मका साक्षात्कार करता है, वह मृत्यु तथा कामको जीतकर इस जगत्‌में स्वच्छन्द विचरता है और सर्वज्ञ एवं समदर्शी

होकर सम्पूर्ण सिद्धियोंको प्राप्त कर लेता है। जैसे आकाशमें वर्षासे युक्त बादल गरजता है, उसी प्रकार उस शब्दको सुनकर योगी तत्काल संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। तदनन्तर योगियोंद्वारा प्रतिदिन चिन्तन किया जाता हुआ वह शब्द क्रमशः सूक्ष्मसे सूक्ष्मतर हो जाता है। देवि ! इस प्रकार मैंने तुम्हें शब्दब्रह्मके चिन्तनका क्रम बताया है। जैसे धान चाहनेवाला पुरुष पुआलको छोड़ देता है, उसी तरह मोक्षकी इच्छावाला योगी सारे बन्धनोंको त्याग देता है।

इस शब्दब्रह्मको पाकर भी जो दूसरी वस्तुकी अभिलाषा करते हैं, वे मुझसे आकाशको मारते और भूख-प्यासकी कामना करते हैं। यह शब्दब्रह्म ही सुखद, मोक्षका कारण, बाहर-भीतरके भेदसे रहित, अविनाशी और समस्त उपाधियोंसे रहित परब्रह्म है। इसे जानकर मनुष्य मुक्त हो जाते हैं। जो लोग कालपाशसे मोहित हो शब्दब्रह्मको नहीं जानते, वे पापी और कुबुद्धि मनुष्य मौतके फंदेमें फँसे रहते हैं। मनुष्य तभीतक संसारमें जन्म लेते हैं, जबतक सबके आश्रयभूत परमतत्त्व (परब्रह्म परमात्मा) की प्राप्ति नहीं होती। परमतत्त्वका ज्ञान हो जानेपर मनुष्य जन्म-मृत्युके बन्धनसे मुक्त हो जाता है। निद्रा और आलस्य साधनाका बहुत बड़ा विघ्न है। इस शत्रुको यत्नपूर्वक जीतकर सुखद आसनपर आसीन हो प्रतिदिन शब्दब्रह्मका अभ्यास करना चाहिये। सौ वर्षकी अवस्थावाला वृद्ध पुरुष आजीवन इसका अभ्यास करे तो उसका शरीररूपी स्तम्भ मृत्युको जीतनेवाला हो जाता है और उसे प्राणवायुकी शक्तिको बढ़ानेवाला आरोग्य प्राप्त होता है। वृद्ध पुरुषमें भी ब्रह्मके अभ्याससे होनेवाले लाभका विश्वास देखा जाता है, फिर तरुण मनुष्यको इस साधनासे पूर्ण लाभ हो इसके लिये तो कहना ही क्या है। यह शब्दब्रह्म न ओंकार है, न मन्त्र है, न बीज है, न अक्षर है। यह अनाहत नाद (बिना आघातके अथवा बिना बजाये ही प्रकट होनेवाला शब्द) है। इसका उच्चारण किये बिना ही चिन्तन होता है। यह शब्दब्रह्म परम कल्याणमय है। प्रिये ! शुद्ध बुद्धिवाले पुरुष यत्नपूर्वक निरन्तर इसका अनुसंधान करते हैं। अतः नौ प्रकारके शब्द बताये गये हैं, जिन्हें प्राणवेत्ता पुरुषोंने लक्षित किया है। मैं उन्हें प्रयत्न करके बता रहा हूँ। उन शब्दोंको नादसिद्धि भी कहते हैं। वे शब्द क्रमशः इस प्रकार हैं—

घोष, कांस्य (झाँझ आदि), शृङ्ग (सिंगा आदि), घण्टा, वीणा आदि, बाँसुरी, दुन्दुभि, शङ्ख और नवाँ मेघ-गर्जन—इन नौ प्रकारके शब्दोंको त्यागकर तुंकारका अभ्यास करे। इस प्रकार सदा ही ध्यान करनेवाला योगी पुण्य और पापोंसे लिप्त नहीं होता है। देवि ! योगाभ्यासके द्वारा सुननेका प्रयत्न करनेपर भी जब योगी उन शब्दोंको नहीं सुनता और अभ्यास करते-करते मरणासन्न हो जाता है, तब भी वह दिन-रात उस अभ्यासमें ही लगा रहे। ऐसा करनेसे सात दिनोंमें वह शब्द प्रकट होता है, जो मृत्युको जीतनेवाला है। देवि ! वह शब्द नौ प्रकारका है। उसका मैं यथार्थरूपसे वर्णन करता हूँ। पहले तो घोषात्मक नाद प्रकट होता है, जो आत्मशुद्धिका उत्कृष्ट साधन है। वह उत्तम नाद सब रोगोंको हर लेनेवाला तथा मनको

वशीभूत करके अपनी ओर खींचनेवाला है। दूसरा कांस्यनाद है, जो प्राणियोंकी गतिको स्तम्भित कर देता है। वह विष, भूत और ग्रह आदि सबको बाँधता है—इसमें संशय नहीं है। तीसरा शृङ्ग-नाद है, जो अभिचारसे सम्बन्ध रखनेवाला है। उसका शत्रुके उच्चाटन और मारणमें नियोग एवं प्रयोग करे। चौथा घण्टा-नाद है; जिसका साक्षात् परमेश्वर शिव उच्चारण करते हैं। वह नाद सम्पूर्ण देवताओंको आकृष्ट कर लेता है, फिर भूतलके मनुष्योंकी तो बात ही क्या है। यक्षों और गन्धर्वोंकी कन्याएँ उस नादसे आकृष्ट हो योगीको उसकी इच्छाके अनुसार महासिद्धि प्रदान करती हैं तथा उसकी अन्य कामनाएँ भी पूर्ण करती हैं। पाँचवाँ नाद वीणा है, जिसे योगी पुरुष ही सदा सुनते हैं। देवि ! उस वीणा-नादसे दूर-दर्शनकी शक्ति प्राप्त होती है। वंशीनादका ध्यान करनेवाले योगीको सम्पूर्ण तत्त्व प्राप्त हो जाता है। दुन्दुभिका चिन्तन करनेवाला साधक जरा और मृत्युके कष्टसे छूट जाता है। देवेश्वरि ! शङ्खनादका अनुसंधान होनेपर इच्छानुसार रूप धारण करनेकी शक्ति प्राप्त हो जाती है। मेघनादके चिन्तनसे योगीको कभी विपत्तिका सामना नहीं करना पड़ता। वरानने ! जो प्रतिदिन एकाग्रचित्तसे ब्रह्मरूपी तुंकारका ध्यान करता है, उसके लिये कुछ भी असाध्य नहीं होता। उसे मनोवाञ्छित सिद्धि प्राप्त हो जाती है। वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और इच्छानुसार रूपधारी होकर सर्वत्र विचरण करता है, कभी विकारोंके वशीभूत नहीं होता। वह साक्षात् शिव ही है, इसमें संशय नहीं है। परमेश्वरि ! इस प्रकार मैंने तुम्हारे समक्ष शब्दब्रह्मके नवधा स्वरूपका पूर्णतया वर्णन किया है। अब और क्या सुनना चाहती हो ? (अध्याय २६)

☆

काल या मृत्युको जीतकर अमरत्व प्राप्त करनेकी चार यौगिक साधनाएँ—प्राणायाम, भ्रूमध्यमें अग्निका ध्यान, मुखसे वायुपान तथा मुड़ी हुई जिह्वाद्वारा गलेकी घाँटीका स्पर्श

पार्वती बोलीं—प्रभो ! यदि आप प्रसन्न हैं तो योगी योगाकाशजनित वायुपदको जिस प्रकार प्राप्त होता है, वह सब मुझे बताइये।

भगवान् शिवने कहा—सुन्दरि ! पहले मैंने योगियोंके हितकी कामनासे सब कुछ बताया है, जिसके अनुसार योगियोंने कालपर विजय प्राप्त की थी। योगी जिस प्रकार वायुका स्वरूप धारण करता है, उसके विषयमें भी कहा गया है। इसलिये योग-शक्तिके द्वारा मृत्यु-दिवसको जानकर प्राणायाममें तत्पर हो जाय। ऐसा करनेपर आधे मासमें ही वह आये हुए कालको जीत लेता है। हृदयमें स्थित हुई प्राणवायु सदा अग्निको उद्दीप्त करनेवाली है। उसे अग्निका सहायक बताया गया है। यह वायु बाहर और भीतर सर्वत्र व्याप्त और महान् है। ज्ञान, विज्ञान और उत्साह—सबकी प्रवृत्ति वायुसे ही होती है। जिसने यहाँ वायुको जीत लिया, उसने इस सम्पूर्ण जगत्पर विजय पा ली।

साधकको चाहिये कि वह जरा और मृत्युको जीतनेकी इच्छासे सदा धारणामें

स्थित रहे; क्योंकि योगपरायण योगीको भलीभाँति धारणा और ध्यानमें तत्पर रहना चाहिये। जैसे लुहार मुखसे धौंकनीको फूँक-फूँककर उस वायुके द्वारा अपने सब कार्यको सिद्ध करता है, उसी प्रकार योगीको प्राणायामका अभ्यास करना चाहिये। प्राणायामके समय जिनका ध्यान किया जाता है, वे आराध्यदेव परमेश्वर सहस्रों मस्तक, नेत्र, पैर और हाथोंसे युक्त हैं तथा समस्त ग्रन्थियोंको आवृत करके उनसे भी दस अंगुल आगे स्थित हैं। आदिमें व्याहृति और अन्तमें शिरोमन्त्रसहित गायत्रीका तीन बार जप करे और प्राणवायुको रोके रहे। प्राणोंके इस आयामका नाम प्राणायाम है। चन्द्रमा और सूर्य आदि ग्रह जा-जाकर लौट आते हैं। परंतु प्राणायामपूर्वक ध्यानपरायण योगी जानेपर आजतक नहीं लौटे हैं (अर्थात् मुक्त हो गये हैं)। देवि! जो द्विज सौ वर्षोंतक तपस्या करके कुशोंके अग्रभागसे एक बूँद जल पीता है वह जिस फलको पाता है, वही ब्राह्मणोंको एकमात्र धारणा अथवा प्राणायामके द्वारा मिल जाता है। जो द्विज सबेरे उठकर एक प्राणायाम करता है, वह अपने सम्पूर्ण पापको शीघ्र ही नष्ट कर देता और ब्रह्मलोकको जाता है। जो आलस्य-रहित हो सदा एकान्तमें प्राणायाम करता है, वह जरा और मृत्युको जीतकर वायुके समान गतिशील हो आकाशमें विचरता है। वह सिद्धोंके स्वरूप, कान्ति, मेधा, पराक्रम और शौर्यको प्राप्त कर लेता है। उसकी गति वायुके समान हो जाती है तथा उसे स्पृहणीय सौख्य एवं परम सुखकी प्राप्ति होती है।

देवेश्वरि! योगी जिस प्रकार वायुसे सिद्धि प्राप्त करता है, वह सब विधान मैंने बता दिया। अब तेजसे जिस तरह वह सिद्धि-लाभ करता है, उसे भी बता रहा हूँ। जहाँ दूसरे लोगोंकी बातचीतका कोलाहल न पहुँचता हो, ऐसे शान्त—एकान्त स्थानमें अपने सुखद आसनपर बैठकर चन्द्रमा और सूर्य (वाम और दक्षिण नेत्र) की कान्तिसे प्रकाशित मध्यवर्ती देश भ्रूमध्यभागमें जो अग्निका तेज अव्यक्तरूपसे प्रकाशित होता है, उसे आलस्यरहित योगी दीपकरहित अन्धकारपूर्ण स्थानमें चिन्तन करनेपर निश्चय ही देख सकता है—इसमें संशय नहीं है। योगी हाथकी अँगुलियोंसे यत्नपूर्वक दोनों नेत्रोंको कुछ-कुछ दबाये रखे और उनके तारोंको देखता हुआ एकाग्रचित्तसे आधे मुहूर्ततक उन्हींका चिन्तन करे। तदनन्तर अन्धकारमें भी ध्यान करनेपर वह उस ईश्वरीय ज्योतिको देख सकता है। वह ज्योति स्फेद, लाल, पीली, काली तथा इन्द्रधनुषके समान रंगवाली होती है। भौंहोंके बीचमें ललाटवर्ती बालसूर्यके समान तेजवाले उन अग्निदेवका साक्षात्कार करके योगी इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला हो जाता है तथा मनोवाञ्छित शरीर धारण करके क्रीड़ा करता है। वह योगी कारण-तत्त्वको शान्त करके उसमें आविष्ट होना, दूसरेके शरीरमें प्रवेश करना, अणिमा आदि गुणोंको पा लेना, मनसे ही सब कुछ देखना, दूरकी बातोंको सुनना और जानना, अदृश्य हो जाना, बहुत-से रूप धारण कर लेना तथा आकाशमें विचरना इत्यादि सिद्धियोंको निरन्तर अभ्यासके प्रभावसे प्राप्त कर लेता है। जो अन्धकारसे परे और सूर्यके समान तेजस्वी है, उसी इस

महान् ज्योतिर्मय पुरुष (परमात्मा) को मैं जानता हूँ। उन्हींको जानकर मनुष्य काल या मृत्युको लाँघ जाता है। मोक्षके लिये इसके सिवा दूसरा कोई मार्ग नहीं है। * देवि! इस प्रकार मैंने तुमसे तेजस्तत्त्वके चिन्तनकी उत्तम विधिका वर्णन किया है, जिससे योगी कालपर विजय पाकर अमरत्वको प्राप्त कर लेता है।

देवि! अब पुनः दूसरा श्रेष्ठ उपाय बताता हूँ, जिससे मनुष्यकी मृत्यु नहीं होती।

देवि! ध्यान करनेवाले योगियोंकी चौथी गति (साधना) बतायी जाती है। योगी अपने चित्तको वशमें करके यथायोग्य स्थानमें सुखद आसनपर बैठे। वह शरीरको ऊँचा करके अञ्जलि बाँधकर चोंचकी-सी आकृतिवाले मुखके द्वारा धीरे-धीरे वायुका पान करे। ऐसा करनेसे क्षणभरमें तालुके भीतर स्थित जीवनदायी जलकी बूँदें टपकने लगती हैं। उन बूँदोंको वायुके द्वारा लेकर सूँघे। वह शीतल जल अमृतस्वरूप है। जो योगी उसे प्रतिदिन पीता है, वह कभी मृत्युके अधीन नहीं होता। उसे भूख-प्यास नहीं लगती। उसका शरीर दिव्य और तेज महान् हो जाता है। वह बलमें हाथी और वेगमें घोड़ेकी समानता करता है। उसकी दृष्टि गरुड़के समान तेज हो जाती है और उसे दूरकी भी बातें सुनायी देने लगती हैं। उसके केश काले-काले और घुँघराले हो जाते हैं तथा अङ्गकान्ति गन्धर्व एवं विद्याधरोंकी समानता करती है। वह मनुष्य देवताओंके वर्षसे सौ वर्षोंतक जीवित रहता है तथा अपनी उत्तम बुद्धिके द्वारा बृहस्पतिके तुल्य हो जाता है। उसमें इच्छानुसार विचरनेकी शक्ति आ जाती है और वह सदा ही सुखी रहकर आकाशमें विचरणकी शक्ति प्राप्त कर लेता है।

वरानने! अब मृत्युपर विजय पानेकी पुनः दूसरी विधि बता रहा हूँ, जिसे देवताओंने भी प्रयत्नपूर्वक छिपा रखा है; तुम उसे सुनो। योगी पुरुष अपनी जिह्वाको मोड़कर तालुमें लगानेका प्रयत्न करे। कुछ कालतक ऐसा करनेसे वह क्रमशः लम्बी होकर गलेकी घाँटीतक पहुँच जाती है। तदनन्तर जब जिह्वासे गलेकी घाँटी सटती है, तब शीतल सुधाका स्राव करती है। उस सुधाको जो योगी सदा पीता है, वह अमरत्वको प्राप्त होता है।

(अध्याय २७)

☆

भगवती उमाके कालिका-अवतारकी कथा—समाधि और सुरथके समक्ष मेधाका देवीकी कृपासे मधुकैटभके वधका प्रसङ्ग सुनाना

इसके अनन्तर छाया पुरुष, सर्ग, कश्यपवंश, मन्वन्तर, मनुवंश, सत्यव्रतादि-वंश, पितृकल्प तथा व्यासोत्पत्ति आदिका वर्णन सुननेके पश्चात् मुनियोंने सूतजीसे कहा—ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ सूतजी! हमने आपके मुखसे भगवान् शिवकी अनेक

---

* वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥
(शि० पु० उ० सं० २७। २५)

इतिहासोंसे युक्त रमणीय कथा सुनी, जो उनके नानावतारोंसे सम्बन्ध रखती है तथा मनुष्योंको भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है। अब हम आपसे जगज्जननी भगवती उमाका मनोहर चरित्र सुनना चाहते हैं। परब्रह्म परमात्मा महेश्वरकी जो आद्या सनातनी शक्ति हैं, वे उमा नामसे विख्यात हैं। वे ही त्रिलोकीको उत्पन्न करनेवाली पराशक्ति हैं। महामते! दक्षकन्या सती और हिमवान्‌की पुत्री पार्वती—ये उमाके दो अवतार हमने सुने। सूतजी! अब उनके दूसरे अवतारोंका वर्णन कीजिये। लक्ष्मी-जननी जगदम्बा उमाके गुणोंको सुननेसे कौन बुद्धिमान् पुरुष विरत हो सकता है। ज्ञानी पुरुष भी कभी उनके कथा-श्रवणके शुभ अवसरको नहीं छोड़ते।

सूतजीने कहा—महात्माओ! तुमलोग धन्य हो और सर्वदा कृतकृत्य हो; क्योंकि परा अम्बा उमाके महान् चरित्रके विषयमें पूछ रहे हो। जो इस कथाको सुनते, पूछते और बाँचते हैं, उनके चरणकमलोंकी धूलिको ही ऋषियोंने तीर्थ माना है। जिनका चित्त परम संवित्-स्वरूपा श्रीउमादेवीके चिन्तनमें लीन है, वे पुरुष धन्य हैं, कृतकृत्य हैं, उनकी माता और कुल भी धन्य हैं। जो समस्त कारणोंकी भी कारणरूपा देवेश्वरी उमाकी स्तुति नहीं करते, वे मायाके गुणोंसे मोहित तथा भाग्यहीन हैं—इसमें संशय नहीं है। जो करुणारसकी सिन्धुस्वरूपा महादेवीका भजन नहीं करते, वे संसाररूपी घोर अन्धकूपमें पड़ते हैं। जो देवी उमाको छोड़कर दूसरे देवी-देवताओंकी शरण लेता है, वह मानो गङ्गाजीको छोड़कर प्यास बुझानेके लिये मरुस्थलके जलाशयके पास जाता है। जिनके स्मरणमात्रसे धर्म आदि चारों पुरुषार्थोंकी अनायास प्राप्ति होती है, उन देवी उमाकी आराधना कौन श्रेष्ठ पुरुष छोड़ सकता है।

पूर्वकालमें महामना सुरथने महर्षि मेधासे यही बात पूछी थी। उस समय मेधाने जो उत्तर दिया, मैं वही बता रहा हूँ; तुमलोग सुनो। पहले स्वारोचिष मन्वन्तरमें विरथ नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं। उनके पुत्र सुरथ हुए, जो महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न थे। वे दाननिपुण, सत्यवादी, स्वधर्मकुशल, विद्वान्, देवीभक्त, दयासागर तथा प्रजाजनोंका भलीभाँति पालन करनेवाले थे। इन्द्रके समान तेजस्वी राजा सुरथके पृथ्वीपर शासन करते समय नौ ऐसे राजा हुए, जो उनके हाथसे भूमण्डलका राज्य छीन लेनेके प्रयत्नमें लगे थे। उन्होंने भूपाल सुरथकी राजधानी कोलापुरीको चारों ओरसे घेर लिया। उनके साथ राजाका बड़ा भयानक युद्ध हुआ। उनके शत्रुगण बड़े प्रबल थे। अतः युद्धमें भूपाल सुरथकी पराजय हुई। शत्रुओंने सारा राज्य अपने अधिकारमें करके सुरथको कोलापुरीसे निकाल दिया। राजा अपनी दूसरी पुरीमें आये और वहाँ मन्त्रियोंके साथ रहकर राज्य करने लगे। परंतु प्रबल विपक्षियोंने वहाँ भी आक्रमण करके उन्हें पराजित कर दिया। दैवयोगसे राजाके मन्त्री आदि गण भी उनके शत्रु बन बैठे और खजानेमें जो धन संचित था, वह सब उन विरोधी मन्त्री आदिने अपने हाथमें कर लिया।

तब राजा सुरथ शिकारके बहाने अकेले ही घोड़ेपर सवार हो नगरसे बाहर

निकले और गहन वनमें चले गये। वहाँ इधर-उधर घूमते हुए राजाने एक श्रेष्ठ

मुनिका आश्रम देखा, जो चारों ओर फूलोंके बगीचे लगे होनेसे बड़ी शोभा पा रहा था। वहाँ वेदमन्त्रोंकी ध्वनि गूँज रही थी। सब जीव-जन्तु शान्तभावसे रहते थे। मुनिके शिष्यों, प्रशिष्यों तथा उनके भी शिष्योंने उस आश्रमको सब ओरसे घेर रखा था। महामते! विप्रवर मेधाके प्रभावसे उस आश्रममें महाबली व्याघ्र आदि अल्प शक्तिवाले गौ आदि पशुओंको पीड़ा नहीं देते थे। वहाँ जानेपर मुनीश्वर मेधाने मीठे वचन, भोजन और आसनद्वारा उन परम दयालु विद्वान् नरेशका आदर-सत्कार किया।

एक दिन राजा सुरथ बहुत ही चिन्तित तथा मोहके वशीभूत होकर अनेक प्रकारसे विचार कर रहे थे। इतनेमें ही वहाँ एक वैश्य आ पहुँचा। राजाने उससे पूछा—'भैया! तुम कौन हो और किसलिये यहाँ आये हो? क्या कारण है कि दुःखी दिखायी दे रहे हो? यह मुझे बताओ।' राजाके मुखसे यह मधुर वचन सुनकर वैश्यप्रवर समाधिने दोनों नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए प्रेम और नम्रतापूर्ण वाणीमें इस प्रकार उत्तर दिया।

वैश्य बोला—राजन्! मैं वैश्य हूँ। मेरा नाम समाधि है। मैं धनीके कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ। परंतु मेरे पुत्रों और स्त्री आदिने धनके लोभसे मुझे घरसे निकाल दिया है। अतः आपने प्रारब्धकर्मसे दुःखी हो मैं वनमें चला आया हूँ। करुणासागर प्रभो! यहाँ आकर मैं पुत्रों, पौत्रों, पत्नी, भाई-भतीजे तथा अन्य सुहृदोंका कुशल-समाचार नहीं जान पाता।

राजा बोले—जिन दुराचारी तथा धनके लोभी पुत्र आदिने तुम्हें निकाल दिया है, उन्हींके प्रति मूर्ख जीवकी भाँति तुम प्रेम क्यों करते हो?

वैश्यने कहा—राजन्! आपने उत्तम बात कही है। आपकी वाणी सारगर्भित है, तथापि स्नेहपाशसे बँधा हुआ मेरा मन अत्यन्त मोहको प्राप्त हो रहा है।

इस तरह मोहसे व्याकुल हुए वैश्य और राजा दोनों मुनिवर मेधाके पास गये। वैश्यसहित राजाने हाथ जोड़कर मुनिको प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'भगवन्! आप हम दोनोंके मोहपाशको काट दीजिये। मुझे राज्यलक्ष्मीने छोड़ दिया और मैंने गहन वनकी शरण ली; तथापि राज्य छिन जानेके कारण मुझे संतोष नहीं है। और यह वैश्य है, जिसे स्त्री आदि स्वजनोंने घरसे निकाल दिया है; तथापि उनकी ओरसे इसकी ममता दूर नहीं हो रही

है। इसका क्या कारण है? बताइये। समझदार होनेपर भी हम दोनोंका मन मोहसे व्याकुल हो गया, यह तो बड़ी भारी मूर्खता है।

ऋषि बोले—राजन्! सनातन शक्ति-स्वरूपा जगदम्बा महामाया कही गयी है। वे ही सबके मनको खींचकर मोहमें डाल देती हैं। प्रभो! उनकी मायासे मोहित होनेके कारण ब्रह्मा आदि समस्त देवता भी परम तत्त्वको नहीं जान पाते, फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है? वे परमेश्वरी ही रज, सत्त्व और तम—इन तीनों गुणोंका आश्रय ले समयानुसार सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि, पालन और संहार करती हैं। नृपश्रेष्ठ! जिसके ऊपर वे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली वरदायिनी जगदम्बा प्रसन्न होती हैं, वही मोहके घेरेको लाँघ पाता है।

राजाने पूछा—मुने! जो सबको मोहित करती हैं, वे देवी महामाया कौन हैं? और किस प्रकार उनका प्रादुर्भाव हुआ है? यह कृपा करके मुझे बताइये।

ऋषि बोले—जब सारा जगत् एकार्णवके जलमें निमग्न था और योगेश्वर भगवान् केशव शेषकी शय्या बिछाकर योगनिद्राका आश्रय ले शयन कर रहे थे, उन्हीं दिनों भगवान् विष्णुके कानोंके मलसे दो असुर उत्पन्न हुए, जो भूतलपर मधु और कैटभके नामसे विख्यात हैं। वे दोनों विशालकाय घोर असुर प्रलयकालके

सूर्यकी भाँति तेजस्वी थे। उनके जबड़े बहुत बड़े थे। उनके मुख दाढ़ोंके कारण ऐसे विकराल दिखायी देते थे, मानो वे सम्पूर्ण जगत्को खा जानेके लिये उद्यत हों। उन दोनोंने भगवान् विष्णुकी नाभिसे प्रकट हुए कमलके ऊपर विराजमान ब्रह्माको देखकर पूछा—'अरे, तू कौन है?' ऐसा कहते हुए वे उन्हें मार डालनेके लिये उद्यत हो गये।

ब्रह्माजीने देखा—ये दोनों दैत्य आक्रमण करना चाहते हैं और भगवान् जनार्दन समुद्रके जलमें सो रहे हैं, तब उन्होंने परमेश्वरीका स्तवन किया और उनसे प्रार्थना की—'अम्बिके ! तुम इन दोनों दुर्जय असुरोंको मोहित करो और अजन्मा भगवान् नारायणको जगा दो।'

ऋषि कहते हैं—इस प्रकार मधु और कैटभके नाशके लिये ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर सम्पूर्ण विद्याओंकी अधिदेवी जगज्जननी महाविद्या फाल्गुन शुक्ला द्वादशीको त्रैलोक्य-मोहिनी शक्तिके रूपमें प्रकट हो महाकालीके नामसे विख्यात हुईं। तदनन्तर आकाशवाणी हुई—'कमलासन! डरो मत। आज युद्धमें मधु-कैटभको मारकर मैं तुम्हारे कण्टकका नाश करूँगी।' यों कहकर वे महामाया श्रीहरिके नेत्र और मुख आदिसे निकलकर अव्यक्तजन्मा ब्रह्माके दृष्टिपथमें आ खड़ी हो गयीं। फिर तो देवाधिदेव हृषीकेश जनार्दन जाग उठे। उन्होंने अपने सामने दोनों दैत्य मधु और कैटभको देखा। उन दैत्योंके साथ अतुल तेजस्वी विष्णुका पाँच हजार वर्षोंतक बाहुयुद्ध हुआ। तब महामायाके प्रभावसे मोहित हुए उन श्रेष्ठ दानवोंने लक्ष्मीपतिसे कहा—'तुम हमसे मनोवाञ्छित वर ग्रहण करो।'

नारायण बोले—यदि तुमलोग प्रसन्न हो तो मेरे हाथसे मारे जाओ। यही मेरा वर है। इसे दो। मैं तुम दोनोंसे दूसरा वर नहीं माँगता।

ऋषि कहते हैं—उन असुरोंने देखा, सारी पृथ्वी एकार्णवके जलमें डूबी हुई है; तब वे केशवसे बोले—'हम दोनोंको ऐसी जगह मारो, जहाँ जलसे भीगी हुई धरती न हो। 'बहुत अच्छा' कहकर भगवान् विष्णुने अपना परम तेजस्वी चक्र उठाया और अपनी जाँघपर उनके मस्तक रखकर काट डाला। राजन् ! यह कालिकाकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग कहा गया है। महामते ! अब महालक्ष्मीके प्रादुर्भावकी कथा सुनो। देवी उमा निर्विकार और निराकार होकर भी देवताओंका दुःख दूर करनेके लिये युग-युगमें साकाररूप धारण करके प्रकट होती हैं। उनका शरीरग्रहण उनकी इच्छाका वैभव कहा गया है। वे लीलासे इसलिये प्रकट होती हैं कि भक्तजन उनके गुणोंका गान करते रहें।

(अध्याय २८—४५)

☆

सम्पूर्ण देवताओंके तेजसे देवीका महालक्ष्मीरूपमें अवतार और उनके द्वारा महिषासुरका वध

ऋषि कहते हैं—राजन् ! रम्भ नामसे प्रसिद्ध एक असुर था, जो दैत्यवंशका शिरोमणि माना जाता था। उससे महातेजस्वी महिष नामक दानवका जन्म हुआ था। दानवराज महिष समस्त देवताओंको युद्धमें पराजित करके देवराज इन्द्रके सिंहासनपर जा बैठा और स्वर्गलोकमें रहकर त्रिलोकीका राज्य करने लगा। तब पराजित हुए देवता ब्रह्माजीकी शरणमें गये। ब्रह्माजी भी उन सबको साथ ले उस स्थानपर गये, जहाँ भगवान् शिव और विष्णु विराजमान थे। वहाँ पहुँचकर सब

देवताओंने शिव और केशवको नमस्कार किया तथा अपना सब वृत्तान्त यथार्थरूपसे ब्योरेवार कह सुनाया। वे बोले—'भगवन्! दुरात्मा महिषासुरने हम सबको समराङ्गणमें जीतकर स्वर्गलोकसे निकाल दिया है। इसलिये हम इस मर्त्यलोकमें भटक रहे हैं और कहीं भी हमें शान्ति नहीं मिल रही है। उस असुरने इन्द्र आदि देवताओंकी कौन-कौन-सी दुर्दशा नहीं की है। सूर्य, चन्द्रमा, वरुण, कुबेर, यम, इन्द्र, अग्नि, वायु, गन्धर्व, विद्याधर और चारण—इन सबके तथा अन्य लोगोंके भी जो कर्तव्यकर्म हैं, उन सबको वह पापात्मा असुर स्वयं ही करता है। उसने दैत्यपक्षको अभय-दान कर दिया है। इसलिये हम सब देवता आपकी शरणमें आये हैं। आप दोनों हमारी रक्षा करें और उस असुरके वधका उपाय शीघ्र ही सोचें; क्योंकि आप दोनों ऐसा करनेमें समर्थ हैं।'

देवताओंकी यह बात सुनकर भगवान् शिव और विष्णुने अत्यन्त क्रोध किया। रोषके मारे उनके नेत्र घूमने लगे। तब अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए भगवान् शिव और विष्णुके मुखसे तथा अन्य देवताओंके शरीरसे तेज प्रकट हुआ। तेजका वह महान् पुञ्ज अत्यन्त प्रज्वलित हो दसों दिशाओंमें प्रकाशित हो उठा। दुर्गाजीके ध्यानमें लगे हुए सब देवताओंने उस तेजको प्रत्यक्ष देखा। सम्पूर्ण देवताओंके शरीरोंसे निकला हुआ वह अत्यन्त भीषण तेज एकत्र हो एक नारीके रूपमें परिणत हो गया। वह नारी साक्षात् महिषमर्दिनी देवी थीं। उनका प्रकाशमान मुख भगवान् शिवके तेजसे प्रकट हुआ था। भुजाएँ विष्णुके तेजसे उत्पन्न हुई थीं। केश यमराजके तेजसे आविर्भूत हुए थे। उनके दोनों स्तन चन्द्रमाके तेजसे प्रकट हुए थे। कटिभाग इन्द्रके तेजसे तथा जङ्घा और ऊरु वरुणके तेजसे पैदा हुए थे। पृथ्वीके तेजसे नितम्बका और ब्रह्माजीके तेजसे दोनों चरणोंका आविर्भाव हुआ था। पैरोंकी अँगुलियाँ सूर्यके तेजसे और हाथकी अँगुलियाँ वसुओंके तेजसे उत्पन्न हुई थीं। नासिका कुबेरके, दाँत प्रजापतिके, तीनों नेत्र अग्निके, दोनों भौंहें साध्यगणके, दोनों कान वायुके तथा अन्य देवताओंके तेजसे प्रकट हुए थे। इस प्रकार देवताओंके तेजसे प्रकट हुई कमललोचना लक्ष्मी ही वह परमेश्वरी थीं। सम्पूर्ण देवताओंकी तेजोराशिसे प्रकट हुई उन देवीको देखकर सब देवताओंको बड़ा हर्ष प्राप्त हुआ। परंतु उनके पास कोई अस्त्र नहीं था। यह देख ब्रह्मा आदि देवेश्वरोंने शिवा देवीको अस्त्र-शस्त्रसे सम्पन्न करनेका विचार किया। तब महेश्वरने महेश्वरीको शूल समर्पित किया। भगवान् विष्णुने चक्र, वरुणने पाश, अग्निदेवने शक्ति, वायु देवताने धनुष तथा बाणोंसे भरे दो तरकस और शचीपति इन्द्रने वज्र एवं घण्टा प्रदान किये। यमराजने कालदण्ड, प्रजापतिने अक्षमाला, ब्रह्माने कमण्डलु एवं सूर्यदेवने समस्त रोमकूपोंमें अपनी किरणें अर्पित कीं। कालने उन्हें चमकती हुई ढाल और तलवार दी, क्षीरसागरने सुन्दर हार तथा कभी पुराने न होनेवाले दो दिव्य वस्त्र भेंट किये। साथ ही उन्होंने दिव्य चूड़ामणि, दो कुण्डल, बहुत-से कड़े, अर्धचन्द्र, केयूर, मनोहर नूपुर, गलेकी हँसुली और सब अँगुलियोंमें पहननेके लिये रत्नोंकी बनी

अँगूठियाँ भी दीं। विश्वकर्माने उन्हें मनोहर फरसा भेंट किया। साथ ही अनेक प्रकारके अस्त्र और अभेद्य कवच दिये। समुद्रने सदा सुरम्य एवं सरस रहनेवाली माला दी और एक कमलका फूल भेंट किया। हिमवान्‌ने सवारीके लिये सिंह तथा आभूषणके लिये नाना प्रकारके रत्न दिये। कुबेरने उन्हें मधुसे भरा पात्र अर्पित किया तथा सर्पोंके नेता शेषनागने विचित्र रचनाकौशलसे सुशोभित एक नागहार भेंट किया, जिसमें नाना प्रकारकी सुन्दर मणियाँ गूँथी हुई थीं। इन सबने तथा दूसरे देवताओंने भी आभूषण और अस्त्र-शस्त्र देकर देवीका सम्मान किया। तत्पश्चात् उन्होंने बारंबार अट्टहास करके उच्चस्वरसे गर्जना की। उनके उस भयंकर नादसे सम्पूर्ण आकाश गूँज उठा। उससे बड़े जोरकी प्रतिध्वनि हुई, जिससे तीनों लोकोंमें हलचल मच गयी। चारों समुद्रोंने अपनी मर्यादा छोड़ दी। पृथ्वी डोलने लगी। उस समय महिषासुरसे पीड़ित हुए देवताओंने देवीकी जय-जयकार की।

तदनन्तर सब देवताओंने उन महालक्ष्मीस्वरूपा पराशक्ति जगदम्बाका भक्ति-गद्गद वाणीद्वारा स्तवन किया। सम्पूर्ण त्रिलोकीको क्षोभग्रस्त देख देववैरी दैत्य अपनी समस्त सेनाको कवच आदिसे सुसज्जित कर हाथोंमें हथियार ले सहसा उठ खड़े हुए। रोषसे भरा हुआ महिषासुर भी उस शब्दकी ओर लक्ष्य करके दौड़ा और आगे पहुँचकर उसने देवीको देखा, जो अपनी प्रभासे तीनों लोकोंको प्रकाशित कर रही थीं। इस समय महिषासुरके द्वारा पालित करोड़ों शस्त्रधारी महावीर वहाँ आ पहुँचे। चिक्षुर, चामर, उदग्र, कराल, उद्धत, बाष्कल, ताम्र, उग्रास्य, उग्रवीर्य, विडाल, अन्धक, दुर्धर, दुर्मुख, त्रिनेत्र और महाहनु—ये तथा अन्य बहुत-से युद्धकुशल शूरवीर समराङ्गणमें देवीके साथ युद्ध करने लगे। ये सब-के-सब अस्त्र-शस्त्रोंकी विद्यामें पारंगत थे। इस प्रकार देवी और दैत्यगण दोनों परस्पर जूझने लगे। उनका वह भीषण समय मार-काटमें ही बीतने लगा। इस तरह भयानक युद्ध होनेके बाद महिषासुर देवीके साथ मायायुद्ध करने लगा।

तब देवीने कहा—रे मूढ़! तेरी बुद्धि मारी गयी है। तू व्यर्थ हठ क्यों करता है? तीनों लोकोंमें कोई भी असुर युद्धमें मेरे सामने टिक नहीं सकते।

यों कहकर सर्वकलामयी देवी कूदकर महिषासुरपर चढ़ गयीं और अपने पैरसे उसे दबाकर उन्होंने भयंकर शूलसे उसके कण्ठमें आघात किया। उनके पैरसे दबा होनेपर भी महिषासुर अपने मुखसे दूसरे रूपमें बाहर निकलने लगा। अभी आधे शरीरसे ही वह बाहर निकलने पाया था कि देवीने अपने प्रभावसे उसे रोक दिया। आधा निकला होनेपर भी वह महा-अधम दैत्य देवीके साथ युद्ध करने लगा। तब देवीने बहुत बड़ी तलवारसे उसका सिर काटकर उस असुरको धराशायी कर दिया। फिर तो उसके सैनिकगण 'हाय! हाय!' करके नीचे मुख किये भयभीत हो रणभूमिसे भागने और त्राहि-त्राहिकी पुकार करने लगे। उस समय

इन्द्र आदि सब देवताओंने देवीकी स्तुति की। गन्धर्व गीत गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। राजन्! इस प्रकार मैंने तुमसे देवीके महालक्ष्मी-अवतारकी कथा कही है। अब तुम सुस्थिर-चित्तसे सरस्वतीके प्रादुर्भावका प्रसङ्ग सुनो। (अध्याय ४६)

☆

देवी उमाके शरीरसे सरस्वतीका आविर्भाव, उनके रूपकी प्रशंसा सुनकर शुम्भका उनके पास दूत भेजना, दूतके निराश लौटनेपर शुम्भका क्रमशः धूम्रलोचन, चण्ड, मुण्ड तथा रक्तबीजको भेजना और देवीके द्वारा उन सबका मारा जाना

ऋषि कहते हैं— पूर्वकालमें शुम्भ और निशुम्भ नामके दो प्रतापी दैत्य थे, जो आपसमें भाई-भाई थे। उन दोनोंने चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकीके राज्यपर बलपूर्वक आक्रमण किया। उनसे पीड़ित हुए देवताओंने हिमालय पर्वतकी शरण ली और सम्पूर्ण अभीष्टोंको देनेवाली सर्वभूतजननी देवी उमाका स्तवन किया।

देवता बोले—महेश्वरि दुर्गे! आपकी जय हो। अपने भक्तजनोंका प्रिय करनेवाली देवि! आपकी जय हो। आप तीनों लोकोंकी रक्षा करनेवाली शिवा हैं। आपको बारंबार नमस्कार है। आप ही मोक्ष प्रदान करनेवाली परा अम्बा हैं। आपको बारंबार नमस्कार है। आप समस्त संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाली हैं। आपको नमस्कार है। कालिका और तारा-रूप धारण करनेवाली देवि! आपको नमस्कार है। छिन्नमस्ता आपका ही स्वरूप है। आप ही श्रीविद्या हैं। आपको नमस्कार है। भुवनेश्वरि! आपको नमस्कार है। भैरवरूपिणि! आपको नमस्कार है। आप ही बगलामुखी और धूमावती हैं। आपको बारंबार नमस्कार है। आप ही त्रिपुरसुन्दरी और मातङ्गी हैं। आपको बारंबार नमस्कार है। अजिता, विजया, जया, मङ्गला और विलासिनी—ये सभी आपके ही विभिन्न रूपोंकी संज्ञाएँ हैं। इन सभी रूपोंमें आपको नमस्कार है। दोग्ध्री (माता अथवा कामधेनु) रूपमें आपको नमस्कार है। घोर आकार धारण करनेवाली आपको नमस्कार है। अपराजितारूपमें आपको प्रणाम है। नित्या महाविद्याके रूपमें आपको बारंबार नमस्कार है। आप ही शरणागतोंका पालन करनेवाली रुद्राणी हैं। आपको बारंबार नमस्कार है। वेदान्तके द्वारा आपके ही स्वरूपका बोध होता है। आपको नमस्कार है। आप परमात्मा हैं। आपको मेरा प्रणाम है। अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंका संचालन करनेवाली आप जगदम्बाको बारंबार नमस्कार है।*

देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर

---

* देवा ऊचुः—

जय दुर्गे महेशानि जयात्मीयजनप्रिये। त्रैलोक्यत्राणकारिण्यै शिवायै ते नमो नमः॥

वरदायिनी एवं कल्याणरूपिणी गौरी देवी बहुत प्रसन्न हुईं। उन्होंने समस्त देवताओंसे पूछा—'आपलोग यहाँ किसकी स्तुति करते हैं?' तब उन्हीं गौरीके शरीरसे एक कुमारी प्रकट हुई। वह सब देवताओंके देखते-देखते शिवशक्तिसे आदरपूर्वक बोली—'माँ! ये समस्त स्वर्गवासी देवता निशुम्भ और शुम्भ नामक प्रबल दैत्योंसे अत्यन्त पीड़ित हो अपनी रक्षाके लिये मेरी स्तुति करते हैं।' पार्वतीके शरीरकोशसे वह कुमारी निकली थी, इसलिये कौशिकी नामसे प्रसिद्ध हुई। कौशिकी ही साक्षात् शुम्भासुरका नाश करनेवाली सरस्वती हैं। उन्हींको उग्रतारा और महोग्रतारा भी कहा गया है। माताके शरीरसे स्वतः प्रकट होनेके कारण वे इस भूतलपर मातङ्गी भी कहलाती हैं। उन्होंने समस्त देवताओंसे कहा—'तुमलोग निर्भय रहो। मैं स्वतन्त्र हूँ। अतः किसीका सहारा लिये बिना ही तुम्हारा कार्य सिद्ध कर दूँगी।' ऐसा कहकर वे देवी तत्काल वहाँ अदृश्य हो गयीं।

एक दिन शुम्भ और निशुम्भके सेवक चण्ड और मुण्डने देवीको देखा। उनका मनोहर रूप नेत्रोंको सुख प्रदान करनेवाला था। उसे देखते ही वे मोहित हो सुध-बुध खोकर पृथ्वीपर गिर पड़े, फिर होशमें आनेपर वे अपने राजाके पास गये और आरम्भसे ही सारा वृत्तान्त बताकर बोले—'महाराज! हम दोनोंने एक अपूर्व सुन्दरी नारी देखी है, जो हिमालयके रमणीय शिखरपर रहती है और सिंहपर सवारी करती है।' चण्ड-मुण्डकी यह बात सुनकर महान् असुर शुम्भने देवीके पास सुग्रीव नामक अपना दूत भेजा और कहा—'दूत! हिमालयपर कोई अपूर्व सुन्दरी रहती है। तुम वहाँ जाओ और उससे मेरा संदेश कहकर उसे प्रयत्नपूर्वक यहाँ ले आओ।' यह आज्ञा पाकर दानवशिरोमणि सुग्रीव हिमालयपर गया और जगदम्बा महेश्वरीसे इस प्रकार बोला।

दूतने कहा—देवि! दैत्य शुम्भासुर अपने महान् बल और विक्रमके लिये तीनों लोकोंमें विख्यात है। उसका छोटा भाई निशुम्भ भी वैसा ही है। शुम्भने मुझे तुम्हारे पास दूत बनाकर भेजा है। इसलिये मैं यहाँ आया हूँ। सुरेश्वरि! उसने जो संदेश दिया है, उसे इस समय सुनो! 'मैंने समराङ्गणमें इन्द्र आदि देवताओंको जीतकर उनके समस्त रत्नोंका अपहरण कर लिया है। यज्ञमें देवता आदिके दिये हुए देवभागका मैं स्वयं ही

नमो मुक्तिप्रदायिन्यै परात्मायै नमो नमः। नमः समस्तसंसारोत्पत्तिस्थित्यन्तकारिके॥
कालिकारूपसम्पन्ने नमस्ताराकृते नमः। छिन्नमस्तास्वरूपायै श्रीविद्यायै नमोऽस्तु ते॥
भुवनेशि नमस्तुभ्यं नमस्ते भैरवाकृते। नमोऽस्तु बगलामुख्यै धूमावत्यै नमो नमः॥
नमस्त्रिपुरसुन्दर्यै मातङ्ग्यै ते नमो नमः। अजितायै नमस्तुभ्यं विजयायै नमो नमः॥
जयायै मङ्गलायै ते विलासिन्यै नमो नमः। दोग्ध्रीरूपे नमस्तुभ्यं नमो घोराकृतेऽस्तु ते॥
नमोऽपराजिताकारे नित्याकारे नमो नमः। शरणागतपालिन्यै रुद्राण्यै ते नमो नमः॥
नमो वेदान्तवेद्यायै नमस्ते परमात्मने। अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायिकायै नमो नमः॥

(शि॰ पु॰ उ॰ सं॰ ४७। ३—१०)

उपभोग करता हूँ। मैं मानता हूँ कि तुम स्त्रियोंमें रत्न हो, सब रत्नोंके ऊपर स्थित हो। इसलिये तुम कामजनित रसके साथ मुझको अथवा मेरे भाईको अङ्गीकार करो।'

दूतके मुँहसे शुम्भका यह संदेश सुनकर भूतनाथ भगवान् शिवकी प्राणवल्लभा महामायाने इस प्रकार कहा।

देवी बोलीं—दूत! तुम सच कहते हो। तुम्हारे कथनमें थोड़ा-सा भी असत्य नहीं है।

परंतु मैंने पहलेसे एक प्रतिज्ञा कर ली है; उसे सुनो। जो मेरा घमंड चूर कर दे, जो मुझे युद्धमें जीत ले, उसीको मैं पति बना सकती हूँ, दूसरेको नहीं। यह मेरी अटल प्रतिज्ञा है। इसलिये तुम शुम्भ और निशुम्भको मेरी यह प्रतिज्ञा बता दो। फिर इस विषयमें जैसा उचित हो, वैसा वे करें।

देवीकी यह बात सुनकर दानव सुग्रीव लौट गया। वहाँ जाकर उसने विस्तारपूर्वक राजाको सब बातें बतायीं। दूतकी बात सुनकर उग्र शासन करनेवाला शुम्भ कुपित हो उठा और बलवानोंमें श्रेष्ठ सेनापति धूम्राक्षसे बोला—'धूम्राक्ष! हिमालयपर कोई सुन्दरी रहती है। तुम शीघ्र वहाँ जाकर जैसे भी वह यहाँ आये, उसी तरह उसे ले आओ। असुरप्रवर! उसे लानेमें तुम्हें भय नहीं मानना चाहिये। यदि वह युद्ध करना चाहे तो तुम्हें प्रयत्नपूर्वक उसके साथ युद्ध भी करना चाहिये।'

शुम्भकी ऐसी आज्ञा पाकर दैत्य धूम्रलोचन हिमालयपर गया और उमाके अंशसे प्रकट हुई भगवती भुवनेश्वरीसे कहा—'नितम्बिनि! मेरे स्वामीके पास चलो, नहीं तो तुम्हें मरवा डालूँगा। मेरे साथ साठ हजार असुरोंकी सेना है।'

देवी बोलीं—वीर! तुम्हें दैत्यराजने भेजा है। यदि मुझे मार ही डालोगे तो क्या करूँगी। परंतु युद्धके बिना मेरा वहाँ जाना असम्भव है। मेरी ऐसी ही मान्यता है।

देवीके ऐसा कहनेपर दानव धूम्रलोचन उन्हें पकड़नेके लिये दौड़ा। परंतु महेश्वरीने 'हूं' के उच्चारणमात्रसे उसको भस्म कर दिया। तभीसे वे देवी इस भूतलपर धूमावती कहलाने लगीं। उनकी आराधना करनेपर वे अपने भक्तोंके शत्रुओंका संहार कर डालती हैं। धूम्राक्षके मारे जानेपर अत्यन्त कुपित हुए देवीके वाहन सिंहने उसके साथ आये हुए समस्त असुरगणोंको चबा डाला। जो मरनेसे बचे, वे भाग खड़े हुए। इस प्रकार देवीने दैत्य धूम्रलोचनको मार डाला। इस समाचारको सुनकर प्रतापी शुम्भने बड़ा क्रोध किया। वह अपने दोनों ओठोंको दाँतोंसे दबाकर रह गया। उसने क्रमशः चण्ड, मुण्ड तथा रक्तबीज नामक असुरोंको

भेजा। आज्ञा पाकर वे दैत्य उस स्थानपर गये, जहाँ देवी विराजमान थीं। अणिमा आदि सिद्धियोंसे सेवित तथा अपनी प्रभासे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करती हुई भगवती सिंहवाहिनीको देखकर वे श्रेष्ठ दानव वीर बोले—'देवि! तुम शीघ्र ही शुम्भ और निशुम्भके पास चलो, अन्यथा तुम्हें गण और वाहनसहित मरवा डालेंगे। वामे! शुम्भको अपना पति बना लो। लोकपाल आदि भी उनकी स्तुति करते हैं। शुम्भको पति बना लेनेपर तुम्हें उस महान् आनन्दकी प्राप्ति होगी, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है।'

उनकी ऐसी बात सुनकर परमेश्वरी अम्बा मुस्कराकर सरस मधुर वाणीमें बोलीं।

देवीने कहा—अद्वितीय महेश्वर परब्रह्म परमात्मा सर्वत्र विराजमान हैं, जो सदाशिव कहलाते हैं। वेद भी उनके तत्त्वको नहीं जानते, फिर विष्णु आदिकी तो बात ही क्या है। उन्हीं सदाशिवकी मैं सूक्ष्म प्रकृति हूँ। फिर दूसरेको पति कैसे बना सकती हूँ। सिंहिनी कितनी ही कामातुर क्यों न हो जाय, वह गीदड़को कभी अपना पति नहीं बनायेगी। हथिनी गदहेको और वाघिन खरगोशको नहीं वरेगी। दैत्यो! तुम सब लोग झूठ बोलते हो; क्योंकि कालरूपी सर्पके फंदेमें फँसे हुए हो। तुम या तो पातालको लौट जाओ या शक्ति हो तो युद्ध करो।

देवीका यह क्रोध पैदा करनेवाला वचन सुनकर वे दैत्य बोले—'हमलोग अपने मनमें तुम्हें अबला समझकर मार नहीं रहे थे। परंतु यदि तुम्हारे मनमें युद्धकी ही इच्छा है तो सिंहपर सुस्थिर होकर बैठ जाओ और युद्धके लिये आगे बढ़ो।' इस तरह वाद-विवाद करते हुए उनमें कलह बढ़ गया और समराङ्गणमें दोनों दलोंपर तीखे बाणोंकी वर्षा होने लगी। इस तरह उनके साथ लीलापूर्वक युद्ध करके परमेश्वरीने चण्ड-मुण्डसहित महान् असुर रक्तबीजको मार डाला। वे देववैरी असुर द्वेषबुद्धि करके आये थे, तो भी अन्तमें उन्हें उस उत्तम लोककी प्राप्ति हुई, जिसमें देवीके भक्त जाते हैं।

(अध्याय ४७)

☆

देवीके द्वारा सेना और सेनापतियोंसहित निशुम्भ एवं शुम्भका संहार

ऋषि कहते हैं—राजन्! प्रशंसनीय पराक्रमशाली महान् असुर शुम्भने इन श्रेष्ठ दैत्योंका मारा जाना सुनकर अपने उन दुर्जय गणोंको युद्धके लिये जानेकी आज्ञा दी, जो संग्रामका नाम सुनते ही हर्षसे खिल उठते थे। उसने कहा—'आज मेरी आज्ञासे कालक, कालकेय, मौर्य, दौर्हृद तथा अन्य असुरगण बड़ी भारी सेनाके साथ संगठित हो विजयकी आशा रखकर शीघ्र युद्धके लिये प्रस्थान करें।' निशुम्भ और शुम्भ दोनों भाई उन दैत्योंको पूर्वोक्त आदेश देकर रथपर आरूढ़ हो स्वयं भी नगरसे बाहर निकले। उन महाबली वीरोंकी आज्ञासे उनकी सेनाएँ उसी तरह युद्धके लिये आगे बढ़ीं, मानो मरणोन्मुख पतङ्ग आगमें कूदनेके लिये उठ खड़े हुए हों। उस समय असुरराजने युद्ध-

स्थलमें मृदङ्ग, मर्दल, भेरी, डिण्डिम, झाँझ और ढोल आदि बाजे बजवाये। उन जुझाऊ बाजोंकी आवाज सुनकर युद्धप्रेमी वीर हर्ष एवं उत्साहसे भर गये; परंतु जिन्हें अपने प्राण ही अधिक प्यारे थे, वे उस रणभूमिसे भाग चले। युद्धसम्बन्धी वस्त्रों तथा कवच आदिसे आच्छादित अङ्गवाले वे योद्धा विजयकी अभिलाषासे अस्त्र-शस्त्र धारण किये युद्धस्थलमें आ पहुँचे। कितने ही सैनिक हाथियोंपर सवार थे, बहुत-से दैत्य घोड़ोंकी पीठपर बैठे थे और अन्य असुर रथोंपर चढ़कर जा रहे थे। उस समय उन्हें अपने-परायेकी पहचान नहीं होती थी। उन्होंने असुरराजके साथ समराङ्गणमें पहुँचकर सब ओरसे युद्ध आरम्भ कर दिया। बारंबार शतघ्नी (तोप) की आवाज होने लगी, जिसे सुनकर देवता काँप उठे। धूल और धूएँसे आकाशमें महान् अन्धकार छा गया। सूर्यका रथ नहीं दिखायी देता था। अत्यन्त अभिमानी करोड़ों पैदल योद्धा विजयकी अभिलाषा लिये युद्धस्थलमें आकर डट गये थे। घुड़सवार, हाथीसवार तथा अन्य रथारूढ़ असुर भी बड़ी प्रसन्नताके साथ करोड़ोंकी संख्यामें वहाँ आये थे। उस महासमरमें काले पर्वतोंके समान विशाल मदमत्त गजराज जोर-जोरसे चिग्घाड़ रहे थे, छोटे-छोटे शैल-शिखरोंके समान ऊँट भी अपने गलेसे गल्गल् ध्वनिका विस्तार करने लगे। अच्छी भूमिमें उत्पन्न हुए घोड़े गलेमें विशाल कण्ठहार धारण किये जोर-जोरसे हिनहिना रहे थे। वे अनेक प्रकारकी चालें जानते थे और हाथियोंके मस्तकपर पैर रखते हुए आकाशमार्गसे पक्षियोंकी भाँति उड़ जाते थे। शत्रुकी ऐसी सेनाको आक्रमण करती देख जगदम्बाने अपने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी। साथ ही शत्रुओंको हतोत्साह करनेवाले घंटेको भी बजाया। यह देख सिंह भी अपनी गर्दन और मस्तकके केशोंको कँपाता हुआ जोर-जोरसे गर्जना करने लगा।

उस समय हिमालय पर्वतपर खड़ी हुई रमणीय आभूषणों और अस्त्रोंसे सुशोभित शिवा देवीकी ओर देखकर निशुम्भ विलासिनी रमणियोंके मनोभावको समझानेमें निपुण पुरुषकी भाँति सरस वाणीमें बोला—'महेश्वरि! तुम-जैसी सुन्दरियोंके रमणीय शरीरपर मालतीके फूलका एक दल भी डाल दिया जाय तो वह व्यथा उत्पन्न कर देता है। ऐसे मनोहर शरीरसे तुम विकराल युद्धका विस्तार कैसे कर रही हो?' यह बात कहकर वह महान् असुर चुप हो गया। तब चण्डिका देवीने कहा—'मूढ़ असुर! व्यर्थकी बातें क्यों बकता है? युद्ध कर, अन्यथा पातालको चला जा।' यह सुनकर वह महारथी वीर अत्यन्त रुष्ट हो समरभूमिमें बाणोंकी अद्भुत वृष्टि करने लगा, मानो बादल जलकी धारा बरसा रहे हों। उस समय उस रणक्षेत्रमें वर्षा-ऋतुका आगमन हुआ-सा जान पड़ता था। मदसे उद्धत हुआ वह असुर तीखे बाण, शूल, फरसे, भिन्दिपाल, परिघ, धनुष, भुशुण्डि, प्रास, क्षुरप्र तथा बड़ी-बड़ी तलवारोंसे युद्ध करने लगा। काले पर्वतोंके समान बड़े-बड़े गजराज कुम्भस्थल विदीर्ण हो जानेके कारण समराङ्गणमें चक्कर काटने लगे। उनकी पीठपर फहराती हुई शुम्भ-निशुम्भकी पताकाएँ, जो उड़ती हुई

बलाकाओं (बगुलों)की पंक्तियोंके समान श्वेत दिखायी देती थीं, अपने स्थानसे खण्डित होकर नीचे गिरने लगीं। क्षत-विक्षत शरीरवाले दैत्य पृथ्वीपर गिरकर मछलियोंके समान तड़प रहे थे। गर्दन कट जानेके कारण घोड़ोंके समूह बड़े भयंकर दिखायी देते थे। कालिकाने कितने ही दैत्योंको मौतके घाट उतार दिया तथा देवीके वाहन सिंहने अन्य बहुत-से असुरोंको अपना आहार बना लिया। उस समय दैत्योंके मारे जानेसे उस रणभूमिमें रक्तकी धारा बहानेवाली कितनी ही नदियाँ बह चलीं। सैनिकोंके केश पानीमें सेवारकी भाँति दिखायी देते थे और उनकी चादरें सफेद फेनका भ्रम उत्पन्न करती थीं।

इस तरह घोर युद्ध होने तथा राक्षसोंका महान् संहार हो जानेके पश्चात् देवी अम्बिकाने विषमें बुझे हुए तीखे बाणोंद्वारा निशुम्भको मारकर धराशायी कर दिया। अपने असीम शक्तिशाली छोटे भाईके मारे जानेपर शुम्भ रोषसे भर गया और रथपर बैठकर आठ भुजाओंसे युक्त हो महेश्वर-प्रिया अम्बिकाके पास गया। उसने जोर-जोरसे शङ्ख बजाया और शत्रुओंका दमन करनेवाले धनुषकी दुस्सह टंकारध्वनि की तथा देवीका सिंह भी अपने अयालोंको हिलाता हुआ दहाड़ने लगा। इन तीन प्रकारकी ध्वनियोंसे आकाशमण्डल गूँज उठा।

तदनन्तर जगदम्बाने अट्टहास किया, जिससे समस्त असुर संत्रस्त हो उठे। जब देवीने शुम्भसे कहा कि 'तुम युद्धमें स्थिरतापूर्वक खड़े रहो' तब देवता बोल उठे— 'जय हो, जय हो जगदम्बाकी।' इस समय दैत्यराज शुम्भने बड़ी भारी शक्ति छोड़ी, जिसकी शिखासे आगकी ज्वाला निकल रही थी। परंतु देवीने एक उल्काके द्वारा उसे मार गिराया। शुम्भके चलाये हुए बाणोंके देवीने और देवीके चलाये हुए बाणोंके शुम्भने सहस्रों टुकड़े कर दिये। तत्पश्चात् चण्डिकाने त्रिशूल उठाकर उस महान् असुरपर आघात किया। त्रिशूलकी चोटसे मूर्छित हो वह इन्द्रके द्वारा पंख काट दिये जानेपर गिरनेवाले पर्वतकी भाँति आकाश, पृथ्वी तथा समुद्रको कम्पित करता हुआ धरतीपर गिर पड़ा। तदनन्तर शूलके आघातसे होनेवाली व्यथाको सहकर उस महाबली असुरने दस हजार बाँहें धारण कर लीं और देवताओंका भी नाश करनेमें समर्थ चक्रोंद्वारा सिंहसहित महेश्वरी शिवापर आघात करना आरम्भ किया। उसके चलाये हुए चक्रोंको खेल-खेलमें ही विदीर्ण करके देवीने त्रिशूल उठाया और उस असुरपर घातक प्रहार किया। शिवाके लोकपावन पाणिपङ्कजसे मृत्युको प्राप्त होकर वे दोनों असुर परम पदके भागी हुए।

उस महापराक्रमी निशुम्भ और भयानक बलशाली शुम्भके मारे जानेपर समस्त दैत्य पातालमें घुस गये, अन्य बहुत-से असुरोंको काली और सिंह आदिने खा लिया तथा शेष दैत्य भयसे व्याकुल हो दसों दिशाओंमें भाग गये। नदियोंका जल स्वच्छ हो गया। वे ठीक मार्गसे बहने लगीं। मन्द-मन्द वायु बहने लगी, जिसका स्पर्श सुखद प्रतीत होता था; आकाश निर्मल हो गया। देवताओं और ब्रह्मर्षियोंने फिर यज्ञयागादि आरम्भ कर दिये। इन्द्र आदि सब देवता सुखी हो गये। प्रभो! दैत्यराजके

वध-प्रसङ्गसे युक्त इस परम पवित्र उमाचरित्रका जो श्रद्धापूर्वक बारंबार श्रवण या पाठ करता है, वह इस लोकमें देवदुर्लभ भोगोंका उपभोग करके परलोकमें महामायाके प्रसादसे उमाधामको जाता है।

राजन्! इस प्रकार शुम्भासुरका संहार करनेवाली देवी सरस्वतीके चरित्रका वर्णन किया गया, जो साक्षात् उमाके अंशसे प्रकट हुई थीं।

(अध्याय ४८)

☆

देवताओंका गर्व दूर करनेके लिये तेजःपुञ्जरूपिणी उमाका प्रादुर्भाव

मुनियोंने कहा—सम्पूर्ण पदार्थोंके पूर्ण ज्ञाता सूतजी! भुवनेश्वरी उमाके, जिनसे सरस्वती प्रकट हुई थीं, अवतारका पुनः वर्णन कीजिये। वे देवी परब्रह्म, मूलप्रकृति, ईश्वरी, निराकार होती हुई भी साकार तथा नित्यानन्दमयी सती कही जाती हैं।

सूतजीने कहा—तपस्वी मुनियो! आपलोग देवीके उत्तम एवं महान् चरित्रको प्रेमपूर्वक सुनें, जिसके जाननेमात्रसे मनुष्य परम गतिको प्राप्त होता है। एक समय देवताओं और दानवोंमें परस्पर युद्ध हुआ। उसमें महामायाके प्रभावसे देवताओंकी जीत हो गयी। इससे देवताओंको अपनी शूरवीरतापर बड़ा गर्व हुआ। वे आत्मप्रशंसा करते हुए इस बातका प्रचार करने लगे कि 'हमलोग धन्य हैं, धन्यवादके योग्य हैं। असुर हमारा क्या कर लेंगे। वे हमलोगोंका अत्यन्त दुस्सह प्रभाव देखकर भयभीत हो 'भाग चलो! भाग चलो!' कहते हुए पाताललोकमें घुस गये। हमारा बल अद्भुत है! हममें आश्चर्यजनक तेज है। हमारा बल और तेज दैत्यकुलका विनाश करनेमें समर्थ है! अहो! देवताओंका कैसा सौभाग्य है।' इस प्रकार वे जहाँ-तहाँ डींग हाँकने लगे।

तदनन्तर उसी समय उनके समक्ष तेजका एक महान् पुञ्ज प्रकट हुआ, जो पहले कभी देखनेमें नहीं आया था। उसे देखकर सब देवता विस्मयसे भर गये। वे रुँधे हुए गलेसे परस्पर पूछने लगे—'यह क्या है? यह क्या है?' उन्हें यह पता नहीं था कि यह श्यामा (भगवती उमा) का उत्कृष्ट प्रभाव है, जो देवताओंका अभिमान चूर्ण करनेवाला है।

उस समय देवराज इन्द्रने देवताओंको आज्ञा दी—'तुमलोग जाओ और यथार्थरूपसे परीक्षा करो कि यह कौन है।' देवेन्द्रके भेजनेसे वायुदेव उस तेजःपुञ्जके निकट गये। तब उस तेजोराशिने उन्हें सम्बोधित करके पूछा—'अजी! तुम कौन हो?' उस महान् तेजके इस प्रकार पूछनेपर वायुदेवता अभिमानपूर्वक बोले—'मैं वायु हूँ, सम्पूर्ण जगत्का प्राण हूँ; मुझ सर्वाधार परमेश्वरमें ही यह स्थावर-जंगमरूप सारा जगत् ओतप्रोत है। मैं ही समस्त विश्वका संचालन करता हूँ।' तब उस महातेजने कहा—'वायो! यदि तुम जगत्के संचालनमें समर्थ हो तो यह तृण रखा हुआ है। इसे अपनी इच्छाके अनुसार चलाओ तो सही।' तब वायुदेवताने सभी उपाय करके अपनी सारी शक्ति लगा दी। परंतु वह

तिनका अपने स्थानसे तिलभर भी न हटा। इससे वायुदेव लज्जित हो गये। वे चुप हो इन्द्रकी सभामें लौट गये और अपनी पराजयके साथ वहाँका सारा वृत्तान्त उन्होंने सुनाया। वे बोले—'देवेन्द्र ! हम सब लोग झूठे ही अपनेमें सर्वेश्वर होनेका अभिमान रखते हैं; क्योंकि किसी छोटी-सी वस्तुका भी हम कुछ नहीं कर सकते।' तब इन्द्रने बारी-बारीसे समस्त देवताओंको भेजा। जब वे उसे जाननेमें समर्थ न हो सके, तब इन्द्र स्वयं गये। इन्द्रको आते देख वह अत्यन्त दुसह तेज तत्काल अदृश्य हो गया। इससे इन्द्र बड़े विस्मित हुए और मन-ही-मन बोले—'जिसका ऐसा चरित्र है, उसी सर्वेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ।' सहस्र-नेत्रधारी इन्द्र बारंबार इसी भावका चिन्तन करने लगे। इसी समय निश्छल करुणामय शरीर धारण करनेवाली सच्चिदानन्द-स्वरूपिणी शिवप्रिया उमा उन देवताओंपर दया करने और उनका गर्व हरनेके लिये चैत्रशुक्ला नवमीको दोपहरमें वहाँ प्रकट हुईं। वे उस तेजःपुञ्जके बीचमें विराज रही थीं, अपनी कान्तिसे दसों दिशाओंको प्रकाशित कर रही थीं और समस्त देवताओंको सुस्पष्टरूपसे यह जता रही थीं कि 'मैं साक्षात् परब्रह्म परमात्मा ही हूँ।' वे चार हाथोंमें क्रमशः वर, पाश, अङ्कुश और अभय धारण किये थीं। श्रुतियाँ साकार होकर उनकी सेवा करती थीं। वे बड़ी रमणीय दीखती थीं तथा अपने नूतन यौवनपर उन्हें गर्व था। वे लाल रंगकी साड़ी पहने हुए थीं। लाल फूलोंकी माला तथा लाल चन्दनसे उनका शृङ्गार किया गया था। वे कोटि-कोटि कन्दर्पोंके समान मनोहारिणी तथा करोड़ों चन्द्रमाओंके समान चटकीली चाँदनीसे सुशोभित थीं। सबकी अन्तर्यामिणी, समस्त भूतोंकी साक्षिणी तथा परब्रह्मस्वरूपिणी उन महामायाने इस प्रकार कहा।

उमा बोलीं—मैं ही परब्रह्म, परम ज्योति, प्रणवरूपिणी तथा युगलरूपधारिणी

हूँ। मैं ही सब कुछ हूँ। मुझसे भिन्न कोई पदार्थ नहीं है। मैं निराकार होकर भी साकार हूँ, सर्वतत्त्वस्वरूपिणी हूँ। मेरे गुण अनवर्च्य हैं। मैं नित्यस्वरूपा तथा कार्यकारणरूपिणी हूँ। मैं ही कभी प्राणवल्लभाका आकार धारण करती हूँ और कभी प्राणवल्लभ पुरुषका। कभी स्त्री और पुरुष दोनों रूपोंमें एक साथ प्रकट होती हूँ (यही मेरा अर्धनारीश्वररूप है)। मैं सर्वरूपिणी ईश्वरी हूँ। मैं ही सृष्टिकर्ता ब्रह्मा हूँ। मैं ही जगत्पालक विष्णु हूँ तथा मैं ही संहारकर्ता रुद्र हूँ। सम्पूर्ण विश्वको मोहमें डालनेवाली महामाया मैं ही हूँ। काली,

लक्ष्मी और सरस्वती आदि सम्पूर्ण शक्तियाँ तथा ये सकल कलाएँ मेरे अंशसे ही प्रकट हुई हैं। मेरे ही प्रभावसे तुमलोगोंने सम्पूर्ण दैत्योंपर विजय पायी है। मुझ सर्वविजयिनी-को न जानकर तुमलोग व्यर्थ ही अपनेको सर्वेश्वर मान रहे हो। जैसे इन्द्रजाल करनेवाला सूत्रधार कठपुतलीको नचाता है, उसी प्रकार मैं ईश्वरी ही समस्त प्राणियोंको नचाती हूँ। मेरे भयसे हवा चलती है, मेरे भयसे ही अग्निदेव सबको जलाते हैं तथा मेरा भय मानकर ही लोकपालगण निरन्तर अपने-अपने कर्मोंमें लगे रहते हैं। मैं सर्वथा स्वतन्त्र हूँ और अपनी लीलासे ही कभी देव-समुदायको विजयी बनाती हूँ तथा कभी दैत्योंको। मायासे परे जिस अविनाशी परात्पर धामका श्रुतियाँ वर्णन करती हैं, वह मेरा ही रूप है। सगुण और निर्गुण—ये मेरे दो प्रकारके रूप माने गये हैं। इनमेंसे प्रथम तो मायायुक्त है और दूसरा मायारहित। देवताओ ! ऐसा जानकर गर्व छोड़ो और मुझ सनातनी प्रकृतिकी प्रेमपूर्वक आराधना करो। *

देवीका यह करुणायुक्त वचन सुन देवता भक्तिभावसे मस्तक झुकाकर उन परमेश्वरीकी स्तुति करने लगे—'जगदीश्वरि ! क्षमा करो। परमेश्वरि ! प्रसन्न होओ। मातः ! ऐसी कृपा करो, जिससे फिर कभी हमें गर्व न हो।'

तबसे सब देवता गर्व छोड़ एकाग्रचित्त हो पूर्ववत् विधिपूर्वक उमादेवीकी आराधना करने लगे। ब्राह्मणो ! इस प्रकार मैंने तुमसे उमाके प्रादुर्भावका वर्णन किया है, जिसके श्रवणमात्रसे परमपदकी प्राप्ति होती है।

(अध्याय ४९)

☆

* उमोवाच—परं ब्रह्म परं ज्योतिः प्रणवद्वन्द्वरूपिणी। अहमेवास्मि सकलं मदन्यो नास्ति कश्चन॥
निराकारापि साकारा सर्वतत्त्वस्वरूपिणी। अप्रतर्क्यगुणा नित्या कार्यकारणरूपिणी॥
कदाचिद्दयिताकारा कदाचित्पुरुषाकृतिः। कदाचिदुभयाकारा सर्वाकाराहमीश्वरी॥
विरिञ्चिः सृष्टिकर्ताहं जगत्पाताहमच्युतः। रुद्रः संहारकर्ताहं सर्वविश्वविमोहिनी॥
कालिकाकमलावाणीमुखाः सर्वा हि शक्तयः। मदंशादेव संजातास्तथेमाः सकलाः कलाः॥
मत्प्रभावाज्जिताः सर्वे युष्माभिर्दितिनन्दनाः। तामविज्ञाय मां यूयं वृथा सर्वेशमानिनः॥
यथा दारुमयीं योषां नर्तयत्यैन्द्रजालिकः। तथैव सर्वभूतानि नर्तयाम्यहमीश्वरी॥
मद्भयाद् वाति पवनः सर्वं दहति हव्यभुक्। लोकपालाः प्रकुर्वन्ति स्वस्वकर्माण्यनारतम्॥
कदाचिद्देववर्गाणां कदाचिद्दितिजन्मनाम्। करोमि विजयं सम्यक् स्वतन्त्रा निजलीलया॥
अविनाशिपरं धाम मायातीतं परात्परम्। श्रुतयो वर्णयन्ते यत्तद्रूपं तु ममैव हि॥
सगुणं निर्गुणं चेति मद्रूपं द्विविधं मतम्। मायाशबलितं चैकं द्वितीयं तदनाश्रितम्॥
एवं विज्ञाय मां देवाः स्वं स्वं गर्वं विहाय च। भजत प्रणयोपेताः प्रकृतिं मां सनातनीम्॥
(शि॰ पु॰ उ॰ सं॰ ४९। २७—३८)

देवीके द्वारा दुर्गमासुरका वध तथा उनके दुर्गा, शताक्षी, शाकम्भरी और भ्रामरी आदि नाम पड़नेका कारण

मुनियोंने कहा—महाप्राज्ञ सूतजी ! हम सब लोग प्रतिदिन दुर्गाजीका चरित्र सुनना चाहते हैं। अतः आप और किसी अद्भुत लीलातत्त्वका हमारे समक्ष वर्णन कीजिये। सर्वज्ञशिरोमणे सूत ! आपके मुखारविन्दसे नाना प्रकारकी सुधासदृश मधुर कथाएँ सुनते-सुनते हमारा मन कभी तृप्त नहीं होता।

सूतजी बोले—मुनियो ! दुर्गम नामसे विख्यात एक असुर था, जो रुरुका महाबलवान् पुत्र था। उसने ब्रह्माजीके वरदानसे चारों वेदोंको अपने हाथमें कर लिया था तथा देवताओंके लिये अजेय बल पाकर उसने भूतलपर बहुत-से ऐसे उत्पात किये, जिन्हें सुनकर देवलोकमें देवता भी कम्पित हो उठे। वेदोंके अदृश्य हो जानेपर सारी वैदिक क्रिया नष्ट हो चली। उस समय ब्राह्मण और देवता भी दुराचारी हो गये। न कहीं दान होता था, न अत्यन्त उग्र तप किया जाता था; न यज्ञ होता था और न होम ही किया जाता था। इसका परिणाम यह हुआ कि पृथ्वीपर सौ वर्षोंतकके लिये वर्षा बंद हो गयी। तीनों लोकोंमें हाहाकार मच गया। सब लोग दुःखी हो गये। सबको भूख-प्यासका महान् कष्ट सताने लगा। कुआ, बावड़ी, सरोवर, सरिताएँ और समुद्र भी जलसे रहित हो गये। समस्त वृक्ष और लताएँ भी सूख गयीं। इससे समस्त प्रजाओंके चित्तमें बड़ी दीनता आ गयी। उनके महान् दुःखको देखकर सब देवता महेश्वरी योगमायाकी शरणमें गये।

देवताओंने कहा—महामाये ! अपनी सारी प्रजाकी रक्षा करो, रक्षा करो। अपने क्रोधको रोको, अन्यथा सब लोग निश्चय ही नष्ट हो जायँगे। कृपासिन्धो ! दीनबन्धो ! जैसे शुम्भ नामक दैत्य, महाबली निशुम्भ, धूम्राक्ष, चण्ड, मुण्ड, महान् शक्तिशाली रक्तबीज, मधु, कैटभ तथा महिषासुरका तुमने वध किया था, उसी प्रकार इस दुर्गमासुरका शीघ्र ही संहार करो। बालकोंसे पग-पगपर अपराध बनता ही रहता है। केवल माताके सिवा संसारमें दूसरा कौन है, जो उस अपराधको सहन करता हो। देवताओं और ब्राह्मणोंपर जब-जब दुःख आता है, तब-तब शीघ्र ही अवतार लेकर तुम सब लोगोंको सुखी बनाती हो।

देवताओंकी यह व्याकुल प्रार्थना

सुनकर कृपामयी देवीने उस समय अपने अनन्त नेत्रोंसे युक्त रूपका दर्शन कराया। उनका मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिला हुआ था और वे अपने चारों हाथोंमें क्रमशः धनुष, बाण, कमल तथा नाना प्रकारके फल-मूल लिये हुए थीं। उस समय प्रजाजनोंको कष्ट उठाते देख उनके सभी नेत्रोंमें करुणाके आँसू छलक आये। वे व्याकुल होकर लगातार नौ दिन और नौ रात रोती रहीं। उन्होंने अपने नेत्रोंसे अश्रुजलकी सहस्रों धाराएँ प्रवाहित कीं। उन धाराओंसे सब लोग तृप्त हो गये और समस्त ओषधियाँ भी सिंच गयीं। सरिताओं और समुद्रोंमें अगाध जल भर गया। पृथ्वीपर साग और फल-मूलके अङ्कुर उत्पन्न होने लगे। देवी शुद्ध हृदयवाले महात्मा पुरुषोंको अपने हाथमें रखे हुए फल बाँटने लगीं। उन्होंने गौओंके लिये सुन्दर घास और दूसरे प्राणियोंके लिये यथायोग्य भोजन प्रस्तुत किये। देवता, ब्राह्मण और मनुष्योंसहित सम्पूर्ण प्राणी संतुष्ट हो गये। तब देवीने देवताओंसे पूछा—'तुम्हारा और कौन-सा कार्य सिद्ध करूँ?' उस समय सब देवता एकत्र होकर बोले—'देवि! आपने सब लोगोंको संतुष्ट कर दिया। अब कृपा करके दुर्गमासुरके द्वारा अपहृत हुए वेद लाकर हमें दीजिये।' तब देवीने 'तथास्तु' कहकर कहा—'देवताओ! अपने घरको जाओ, जाओ। मैं शीघ्र ही सम्पूर्ण वेद लाकर तुम्हें अर्पित करूँगी।'

यह सुनकर सब देवता बड़े प्रसन्न हुए। वे प्रफुल्ल नीलकमलके समान नेत्रोंवाली जगद्योनि जगदम्बाको भलीभाँति प्रणाम करके अपने-अपने धामको चले गये। फिर तो स्वर्ग, अन्तरिक्ष और पृथ्वीपर बड़ा भारी कोलाहल मच गया, उसे सुनकर उस भयानक दैत्यने चारों ओरसे देवपुरीको घेर लिया। तब शिवा देवताओंकी रक्षाके लिये चारों ओरसे तेजोमय मण्डलका निर्माण करके स्वयं उस घेरेसे बाहर आ गयीं। फिर तो देवी और दैत्य दोनोंमें घोर युद्ध आरम्भ हो गया। समराङ्गणमें दोनों ओरसे कवचको छिन्न-भिन्न कर देनेवाले तीखे बाणोंकी वर्षा होने लगी। इसी बीचमें देवीके शरीरसे सुन्दर रूपवाली काली, तारा, छिन्नमस्ता, श्रीविद्या, भुवनेश्वरी, भैरवी, बगला, धूम्रा, श्रीमती त्रिपुरसुन्दरी और मातङ्गी—ये दस महाविद्याएँ अस्त्र-शस्त्र लिये निकलीं। तत्पश्चात् दिव्य मूर्तिवाली असंख्य मातृकाएँ प्रकट हुईं। उन सबने अपने मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट धारण कर रखा था और वे सब-की-सब विद्युत्के समान दीप्तिमती दिखायी देती थीं। इसके बाद उन मातृगणोंके साथ दैत्योंका भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ। उन सबने मिलकर उस रौरव अथवा दुर्गम दैत्यकी सौ अक्षौहिणी सेनाएँ नष्ट कर दीं। इसके बाद देवीने त्रिशूलकी धारसे उस दुर्गम दैत्यको मार डाला। वह दैत्य जड़से खोदे गये वृक्षकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा। इस प्रकार ईश्वरीने उस समय दुर्गमासुर नामक दैत्यको मारकर चारों वेद वापस ले देवताओंको दे दिये।

तब देवता बोले—अम्बिके! आपने हमलोगोंके लिये असंख्य नेत्रोंसे युक्त रूप धारण कर लिया था, इसलिये मुनिजन आपको 'शताक्षी' कहेंगे। अपने शरीरसे उत्पन्न हुए शाकोंद्वारा आपने समस्त लोकोंका भरण-पोषण किया है, इसलिये

'शाकम्भरी'के नामसे आपकी ख्याति होगी। शिवे! आपने दुर्गम नामक महादैत्यका वध किया है, इसलिये लोग आप कल्याणमयी भगवतीको 'दुर्गा' कहेंगे। योगनिद्रे! आपको नमस्कार है। महाबले! आपको नमस्कार है। ज्ञान-दायिनि! आपको नमस्कार है। आप जगन्माताको बारंबार नमस्कार है। तत्त्वमसि आदि महावाक्योंद्वारा जिन परमेश्वरीका ज्ञान होता है, उन अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंका संचालन करनेवाली भगवती दुर्गाको बारंबार नमस्कार है। मातः! आपतक मन, वाणी और शरीरकी पहुँच होनी कठिन है। सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि—ये तीनों आपके नेत्र हैं। हम आपके प्रभावको नहीं जानते, इसलिये आपकी स्तुति करनेमें असमर्थ हैं। सुरेश्वरी माता शताक्षीको छोड़कर दूसरा कौन है, जो हम-जैसे अमरोंपर दृष्टिपात करके ऐसी दया करे। देवि! आपको सदा ऐसा ही यत्न करना चाहिये, जिससे तीनों लोक निरन्तर विघ्न-बाधाओंसे तिरस्कृत न हों। आप हमारे शत्रुओंका नाश करती रहें।

देवीने कहा—देवताओ! जैसे बछड़ोंको देखकर गौएँ व्यग्र हो उतावलीके साथ उनकी ओर दौड़ती हैं, उसी तरह मैं तुम सबको देखकर व्याकुल हो दौड़ी आती हूँ। तुम्हें न देखनेसे मेरा एक क्षण भी युगके समान बीतता है। मैं तुम्हें अपने बच्चोंके समान समझती हूँ और तुम्हारे लिये अपने प्राण भी दे सकती हूँ। तुमलोग मेरे प्रति भक्तिभावसे सुशोभित हो, अतः तुम्हें कोई भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। मैं तुम्हारी सारी आपत्तियोंका निवारण करनेके लिये सदैव उद्यत हूँ। जैसे पूर्वकालमें तुम्हारी रक्षाके लिये मैंने दैत्योंको मारा है, उसी प्रकार आगे भी असुरोंका संहार करूँगी—इसमें तुम्हें संशय नहीं करना चाहिये। यह मैं सत्य-सत्य कहती हूँ। भविष्यमें जब पुनः शुम्भ और निशुम्भ नामके दूसरे दैत्य होंगे, उस समय मैं यशोमयी देवी नन्दपत्नी यशोदाके गर्भसे योनिजरूप धारण करके गोकुलमें उत्पन्न होऊँगी और यथासमय उन असुरोंका वध करूँगी। नन्दकी पुत्री होनेके कारण उस समय मुझे लोग 'नन्दजा' कहेंगे। जब मैं भ्रमरका रूप धारण करके अरुण नामक असुरका वध करूँगी, तब संसारके मनुष्य मुझे 'भ्रामरी' कहेंगे। फिर मैं भीम (भयंकर) रूप धारण करके राक्षसोंको खाने लगूँगी, उस समय मेरा 'भीमादेवी' नाम प्रसिद्ध होगा। जब-जब पृथ्वीपर असुरोंकी ओरसे बाधा उत्पन्न होगी, तब-तब मैं अवतार लेकर प्रजाजनोंका कल्याण करूँगी—इसमें संशय नहीं है। जो देवी शताक्षी कही गयी हैं, वे ही शाकम्भरी मानी गयी हैं तथा उन्हींको दुर्गा कहा गया है। तीनों नामोंद्वारा एक ही व्यक्तिका प्रतिपादन होता है। इस पृथ्वीपर महेश्वरी शताक्षीके समान दूसरा कोई दयालु देवता नहीं है; क्योंकि वे देवी समस्त प्रजाओंको संतप्त देख नौ दिनों-तक रोती रह गयी थीं। (अध्याय ५०)

☆

देवीके क्रियायोगका वर्णन—देवीकी मूर्ति एवं मन्दिरके निर्माण, स्थापन और पूजनका महत्त्व, परा अम्बाकी श्रेष्ठता, विभिन्न मासों और तिथियोंमें देवीके व्रत, उत्सव और पूजन आदिके फल तथा इस संहिताके श्रवण एवं पाठकी महिमा

व्यासजी बोले—महामते, ब्रह्मपुत्र, सर्वज्ञ सनत्कुमार ! मैं उमाके परम अद्भुत क्रियायोगका वर्णन सुनना चाहता हूँ। उस क्रियायोगका लक्षण क्या है ? उसका अनुष्ठान करनेपर किस फलकी प्राप्ति होती है तथा जो परा अम्बा उमाको अधिक प्रिय है, वह क्रियायोग क्या है ? ये सब बातें मुझे बताइये।

सनत्कुमारजीने कहा—महाबुद्धिमान् द्वैपायन ! तुम जिस रहस्यकी बात पूछ रहे हो, वह सब मैं बताता हूँ; ध्यान देकर सुनो। ज्ञानयोग, क्रियायोग, भक्तियोग—ये श्रीमाताकी उपासनाके तीन मार्ग कहे गये हैं, जो भोग और मोक्ष देनेवाले हैं। चित्तका जो आत्माके साथ संयोग होता है, उसका नाम 'ज्ञानयोग' है; उसका बाह्य वस्तुओंके साथ जो संयोग होता है, उसे 'क्रियायोग' कहते हैं। देवीके साथ आत्माकी एकताकी भावनाको भक्तियोग माना गया है। तीनों योगोंमें जो क्रियायोग है, उसका प्रतिपादन किया जाता है। कर्मसे भक्ति उत्पन्न होती है, भक्तिसे ज्ञान होता है और ज्ञानसे मुक्ति होती है—ऐसा शास्त्रोंमें निश्चय किया गया है। मुनिश्रेष्ठ ! मोक्षका प्रधान कारण योग है, परंतु योगके ध्येयका उत्तम साधन क्रियायोग है। प्रकृतिको माया जाने और सनातन ब्रह्मको मायावी अथवा मायाका स्वामी समझे। उन दोनोंके स्वरूपको एक-दूसरेसे अभिन्न जानकर मनुष्य संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है।*

कालीनन्दन ! जो मनुष्य देवीके लिये पत्थर, लकड़ी अथवा मिट्टीका मन्दिर बनाता है, उसके पुण्यफलका वर्णन सुनो। प्रतिदिन योगके द्वारा आराधना करनेवालेको जिस महान् फलकी प्राप्ति होती है, वह सारा फल उस पुरुषको मिल जाता है, जो देवीके लिये मन्दिर बनवाता है। श्रीमाताका मन्दिर बनवानेवाला धर्मात्मा पुरुष अपनी पहले बीती हुई तथा आगे आनेवाली हजार-हजार पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। करोड़ों जन्मोंमें किये हुए थोड़े या बहुत जो पाप शेष रहते हैं, वे श्रीमाताके मन्दिरका निर्माण आरम्भ करते ही क्षणभरमें नष्ट हो जाते हैं। जैसे नदियोंमें गङ्गा, सम्पूर्ण नदोंमें शोणभद्र, क्षमामें पृथ्वी, गहराईमें समुद्र और समस्त ग्रहोंमें सूर्यदेवका विशिष्ट स्थान है, उसी प्रकार समस्त देवताओंमें श्रीपरा अम्बा श्रेष्ठ मानी गयी हैं। वे समस्त देवताओंमें मुख्य हैं। जो उनके लिये मन्दिर बनवाता है, वह जन्म-जन्ममें प्रतिष्ठा पाता है। काशी, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, पुष्कर, गङ्गासागर-तट, नैमिषारण्य, अमरकण्टक-

---

* मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं ब्रह्म शाश्वतम्। अभिन्नं तद्वपुर्ज्ञात्वा मुच्यते भवबन्धनात्॥

(शि० पु० उ० सं० ५१। १२)

पर्वत, परम पुण्यमय श्रीपर्वत, ज्ञानपर्वत, गोकर्ण, मथुरा, अयोध्या और द्वारका इत्यादि पुण्य प्रदेशोंमें अथवा जिस किसी भी स्थानमें माताका मन्दिर बनवानेवाला मनुष्य संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है। मन्दिरमें ईंटोंका जोड़ जबतक या जितने वर्ष रहता है, उतने हजार वर्षोंतक वह पुरुष मणिद्वीपमें प्रतिष्ठित होता है। जो समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न उमाकी प्रतिमा बनवाता है, वह निर्भय होकर अवश्य उनके परम धाममें जाता है। शुभ ऋतु, शुभ ग्रह और शुभ नक्षत्रमें देवीकी मूर्तिकी स्थापना करके योगमायाके प्रसादसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। कल्पके आरम्भसे लेकर अन्ततक कुलमें जितनी पीढ़ियाँ बीत गयी हैं और जितनी आनेवाली हैं, उन सबको मनुष्य सुन्दर देवीमूर्तिकी स्थापना करके तार देता है।

जो केवल जगद्योनि परा अम्बाकी शरण लेते हैं, उन्हें मनुष्य नहीं मानना चाहिये। वे साक्षात् देवीके गण हैं। जो चलते-फिरते, सोते-जागते अथवा खड़े होते समय 'उमा' इस दो अक्षरके नामका उच्चारण करते हैं, वे शिवाके ही गण हैं। जो नित्य-नैमित्तिक कर्ममें पुष्प, धूप और दीपोंद्वारा देवी परा शिवाका पूजन करते हैं, वे शिवाके धाममें जाते हैं। जो प्रतिदिन गोबर या मिट्टीसे देवीके मन्दिरको लीपते हैं अथवा उसमें झाड़ू देते हैं, वे भी उमाके धाममें जाते हैं। जिन्होंने देवीके परम उत्तम एवं रमणीय मन्दिरका निर्माण कराया है, उनके कुलके लोगोंको माता उमा सदा आशीर्वाद देती हैं। वे कहती हैं, 'ये लोग मेरे हैं। अतः मुझमें प्रेमके भागी बने रहकर सौ वर्षोंतक जीयें और इनपर कभी कोई आपत्ति न आये।' इस प्रकार श्रीमाता रात-दिन आशीर्वाद देती हैं। जिसने महादेवी उमाकी शुभ मूर्तिका निर्माण कराया है, उसके कुलके दस हजार पीढ़ियोंतकके लोग मणिद्वीपमें सम्मानपूर्वक रहते हैं। महामायाकी मूर्तिको स्थापित करके उसकी भलीभाँति पूजा करनेके पश्चात् साधक जिस-जिस मनोरथके लिये प्रार्थना करता है, उस-उसको अवश्य प्राप्त कर लेता है।

जो श्रीमाताकी स्थापित की हुई उत्तम मूर्तिको मधुमिश्रित घीसे नहलाता है, उसके पुण्यफलकी गणना कौन कर सकता है? चन्दन, अगुरु, कपूर, जटामांसी तथा नागरमोथा आदिसे युक्त जल तथा एक रंगकी गौओंके दूधसे परमेश्वरीको नहलाये। तत्पश्चात् अष्टादशाङ्गधूपके द्वारा अग्निमें उत्तम आहुति दे तथा घृत और कर्पूरसहित बत्तियोंद्वारा देवीकी आरती उतारे। कृष्ण पक्षकी अष्टमी, नवमी, अमावास्यामें अथवा शुक्लपक्षकी पञ्चमी और दशमी तिथियोंमें गन्ध, पुष्प आदि उपचारोंद्वारा जगदम्बाकी विशेष पूजा करनी चाहिये। रात्रिसूक्त, श्रीसूक्त अथवा देवीसूक्तको पढ़ते या मूलमन्त्रका जप करते हुए देवीकी आराधना करनी चाहिये। विष्णुकान्ता और तुलसीको छोड़कर शेष सभी पुष्प देवीके लिये प्रीतिकारक जानने चाहिये। कमलका पुष्प उनके लिये विशेष प्रीतिकारक होता है। जो देवीको सोने-चाँदीके फूल चढ़ाता है, वह करोड़ों सिद्धोंसे युक्त उनके परम धाममें जाता है। देवीके उपासकोंको पूजनके अन्तमें सदा अपने अपराधोंके लिये क्षमा-प्रार्थना करनी चाहिये। 'जगत्‌को आनन्द

प्रदान करनेवाली परमेश्वरि ! प्रसन्न होओ।' इत्यादि वाक्योंद्वारा स्तुति एवं मन्त्रपाठ करता हुआ देवीके भजनमें लगा रहनेवाला उपासक उनका इस प्रकार ध्यान करे। देवी सिंहपर सवार हैं। उनके हाथोंमें अभय एवं वरकी मुद्राएँ हैं तथा वे भक्तोंको अभीष्ट फल प्रदान करनेवाली हैं। इस प्रकार महेश्वरीका ध्यान करके उन्हें नैवेद्यके रूपमें नाना प्रकारके पके हुए फल अर्पित करे। जो परात्मा शम्भुशक्तिका नैवेद्य भक्षण करता है; वह मनुष्य अपने सारे पापपङ्कको धोकर निर्मल हो जाता है। जो चैत्र शुक्ला तृतीयाको भवानीकी प्रसन्नताके लिये व्रत करता है, वह जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो परमपदको प्राप्त होता है। विद्वान् पुरुष इसी तृतीयाको दोलोत्सव करे। उसमें शंकर-सहित जगदम्बा उमाकी पूजा करे। फूल, कुङ्कुम, वस्त्र, कपूर, अगुरु, चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्पहार तथा अन्य गन्ध-द्रव्योंद्वारा शिवसहित सर्वकल्याणकारिणी महामाया महेश्वरी श्रीगौरी देवीका पूजन करके उन्हें झूलेमें झुलाये। जो प्रतिवर्ष नियमपूर्वक उक्त तिथिको देवीका व्रत और दोलोत्सव करता है, उसे शिवा देवी सम्पूर्ण अभीष्ट पदार्थ देती हैं।

वैशाख मासके शुक्ल पक्षमें जो अक्षय तृतीया तिथि आती है, उसमें आलस्यरहित हो जो जगदम्बाका व्रत करता है तथा बेला, मालती, चम्पा, जपा (अड़उल), बन्धूक (दुपहरिया) और कमलके फूलोंसे शंकरसहित गौरीदेवीकी पूजा करता है, वह करोड़ों जन्मोंमें किये गये मानसिक, वाचिक और शारीरिक पापोंका नाश करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको अक्षयरूपमें प्राप्त करता है।

ज्येष्ठ शुक्ला तृतीयाको व्रत करके जो अत्यन्त प्रसन्नताके साथ महेश्वरीका पूजन करता है, उसके लिये कुछ भी असाध्य नहीं होता। आषाढ़के शुक्लपक्षकी तृतीयाको अपने वैभवके अनुसार रथोत्सव करे। यह उत्सव देवीको अत्यन्त प्रिय है। पृथ्वीको रथ समझे, चन्द्रमा और सूर्यको उसके पहिये जाने, वेदोंको घोड़े और ब्रह्माजीको सारथि माने। इस भावनासे मणिजटित रथकी कल्पना करके उसे पुष्पमालाओंसे सुशोभित करे। फिर उसके भीतर शिवादेवीको विराजमान करे। तत्पश्चात् बुद्धिमान् पुरुष यह भावना करे कि परा अम्बा उमादेवी सम्पूर्ण जगत्की रक्षाके लिये उसकी देखभाल करनेके निमित्त रथके भीतर बैठी हैं। जब रथ धीरे-धीरे चले, तब जय-जयकार करते हुए प्रार्थना करे—'देवि ! दीनवत्सले ! हम आपकी शरणमें आये हैं। आप हमारी रक्षा कीजिये। (पाहि देवि जनानस्मान् प्रपन्नान् दीनवत्सले।') इन वाक्योंद्वारा देवीको संतुष्ट करे और यात्राके समय नाना प्रकारके बाजे बजवाये। ग्राम या नगरकी सीमाके अन्ततक रथको ले जाकर वहाँ उस रथपर देवीकी पूजा करे और नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति करके फिर उन्हें वहाँसे अपने घर ले आये। तदनन्तर सैकड़ों बार प्रणाम करके जगदम्बासे प्रार्थना करे। जो विद्वान् इस प्रकार देवीका पूजन, व्रत एवं रथोत्सव

करता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करके अन्तमें देवीके धामको जाता है।

श्रावण और भाद्रपदमासकी शुक्ल तृतीयाको जो विधिपूर्वक अम्बाका व्रत और पूजन करता है, वह इस लोकमें पुत्र, पौत्र एवं धन आदिसे सम्पन्न होकर सुख भोगता है तथा अन्तमें सब लोकोंसे ऊपर विराजमान उमालोकमें जाता है।

आश्विनमासके शुक्लपक्षमें नवरात्रव्रत करना चाहिये। उसके करनेपर सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध हो ही जाती हैं, इसमें संशय नहीं है। इस नवरात्र-व्रतके प्रभावका वर्णन करनेमें चतुरानन ब्रह्मा, पञ्चानन महादेव तथा षडानन कार्तिकेय भी समर्थ नहीं हैं; फिर दूसरा कौन समर्थ हो सकता है। मुनि-श्रेष्ठ! नवरात्र-व्रतका अनुष्ठान करके विरथके पुत्र राजा सुरथने अपने खोये हुए राज्यको प्राप्त कर लिया। अयोध्याके बुद्धिमान् नरेश ध्रुवसंधिकुमार सुदर्शनने इस नवरात्रके प्रभावसे ही राज्य प्राप्त किया, जो पहले उनके हाथसे छिन गया था। इस व्रतराजका अनुष्ठान और महेश्वरीकी आराधना करके समाधि वैश्य संसार-बन्धनसे मुक्त हो मोक्षके भागी हुए थे। जो मनुष्य आश्विनमासके शुक्लपक्षमें विधिपूर्वक व्रत करके तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी एवं चतुर्दशी तिथियोंको देवीका पूजन करता है, देवी शिवा निरन्तर उसके सम्पूर्ण अभीष्ट मनोरथकी पूर्ति करती रहती है। जो कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ और फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षमें तृतीयाको व्रत करता तथा लाल कनेर आदिके फूलों एवं सुगन्धित धूपोंसे मङ्गलमयी देवीकी पूजा करता है, वह सम्पूर्ण मङ्गलको प्राप्त कर लेता है। स्त्रियोंको अपने सौभाग्यकी प्राप्ति एवं रक्षाके लिये सदा इस महान् व्रतका आचरण करना चाहिये तथा पुरुषोंको भी विद्या, धन एवं पुत्रकी प्राप्तिके लिये इसका अनुष्ठान करना चाहिये। इनके सिवा अन्य भी जो देवीको प्रिय लगनेवाले उमा-महेश्वर आदिके व्रत हैं, मुमुक्षु पुरुषोंको उनका भक्तिभावसे आचरण करना चाहिये।

यह उमासंहिता परम पुण्यमयी तथा शिवभक्तिको बढ़ानेवाली है। इसमें नाना प्रकारके उपाख्यान हैं। यह कल्याणमयी संहिता भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली है। जो इसे भक्तिभावसे सुनता या एकाग्रचित्त होकर सुनाता अथवा पढ़ता या पढ़ाता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। जिसके घरमें सुन्दर अक्षरोंमें लिखी गयी यह संहिता विधिवत् पूजित होती है, वह सम्पूर्ण अभीष्टोंको प्राप्त कर लेता है। उसे भूत, प्रेत और पिशाचादि दुष्टोंसे कभी भय नहीं होता। वह पुत्र-पौत्र आदि सम्पत्तिको अवश्य पाता है, इसमें संशय नहीं है। अतः शिवाकी भक्ति चाहनेवाले पुरुषोंको सदा इस परम पुण्यमयी रमणीय उमासंहिताका श्रवण एवं पाठ करना चाहिये।

(अध्याय ५१)

☆

॥ उमासंहिता सम्पूर्ण ॥

☆

कैलाससंहिता

ऋषियोंका सूतजीसे तथा वामदेवजीका स्कन्दसे प्रश्न—प्रणवार्थ-निरूपणके लिये अनुरोध

नमः शिवाय साम्बाय सगणाय ससूनवे।
प्रधानपुरुषेशाय सर्गस्थित्यन्तहेतवे॥

जो प्रधान (प्रकृति) और पुरुषके नियन्ता तथा सृष्टि, पालन और संहारके कारण हैं, उन पार्वतीसहित शिवको उनके पार्षदों और पुत्रोंके साथ प्रणाम है।

ऋषि बोले—सूतजी! हमने अनेक आख्यानोंसे युक्त परम मनोहर उमासंहिता सुनी। अब आप शिवतत्त्वका ज्ञान बढ़ानेवाली कैलाससंहिताका वर्णन कीजिये।

व्यासजीने कहा—पुत्रो! शिवतत्त्वका प्रतिपादन करनेवाली दिव्य कैलास-संहिताका वर्णन करता हूँ, तुम प्रेम-पूर्वक सुनो। तुम्हारे प्रति स्नेह होनेके कारण ही मैं तुम्हें यह प्रसङ्ग सुना रहा हूँ।

इतना कहकर व्यासजीने काशीमें मुनियोंके तथा सूतजीके संवाद, व्यास-मुनि-संवाद, शिव-पार्वती-संवाद, शिवजीके द्वारा पार्वतीके प्रति संन्यास-पद्धति, संन्यासाचार, संन्यास-मण्डल, संन्यासपद्धतिन्यास, वर्णपूजन, प्रणवार्थ-पद्धति आदि प्रसंगोंका वर्णन करके पुनः ऋषिगण तथा सूतजीके मिलन एवं संवादकी अवतारणा करते हुए सूतजीके प्रति ऋषियोंके प्रश्नका यों वर्णन किया।

ऋषि बोले—महाभाग सूतजी! आप हमारे श्रेष्ठ गुरु हैं। अतः यदि आपका हमपर अनुग्रह हो तो हम आपसे एक प्रश्न पूछते हैं। श्रद्धालु शिष्योंपर आप-जैसे गुरुजन सदा स्नेह रखते हैं, इस बातको आपने इस समय हमें प्रत्यक्ष दिखा दिया। मुने! विरजा-होमके समय पहले आपने जो वामदेवका मत सूचित किया था, उसे हमने विस्तार-पूर्वक नहीं सुना। अब हम बड़े आदर और श्रद्धाके साथ उसे सुनना चाहते हैं। कृपासिन्धो! आप प्रसन्नतापूर्वक उसका वर्णन करें।

ऋषियोंकी यह बात सुनकर सूतके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उन्होंने गुरुके भी परम उत्कृष्ट गुरु महादेवजीको, त्रिभुवन-जननी महादेवी उमाको तथा गुरु व्यासको भी भक्तिपूर्वक नमस्कार करके मुनियोंको आह्लादित करते हुए गम्भीर वाणीमें इस प्रकार कहा।

सूतजी बोले—मुनियो! तुम्हारा कल्याण हो, तुम सब लोग सदा सुखी रहो। महाभाग महात्माओ! तुम भगवान् शिवके

भक्त तथा दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करनेवाले हो, यह निश्चितरूपसे जानकर ही मैं तुम लोगोंके समक्ष इस विषयका प्रसन्नतापूर्वक वर्णन करता हूँ। ध्यान देकर सुनो। पूर्वकालके रथन्तर कल्पमें महामुनि वामदेव माताके गर्भसे बाहर निकलते ही शिवतत्त्वके ज्ञाताओंमें सर्वश्रेष्ठ माने जाने लगे। वे वेदों, आगमों, पुराणों तथा अन्य सब शास्त्रोंके भी तात्त्विक अर्थको जाननेवाले थे। देवता, असुर तथा मनुष्य आदि जीवोंके जन्म-कर्मोंका उन्हें भलीभाँति ज्ञान था। उनका सम्पूर्ण अङ्ग भस्म लगानेसे उज्ज्वल दिखायी देता था। उनके मस्तकपर जटाओंका समूह शोभा देता था। वे किसीके आश्रित नहीं थे। उनके मनमें किसी वस्तुकी इच्छा नहीं थी। वे शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वोंसे परे तथा अहंकारशून्य थे। वे दिगम्बर महाज्ञानी महात्मा दूसरे महेश्वरके समान जान पड़ते थे। उन्हींके-जैसे स्वभाववाले बड़े-बड़े मुनि शिष्य होकर उन्हें घेरे रहते थे। वे अपने चरणोंके स्पर्शजनित पुण्यसे इस पृथ्वीको पवित्र करते हुए सब ओर विचरते और अपने चित्तको निरन्तर परमधाम-स्वरूप परब्रह्म परमात्मामें लगाये रहते थे। इस तरह घूमते हुए वामदेवजीने मेरुके दक्षिण शिखर—कुमारशृङ्गमें प्रसन्नतापूर्वक प्रवेश किया, जहाँ मयूर-वाहन शिवकुमार, ज्ञानमय शक्ति धारण करनेवाले, समस्त असुरोंके नाशक और सर्वदेव-वन्दित भगवान् स्कन्द रहते थे। उनके साथ उनकी शक्तिभूता 'गजावल्ली' भी थीं। वहीं स्कन्दसरके नामसे प्रसिद्ध एक सरोवर था, जो समुद्रके समान अगाध एवं विशाल दिखायी देता था। उसका जल ठंडा और स्वादिष्ट था। वह सरोवर स्वच्छ, अगाध एवं बहुत जलराशिसे पूर्ण था। उसमें सम्पूर्ण आश्चर्यजनक गुण विद्यमान थे। वह जलाशय स्कन्दस्वामीके समीप ही था। महामुनि वामदेवने शिष्योंके साथ उसमें स्नान करके शिखरपर बैठे हुए मुनिवृन्द-सेवित कुमारका दर्शन किया। वे उगते हुए सूर्यके समान तेजस्वी थे। मोर उनका श्रेष्ठ वाहन था। उनके चार भुजाएँ थीं। सभी अङ्गोंसे उदारता सूचित होती थी। मुकुट आदि उनकी शोभा बढ़ा रहे थे। रत्नभूत दो शक्तियाँ उनकी उपासना करती थीं। उन्होंने अपने चार हाथोंमें क्रमशः शक्ति, कुक्कुट, वर और अभय धारण कर रखे थे। स्कन्दका दर्शन और पूजन करके उन मुनीश्वरने बड़ी भक्तिसे उनका स्तवन आरम्भ किया।

वामदेव बोले—जो प्रणवके वाच्यार्थ, प्रणवार्थके प्रतिपादक, प्रणवाक्षररूप बीजसे युक्त तथा प्रणवरूप हैं, उन आप स्वामी कार्तिकेयको बारंबार नमस्कार है। वेदान्तके अर्थभूत ब्रह्म ही जिनका स्वरूप है, जो वेदान्तका अर्थ करते हैं, वेदान्तके अर्थको जानते हैं और नित्य विदित हैं, उन स्कन्दस्वामीको बारंबार नमस्कार है। समस्त प्राणियोंकी हृदयगुफामें प्रतिष्ठित गुहको नमस्कार है। जो स्वयं गुह्य हैं, जिनका रूप गुह्य है तथा जो गुह्य शास्त्रोंके ज्ञाता हैं, उन स्वामी कार्तिकेयको नमस्कार है। प्रभो! आप अणुसे भी अत्यन्त अणु और महान्‌से भी परम महान् हैं, कारण और कार्य अथवा भूत और भविष्यके भी ज्ञाता हैं। आप परमात्मस्वरूपको नमस्कार है। आप स्कन्द (माताके गर्भसे च्युत) हैं। स्कन्दन (गर्भसे

स्खलन) ही आपका रूप है। आप सूर्य और अरुणके समान तेजस्वी हैं। पारिजातकी मालासे सुशोभित, मुकुट आदि धारण करनेवाले आप स्कन्दस्वामीको सदा नमस्कार है। आप शिवके शिष्य और पुत्र हैं, शिव (कल्याण) देनेवाले हैं, शिवको प्रिय हैं तथा शिवा और शिवके लिये आनन्दकी निधि हैं। आपको नमस्कार है। आप गङ्गाजीके बालक, कृत्तिकाओंके कुमार, भगवती उमाके पुत्र तथा सरकंडोंके वनमें शयन करनेवाले हैं। आप महाबुद्धिमान् देवताको नमस्कार है। षडक्षर मन्त्र आपका शरीर है। आप छः प्रकारके अर्थका विधान करनेवाले हैं। आपका रूप छः मार्गोंसे परे है। आप षडाननको बारंबार नमस्कार है। द्वादशात्मन्! आपके बारह विशाल नेत्र और बारह उठी हुई भुजाएँ हैं। उन भुजाओंमें आप बारह आयुध धारण करते हैं। आपको नमस्कार है। आप चतुर्भुजरूपधारी, शान्त तथा चारों भुजाओंमें क्रमशः शक्ति, कुक्कुट, वर और अभय धारण करते हैं। आप असुरविदारण देवको नमस्कार है। आपका वक्षःस्थल गजावल्लीके कुचोंमें लगे हुए कुङ्कुमसे अङ्कित है। अपने छोटे भाई गणेशजीकी आनन्दमयी महिमा सुनकर आप मन-ही-मन आनन्दित होते हैं। आपको नमस्कार है। ब्रह्मा आदि देवता, मुनि और किंनरगणोंसे गायी जानेवाली गाथा-विशेषके द्वारा जिनके पवित्र कीर्तिधामका चिन्तन किया जाता है, उन आप स्कन्दको नमस्कार है। देवताओंके निर्मल किरीटको विभूषित करनेवाली पुष्प-मालाओंसे आपके मनोहर चरणारविन्दोंकी पूजा की जाती है। आपको नमस्कार है। जो वामदेव-द्वारा वर्णित इस दिव्य स्कन्दस्तोत्रका पाठ या श्रवण करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। यह स्तोत्र बुद्धिको बढ़ानेवाला, शिवभक्तिकी वृद्धि करनेवाला, आयु, आरोग्य तथा धनकी प्राप्ति करानेवाला और सदा सम्पूर्ण अभीष्टको देनेवाला है।*

वामदेवने इस प्रकार देवसेनापति भगवान् स्कन्दकी स्तुति करके तीन बार

---

* वामदेव उवाच—

ॐ नमः प्रणवार्थाय प्रणवार्थविधायिने। प्रणवाक्षरबीजाय प्रणवाय नमो नमः॥
वेदान्तार्थस्वरूपाय वेदान्तार्थविधायिने। वेदान्तार्थविदे नित्यं विदिताय नमो नमः॥
नमो गुहाय भूतानां गुहासु निहिताय च। गुह्याय गुह्यरूपाय गुह्यागमविदे नमः॥
अणोरणीयसे तुभ्यं महतोऽपि महीयसे। नमः परावरज्ञाय परमात्मस्वरूपिणे॥
स्कन्दाय स्कन्दरूपाय मिहिरारुणतेजसे। नमो मन्दारमालोद्यन्मुकुटादिभृते सदा॥
शिवशिष्याय पुत्राय शिवस्य शिवदायिने। शिवप्रियाय शिवयोरानन्दनिधये नमः॥
गाङ्गेयाय नमस्तुभ्यं कार्तिकेयाय धीमते। उमापुत्राय महते शरकाननशायिने॥
षडक्षरशरीराय षड्विधार्थविधायिने। षडध्वातीतरूपाय षण्मुखाय नमो नमः॥
द्वादशायतनेत्राय द्वादशोद्यतबाहवे। द्वादशायुधधाराय द्वादशात्मन् नमोऽस्तु ते॥
चतुर्भुजाय शान्ताय शक्तिकुक्कुटधारिणे। वरदाभयहस्ताय नमोऽसुरविदारिणे॥
गजावल्लीकुचालिप्तकुङ्कुमाङ्कितवक्षसे। नमो गजाननानन्दमहिमानन्दितात्मने॥

उनकी परिक्रमा की और पृथ्वीपर दण्डकी भाँति गिरकर नतमस्तक हो बारंबार साष्टाङ्ग प्रणाम और परिक्रमा करनेके अनन्तर वे विनीत भावसे उनके पास खड़े हो गये। वामदेवजीके द्वारा किये गये इस परमार्थपूर्ण स्तोत्रको सुनकर महेश्वरपुत्र भगवान् स्कन्द बड़े प्रसन्न हुए। उस समय वे महासेन वामदेवजीसे बोले—'मुने! मैं तुम्हारी की हुई पूजा, स्तुति और भक्तिसे तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। आज मैं तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य सिद्ध करूँ? तुम योगियोंमें प्रधान, सर्वथा परिपूर्ण और निःस्पृह हो। इस जगत्में कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसके लिये तुम-जैसे वीतराग महर्षि याचना करें; तथापि धर्मकी रक्षा और सम्पूर्ण जगत्पर अनुग्रह करनेके लिये तुम-जैसे साधु-संत भूतलपर विचरते रहते हैं। ब्रह्मन्! यदि इस समय मुझसे कुछ सुनना हो तो कहो; मैं लोकपर अनुग्रह करनेके लिये उस विषयका वर्णन करूँगा।'

स्कन्दकी यह बात सुनकर महामुनि वामदेवने विनयावनत हो मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहा।

वामदेव बोले—भगवन्! आप परमेश्वर हैं। अलौकिक और लौकिक—सब प्रकारकी विभूतियोंके दाता हैं। सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, सम्पूर्ण शक्तियोंको धारण करनेवाले और सबके स्वामी हैं। हम साधारण जीव हैं। आप परमेश्वरके समीप बोलनेकी शक्ति या बात करनेकी योग्यता हममें नहीं है; तथापि यह आपका अनुग्रह है कि आप मुझसे बात करते हैं। महाप्राज्ञ! मैं कृतार्थ हूँ। कणमात्र विज्ञानसे प्रेरित हो आपके समक्ष अपना प्रश्न रख रहा हूँ। मेरे इस अपराधको आप क्षमा करेंगे! प्रणव सबसे उत्तम मन्त्र है। यह साक्षात् परमेश्वरका वाचक है। पशुओं (जीवों) के पाश (बन्धन) को छुड़ानेवाले भगवान् पशुपति ही उसके वाच्यार्थ हैं। 'ओमितीदं सर्वम्' (तै॰ उ॰ १। ८। १)—ओंकार ही यह प्रत्यक्ष दीखनेवाला समस्त जगत् है, यह सनातन श्रुतिका कथन है। 'ओमिति ब्रह्म' (तै॰ उ॰ १। ८। १) अर्थात् 'ॐ यह ब्रह्म है' तथा 'सर्वं ह्येतद् ब्रह्म' (माण्डू॰ २)—'यह सब-का-सब ब्रह्म ही है।' इत्यादि बातें भी श्रुतियोंद्वारा कही गयी हैं। इस प्रकार मैंने समष्टि तथा व्यष्टिभावसे प्रणवार्थका श्रवण किया है। तात्पर्य यह है कि समष्टि और व्यष्टि—सभी पदार्थ प्रणवके ही अर्थ हैं, प्रणवके द्वारा सबका प्रतिपादन होता है—यह बात मैंने सुन रखी है। महासेन! मुझे कभी आप-जैसा गुरु नहीं मिला है, अतः कृपा करके आप प्रणवके अर्थका प्रतिपादन कीजिये। उपदेशकी विधिसे तथा सदाचार-परम्पराको ध्यानमें रखकर आप हमें प्रणवार्थका उपदेश दें।

मुनिके इस प्रकार पूछनेपर स्कन्दने प्रणवस्वरूप, अड़तीस श्रेष्ठ कलाओंद्वारा

ब्रह्मादिदेवमुनि[illegible] । [illegible]पादपङ्कज ते नमोऽस्तु ॥
इति स्कन्दस्तवं दिव्यं वामदेवेन भाषितम्। यः पठेच्छृणुयाद्वापि स याति परमां गतिम्॥
महाप्रज्ञाकरं [illegible] । [illegible] सदा ॥
(शि॰ पु॰ कै॰ सं॰ १२। २९—३५)

लक्षित तथा सदा पार्श्वभागमें उमाको साथ रखनेवाले और मुनिवरोंसे घिरे हुए भगवान् सदाशिवको प्रणाम करके उस श्रेयका वर्णन आरम्भ किया, जिसे श्रुतियोंने भी छिपा रखा है।

(अध्याय १—११)

☆

प्रणवके वाच्यार्थरूप सदाशिवके स्वरूपका ध्यान, वर्णाश्रम-धर्मके पालनका महत्त्व, ज्ञानमयी पूजा, संन्यासके पूर्वाङ्गभूत नान्दीश्राद्ध एवं ब्रह्मयज्ञ आदिका वर्णन

श्रीस्कन्दने कहा—महाभाग मुनीश्वर वामदेव ! तुम्हें साधुवाद है; क्योंकि तुम भगवान् शिवके अत्यन्त भक्त हो और शिव-तत्त्वके ज्ञाताओंमें सबसे श्रेष्ठ हो। तीनों लोकोंमें कहीं कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो तुम्हें ज्ञात न हो। तथापि तुम लोकपर अनुग्रह करनेवाले हो, इसलिये तुम्हारे समक्ष इस विषयका वर्णन करूँगा। इस लोकमें जितने जीव हैं, वे सब नाना प्रकारके शास्त्रोंसे मोहित हैं। परमेश्वरकी अति विचित्र मायाने उन्हें परमार्थसे वञ्चित कर दिया है। अतः प्रणवके वाच्यार्थभूत साक्षात् महेश्वरको वे नहीं जानते। वे महेश्वर ही सगुण-निर्गुण तथा त्रिदेवोंके जनक परब्रह्म परमात्मा हैं। मैं अपना दाहिना हाथ उठाकर तुमसे शपथ-पूर्वक कहता हूँ कि यह सत्य है, सत्य है, सत्य है। मैं बारंबार इस सत्यको दोहराता हूँ कि प्रणवके अर्थ साक्षात् शिव ही हैं। श्रुतियों, स्मृति-शास्त्रों, पुराणों तथा आगमोंमें प्रधानतया उन्हींको प्रणवका वाच्यार्थ बताया गया है। जहाँसे मनसहित वाणी उस परमेश्वरको न पाकर लौट आती है, जिसके आनन्दका अनुभव करनेवाला पुरुष किसीसे डरता नहीं, ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्रसहित यह सम्पूर्ण जगत् भूतों और इन्द्रिय-समुदायके साथ सर्वप्रथम जिससे प्रकट होता है, जो परमात्मा स्वयं किसीसे और कभी भी उत्पन्न नहीं होता, जिसके निकट विद्युत्, सूर्य और चन्द्रमाका प्रकाश काम नहीं देता तथा जिसके प्रकाशसे ही यह सम्पूर्ण जगत् सब ओरसे प्रकाशित होता है, वह परब्रह्म परमात्मा सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे सम्पन्न होनेके कारण स्वयं ही सर्वेश्वर 'शिव' नाम धारण करता है।* हृदयाकाशके भीतर विराजमान जो भगवान् शम्भु मुमुक्षु पुरुषोंके ध्येय हैं, जो सर्वव्यापी प्रकाशात्मा, भासस्वरूप एवं चिन्मय हैं, जिन परम पुरुषकी पराशक्ति शिवा भक्तिभावसे सुलभ मनोहरा, निर्गुण, अपने गुणोंसे ही निगूढ़ और निष्कल हैं, उन परमेश्वरके तीन रूप

* यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं यस्य वै विद्वान् बिभेति कुतश्चन॥
यस्माज्जगदिदं सर्वं विधिविष्ण्विन्द्रपूर्वकम्। सह भूतेन्द्रियग्रामैः प्रथमं सम्प्रसूयते॥
न सम्प्रसूयते यो वै कुतश्चन कदाचन। यस्मिन्न भासते विद्युन्न च सूर्यो न चन्द्रमाः॥
यस्य भासा विभातीदं जगत् सर्वं समन्ततः। सर्वैश्वर्येण सम्पन्नो नाम्ना सर्वेश्वरः स्वयम्॥
(शि० पु० कै० सं० १२।७—१०)

है—स्थूल, सूक्ष्म और इन दोनोंसे परे। मुने ! मुमुक्षु योगियोंको नित्य क्रमशः उनके इन स्वरूपोंका ध्यान करना चाहिये। वे शम्भु निष्कल, सम्पूर्ण देवताओंके सनातन आदिदेव, ज्ञान-क्रिया-स्वभाव एवं परमात्मा कहे जाते हैं, उन देवाधिदेवकी साक्षात् मूर्ति सदाशिव हैं। ईशानादि पाँच मन्त्र उनके शरीर हैं। ये महादेवजी पञ्चकला रूप हैं। उनकी अङ्गकान्ति शुद्ध स्फटिकके समान उज्ज्वल है। वे सदा प्रसन्न रहनेवाले तथा शीतल आभासे युक्त हैं। उन प्रभुके पाँच मुख, दस भुजाएँ और पंद्रह नेत्र हैं। 'ईशान' मन्त्र उनका मुकुट-मण्डित मस्तक है ! 'तत्पुरुष' मन्त्र उन पुरातन प्रभुका मुख है। 'अघोर' मन्त्र हृदय है। 'वामदेव' मन्त्र गुह्य प्रदेश है तथा 'सद्योजात' मन्त्र उनके पैर हैं। इस प्रकार वे पञ्चमन्त्र रूप हैं। वे ही साक्षात् साकार और निराकार परमात्मा हैं। सर्वज्ञता आदि छः शक्तियाँ उनके शरीरके छः अङ्ग हैं। वे शब्दादि शक्तियोंसे स्फुरित हृदय-कमलके द्वारा सुशोभित हैं। वामभागमें मनोन्मनी नामक अपनी शक्तिसे विभूषित हैं।

अब मैं मन्त्र आदि छः प्रकारके अर्थोंको प्रकट करनेके लिये जो अर्थोपन्यासकी पद्धति है, उसके द्वारा प्रणवके समष्टि और व्यष्टिसम्बन्धी भावार्थका वर्णन करूँगा; परंतु पहले उपदेशका क्रम बताना उचित है, इसलिये उसीको सुनो। मुने ! इस मानवलोकमें चार वर्ण प्रसिद्ध हैं। उनमेंसे जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीन वर्ण हैं; उन्हींका वैदिक आचारसे सम्बन्ध है। त्रैवर्णिकोंकी सेवा ही जिनके लिये सारभूत धर्म है, उन शूद्रोंका वेदाध्ययनमें अधिकार नहीं है। यदि सब त्रैवर्णिक अपने-अपने आश्रम-धर्मके पालनमें हार्दिक अनुरागके साथ लगे हों तो उनका ही श्रुतियों और स्मृतियोंमें प्रतिपादित धर्मके अनुष्ठानमें अधिकार है, दूसरेका कदापि नहीं। श्रुति और स्मृतिमें प्रतिपादित कर्मका अनुष्ठान करनेवाला पुरुष अवश्य सिद्धिको प्राप्त होगा, यह बात वेदोक्तमार्गको दिखानेवाले परमेश्वरने स्वयं कही है। वर्णधर्म और आश्रमधर्मके पालनजनित पुण्यसे परमेश्वरका पूजन करके बहुत-से श्रेष्ठ मुनि उनके सायुज्यको प्राप्त हो गये हैं। ब्रह्मचर्यके पालनसे ऋषियोंकी, यज्ञकर्मोंके अनुष्ठानसे देवताओंकी तथा संतानोत्पादनसे पितरोंकी तृप्ति होती है—ऐसा श्रुतिने कहा है। इस प्रकार ऋषि-ऋण, देव-ऋण तथा पितृ-ऋण—इन तीनोंसे मुक्त हो वानप्रस्थ-आश्रममें प्रविष्ट होकर मनुष्य शीत, उष्ण तथा सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंको सहन करते हुए जितेन्द्रिय, तपस्वी और मिताहारी हो यम-नियम आदि योगका अभ्यास करे, जिससे बुद्धि निश्चल तथा अत्यन्त दृढ़ हो जाय। इस प्रकार क्रमशः अभ्यास करके शुद्ध-चित्त हुआ पुरुष सम्पूर्ण कर्मोंका संन्यास कर दे। समस्त कर्मोंका संन्यास करनेके पश्चात् ज्ञानके समादरमें तत्पर रहे। ज्ञानके समादरको ही ज्ञानमयी पूजा कहते हैं। वह पूजा जीवकी साक्षात् शिवके साथ एकताका बोध कराकर जीवन्मुक्तिरूप फल देनेवाली है। यतियोंके लिये इस पूजाको सर्वोत्तम तथा निर्दोष समझना चाहिये। महाप्राज्ञ ! तुमपर स्नेह होनेके कारण लोकानुग्रहकी कामनासे मैं उस पूजाकी विधि बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो।

साधकको चाहिये कि वह सम्पूर्ण शास्त्रोंके तत्त्वार्थके ज्ञाता, वेदान्तज्ञानके पारंगत तथा बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ आचार्यकी शरणमें जाय। उत्तम बुद्धिसे युक्त एवं चतुर साधक आचार्यके समीप जाकर विधिपूर्वक दण्ड-प्रणाम आदिके द्वारा उन्हें यत्नपूर्वक संतुष्ट करे। फिर गुरुकी आज्ञा ले वह बारह दिनोंतक केवल दूध पीकर रहे। तदनन्तर शुक्लपक्षकी चतुर्थी या दशमीको प्रातःकाल विधिवत् स्नानकर शुद्धचित्त हुआ विद्वान् साधक नित्य-कर्म करके गुरुको बुलाकर शास्त्रोक्त विधिसे नान्दीश्राद्ध करे। नान्दीश्राद्धमें विश्वेदेवोंकी संज्ञा सत्य और वसु बतायी गयी है। प्रथम देवश्राद्धमें नान्दीमुख-देवता ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहे गये हैं। दूसरे ऋषिश्राद्धमें उन्हें ब्रह्मर्षि, देवर्षि तथा राजर्षि कहा गया है। तीसरे दिव्य श्राद्धमें उनकी वसु, रुद्र और आदित्य संज्ञा बतायी गयी है। चौथे मनुष्यश्राद्धमें सनक* आदि चार मुनीश्वर ही नान्दीमुख-देवता हैं। पाँचवें भूत-श्राद्धमें पाँच महाभूत, नेत्र आदि ग्यारह इन्द्रिय-समूह तथा जरायुज आदि चतुर्विध प्राणिसमुदाय नान्दीमुख माने गये हैं। छठे पितृश्राद्धमें पिता, पितामह और प्रपितामह—ये तीन नान्दीमुख-देवता हैं। सातवें मातृश्राद्धमें माता, पितामही और प्रपितामही—इन तीनोंको नान्दीमुख-देवता बताया गया है तथा आठवें आत्मश्राद्धमें आत्मा, पिता, पितामह और प्रपितामह—ये चार नान्दीमुख देवता कहे गये हैं†। मातामहात्मक श्राद्धमें मातामह, प्रमातामह और वृद्ध-प्रमातामह—ये तीन नान्दीमुख देवता सपत्नीक बताये गये हैं। प्रत्येक श्राद्धमें दो-दो ब्राह्मण करके जितने ब्राह्मण आवश्यक हों, उनको आमन्त्रित करे और स्वयं यत्नपूर्वक आचमन करके पवित्र हो उन ब्राह्मणोंके पैर धोये। उस समय इस प्रकार कहे—'जो समस्त सम्पत्तिकी प्राप्तिमें कारण, आयी हुई आपत्तिके समूहको नष्ट करनेके लिये धूमकेतु (अग्नि) रूप तथा अपार संसारसागरसे पार लगानेके लिये सेतुके समान हैं, वे ब्राह्मणोंकी चरणधूलियाँ मुझे पवित्र करें। जो आपत्तिरूपी घने अन्धकारको दूर करनेके लिये सूर्य, अभीष्ट अर्थको देनेके लिये कामधेनु तथा समस्त तीर्थोंके जलसे पवित्र मूर्तियाँ हैं, वे ब्राह्मणोंकी चरणधूलियाँ मेरी रक्षा करें।' ‡

ऐसा कह पृथ्वीपर दण्डकी भाँति पड़कर साष्टाङ्ग प्रणाम करे। तत्पश्चात् पूर्वाभिमुख बैठकर भगवान् शंकरके युगल चरणारविन्दोंका चिन्तन करते हुए दृढ़तापूर्वक आसन ग्रहण करे। हाथमें पवित्री ले शुद्ध हो नूतन यज्ञोपवीत धारणकर तीन बार प्राणायाम करे। तदनन्तर तिथि आदिका स्मरण करके इस तरह संकल्प करे—'मेरे संन्यासका अङ्गभूत जो पहले विश्वेदेवका पूजन, फिर देवादि अष्टविध श्राद्ध तथा अन्तमें

---

* सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार।

† धर्मसिन्धुकार आदिने आत्मश्राद्धमें भी तीन ही नान्दीमुख कहे हैं—आत्मा, पिता और पितामह।

‡ समस्तसम्पत्समवाप्तिहेतवः समुत्थितापत्कुलधूमकेतवः। अपारसंसारसमुद्रसेतवः पुनन्तु मां ब्राह्मणपादरेणवः॥
आपद्घनध्वान्तसहस्रभानवः समीहितार्थार्पणकामधेनवः। समस्ततीर्थाम्बुपवित्रमूर्तयो रक्षन्तु मां ब्राह्मणपादपांसवः॥

(शि॰ पु॰ कै॰ सं॰ १२।४४-४५)

मातामहश्राद्ध है, उसे आपलोगोंकी आज्ञा लेकर मैं पार्वणकी विधिसे सम्पन्न करूँगा।' ऐसा संकल्प करके आसनके लिये दक्षिण दिशासे आरम्भ करके उत्तरोत्तर कुशोंका त्याग करे। तत्पश्चात् आचमन करके खड़ा हो वर्णक्रमका आरम्भ करे। अपने हाथमें पवित्री धारण करके दो ब्राह्मणोंके हाथोंका स्पर्श करते हुए इस प्रकार कहे—

'विश्वेदेवार्थं भवन्तौ वृणे।
भवद्भ्यां नान्दीश्राद्धे क्षणः प्रसादनीयः।'

अर्थात् 'हम विश्वेदेव श्राद्धके लिये आप दोनोंका वरण करते हैं। आप दोनों नान्दीश्राद्धमें अपना समय देनेकी कृपा करें।' इतना सभी श्राद्धोंके ब्राह्मणोंके लिये कहे। सर्वत्र ब्राह्मणवरणकी विधिका यही क्रम है।

इस प्रकार वरणका कार्य पूरा करके दस मण्डलोंका निर्माण करे। उत्तरसे आरम्भ करके दसों मण्डलोंका अक्षतसे पूजन करके उनमें क्रमशः ब्राह्मणोंको स्थापित करे। फिर उनके चरणोंपर भी अक्षत आदि चढ़ाये। तदनन्तर सम्बोधनपूर्वक विश्वेदेव आदि नामोंका उच्चारण करे और कुश, पुष्प, अक्षत एवं जलसे 'इदं वः पाद्यम्' कहकर पाद्य निवेदन करे *।

इस प्रकार पाद्य देकर स्वयं भी अपना पैर धो ले और उत्तराभिमुख हो आचमन करके एक-एक श्राद्धके लिये जो दो-दो ब्राह्मण कल्पित हुए हैं, उन सबको आसनोंपर बिठाये तथा यह कहे—'विश्वेदेवस्वरूपस्य ब्राह्मणस्य इदमासनम्।'—विश्वेदेवस्वरूप ब्राह्मणके लिये यह आसन समर्पित है, यह कह कुशासन दे स्वयं भी हाथमें कुश लेकर आसनपर स्थित हो जाय। इसके बाद कहे—'अस्मिन्नान्दीमुखश्राद्धे विश्वेदेवार्थे भवद्भ्यां क्षणः क्रियताम्—इस नान्दीमुख श्राद्धमें विश्वेदेवके लिये आप दोनों क्षण (समय प्रदान) करें।' तदनन्तर 'प्राप्नुतां भवन्तौ—आप दोनों ग्रहण करें।' ऐसा कहे। फिर वे दोनों श्रेष्ठ ब्राह्मण इस प्रकार उत्तर दें 'प्राप्नुवाव—हम दोनों ग्रहण करेंगे।' इसके बाद यजमान उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे प्रार्थना करे—'मेरे मनोरथकी पूर्ति हो, संकल्पकी सिद्धि हो—इसके लिये आप अनुग्रह करें।'

तत्पश्चात् (पद्धतिके अनुसार अर्घ्य दे, पूजन कर) शुद्ध केलेके पत्ते आदि धोये हुए पात्रोंमें परिपक्व अन्न आदि भोज्य पदार्थोंको परोसकर पृथक्-पृथक् कुश बिछाकर और स्वयं वहाँ जल छिड़ककर प्रत्येक पात्रपर आदरपूर्वक दोनों हाथ लगा 'पृथिवी ते

---

* प्रथम मण्डलमें दो विश्वेदेवोंके लिये, फिर आठ मण्डलोंमें क्रमशः देवादि आठ श्राद्धोंके अधिकारियोंके लिये तथा दसवें मण्डलमें सपत्नीक मातामह आदिके लिये पाद्य अर्पण करने चाहिये। अर्पण-वाक्यका प्रयोग इस प्रकार है—

ॐ सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः ॥ १ ॥
ॐ ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः नान्दीमुखाः भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः ॥ २ ॥
ॐ देवर्षिब्रह्मर्षिक्षत्रर्षयो नान्दीमुखाः भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः ॥ ३ ॥
इसी प्रकार अन्य श्राद्धोंके लिये वाक्योंको ऊहा कर लेनी चाहिये।

पात्रम्'* इत्यादि मन्त्रका पाठ करे। वहाँ स्थित हुए देवता आदिका चतुर्थ्यन्त उच्चारण करके अक्षतसहित जल ले 'स्वाहा' बोलकर उनके लिये अन्न अर्पित करे और अन्तमें 'न मम' इस वाक्यका उच्चारण करे।† सर्वत्र—माता आदिके लिये भी अन्न-अर्पणकी यही विधि है।

अन्तमें इस प्रकार प्रार्थना करे—

यत्पादपद्मस्मरणाद् यस्य नामजपादपि।
न्यूनं कर्म भवेत् पूर्णं तं वन्दे साम्बमीश्वरम्॥

'जिनके चरणारविन्दोंके चिन्तन एवं नाम-जपसे न्यूनतापूर्ण अथवा अधूरा कर्म भी पूरा हो जाता है, उन साम्ब सदाशिव (उमामहेश्वर)की मैं वन्दना करता हूँ।'

इसका पाठ करके कहे—'ब्राह्मणो! मेरे द्वारा किया हुआ यह नान्दीमुख श्राद्ध यथोक्तरूपसे परिपूर्ण हो, यह आप कहें।' ऐसी प्रार्थनाके साथ उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको प्रसन्न करके उनका आशीर्वाद ले और अपने हाथमें लिया हुआ जल छोड़ दे। फिर पृथ्वीपर दण्डकी भाँति गिरकर प्रणाम करे और उठकर ब्राह्मणोंसे कहे—'यह अन्न अमृतरूप हो।' फिर उदारचेता साधक हाथ जोड़ अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक प्रार्थना करे। श्रीरुद्र-सूक्तका चमकाध्यायसहित पाठ करे। पुरुष-सूक्तकी भी विधिवत् आवृत्ति करे। मनमें भगवान् सदाशिवका ध्यान करते हुए 'ईशानः सर्वविद्यानाम्' इत्यादि पाँच मन्त्रोंका जप करे। जब ब्राह्मणलोग भोजन कर चुकें, तब रुद्र-सूक्तका पाठ समाप्तकर क्षमा-प्रार्थना-पूर्वक उन ब्राह्मणोंको पुनः 'अमृतापिधानमसि स्वाहा' यह मन्त्र पढ़कर उत्तरापोशनके लिये जल दे।

तदनन्तर हाथ-पैर धो आचमन करके पिण्डदानके स्थानपर जाय। वहाँ पूर्वाभिमुख बैठकर मौनभावसे तीन बार प्राणायाम करे। इसके बाद 'मैं 'नान्दीमुख' श्राद्धका अङ्गभूत पिण्डदान करूँगा' ऐसा संकल्प करके दक्षिणसे लेकर उत्तरकी ओर नौ रेखाएँ खींचे और उन रेखाओंपर क्रमशः बारह-बारह पूर्वाग्र कुश बिछाये। फिर दक्षिणकी ओरसे देवता आदिके पाँच ‡ स्थानोंपर चुपचाप अक्षत और जल छोड़े। पितृवर्गके तीनों § स्थानोंपर क्रमशः अक्षत, जल छोड़कर नवें मातामहादिके स्थानपर भी मार्जन करे $। तत्पश्चात् 'अत्र पितरो मादयध्वम्' कहकर देवादिके पाँचों स्थानोंपर क्रमशः अक्षत, जल छोड़े। इस प्रकार अवनेजन दे पाँचों स्थानोंपर प्रत्येकके लिये तीन-तीन पिण्ड दे*। (इसी

---

* पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखेऽमृतेऽमृतं जुहोमि स्वाहा' यह पूरा मन्त्र है।

† वाक्यका प्रयोग इस प्रकार है—'ॐ मत्पितृसंज्ञकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यो नान्दीमुखेभ्यः स्वाहा न मम' इत्यादि।

‡ देव, ऋषि, दिव्य मनुष्य और भूता—इनके पाँच स्थान समझने चाहिये।

§ पिता आदि, माता आदि तथा आत्मा आदि—ये तीन स्थान हैं।

$ उस समय इस प्रकार कहे—'शुध्यन्तां ब्राह्मणो नान्दीमुखाः शुध्यन्तां विष्णवो नान्दीमुखाः शुध्यन्तां महेश्वरा नान्दीमुखाः।' यह प्रथम रेखापर मार्जन करते समय कहे। इस प्रकार अन्य रेखाओंपर भी कहता चले।

* पिण्डदान-वाक्य इस प्रकार है—'ब्रह्मणे नान्दीमुखाय स्वाहा', 'विष्णवे नान्दीमुखाय स्वाहा।' इत्यादि।

तरह शेष स्थानोंपर भी करे।) अपने गृह्यसूत्रमें बतायी हुई पद्धतिके अनुसार सभी पिण्ड पृथक्-पृथक् देने चाहिये। फिर पितरोंके सादृगुण्यके लिये जल-अक्षत अर्पित करे। तत्पश्चात् अपने हृदयकमलमें सदा-शिवदेवका ध्यान करे और पूर्वोक्त 'यत्पादपद्मस्मरणात्.....' इत्यादि श्लोकका पुनः पाठ करके ब्राह्मणोंको नमस्कारपूर्वक यथाशक्ति दक्षिणा दे। फिर त्रुटियोंके लिये क्षमा-प्रार्थना करके देवता-पितरोंका विसर्जन करे। पिण्डोंका उत्सर्ग करके उन्हें गौओंको खानेके लिये दे दे अथवा जलमें डाल दे। तत्पश्चात् पुण्याह-वाचन करके स्वजनोंके साथ भोजन करे।

दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर शुद्ध बुद्धिवाला साधक उपवासपूर्वक व्रत रखे। काँख और उपस्थके बालोंको छोड़कर शेष सभी बाल मुँड़वा दे, परंतु शिखाके सात-आठ बाल अवश्य बचा ले। फिर स्नान करके धुले हुए वस्त्र पहिनकर शुद्ध हो दो बार आचमन करके मौन हो विधिवत् भस्म धारण करे। पुण्याहवाचन करके उससे अपने-आपका प्रोक्षण कर बाहर-भीतरसे शुद्ध हो होम, द्रव्य और आचार्यकी दक्षिणाके द्रव्यको छोड़कर शेष सभी द्रव्य महेश्वरार्पण-बुद्धिसे ब्राह्मणों और विशेषतः शिवभक्तोंको बाँट दे। तदनन्तर गुरुरूपधारी शिवके लिये वस्त्र आदिकी दक्षिणा दे, पृथ्वीपर दण्डवत् प्रणाम करके डोरा, कौपीन, वस्त्र तथा दण्ड आदि जो धोकर पवित्र किये गये हों, धारण करे। तदनन्तर होमद्रव्य और समिधा आदि लेकर समुद्र या नदीके तटपर, पर्वतपर, शिवालयमें, वनमें अथवा गोशालामें किसी उत्तम स्थानका विचार करके वहाँ बैठ जाय और आचमन करके पहले मानसिक जप करे। फिर 'ॐ नमो ब्रह्मणे' इस मन्त्रका तीन बार जप करके 'अग्निमीळे पुरोहितम्' इस मन्त्रका पाठ करे। इसके बाद 'अथ महाव्रतम्', 'अग्निर्वै देवानाम्', 'एतस्य समाम्नायम्', 'ॐ इषे त्वोर्जे त्वा वायवस्थ', 'अग्न आयाहि वीतये' तथा 'शं नो देवी रभीष्टये' इत्यादिका पाठ करे। तत्पश्चात् 'म य र स त ज भ न ल ग' 'पञ्च-संवत्सरमयम्', 'समाम्नायः समाम्नातः', 'अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि', 'वृद्धिरादैच्', 'अथातो धर्मजिज्ञासा,' 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'— इन सबका पाठ करे। तदनन्तर यथासम्भव वेद, पुराण आदिका स्वाध्याय करे। इसके बाद ॐ ब्रह्मणे नमः', 'ॐ इन्द्राय नमः', 'ॐ सूर्याय नमः', 'ॐ सोमाय नमः', 'ॐ प्रजापतये नमः', 'ॐ आत्मने नमः', 'ॐ अन्तरात्मने नमः', 'ॐ ज्ञानात्मने नमः', 'ॐ परमात्मने नमः' इत्यादि रूपसे ब्रह्मा आदि शब्दोंके आदिमें 'ॐ' और अन्तमें 'नमः' लगाकर उनके चतुर्थ्यन्त रूपका जप करे। इसके बाद तीन मुट्ठी सत्तू लेकर प्रणवके उच्चारणपूर्वक तीन बार खाय और प्रणवसे ही दो बार आचमन करके नाभिका स्पर्श करे। उस समय आगे बताये जानेवाले शब्दोंके आदिमें प्रणव और अन्तमें 'नमः स्वाहा' जोड़कर उनका उच्चारण करे। यथा—'ॐ आत्मने नमः स्वाहा',

---

धर्मसिन्धुकारने प्रत्येक देवताके लिये दो-दो पिण्डका विधान किया है, अतः नौ स्थानोंके २७ देवताओंके लिये ५४ पिण्ड होंगे।

'ॐ अन्तरात्मने नमः स्वाहा', 'ॐ ज्ञानात्मने नमः स्वाहा', 'ॐ परमात्मने नमः स्वाहा', 'ॐ प्रजापतये नमः स्वाहा' इति। तदनन्तर पृथक्-पृथक् प्रणवमन्त्रसे* ही दूध-दही मिले हुए घीको (अथवा केवल जलको) तीन बार चाटकर पुनः दो बार आचमन करे। इसके बाद मनको स्थिर करके सुस्थिर आसनपर पूर्वाभिमुख बैठकर शास्त्रोक्त विधिसे तीन बार प्राणायाम करे।

(अध्याय १२)

☆

संन्यासग्रहणकी शास्त्रीय विधि—गणपति-पूजन, होम, तत्त्व-शुद्धि, सावित्री-प्रवेश, सर्वसंन्यास और दण्ड-धारण आदिका प्रकार

स्कन्द कहते हैं—वामदेव! तदनन्तर मध्याह्नकालमें स्नान करके साधक अपने मनको वशमें रखते हुए गन्ध, पुष्प और अक्षत आदि पूजा-द्रव्योंको ले आये और नैर्ऋत्यकोणमें देवपूजित विघ्नराज गणेशकी पूजा करे। 'गणानां त्वा' इत्यादि मन्त्रसे विधिपूर्वक गणेशजीका आवाहन करे। आवाहनके पश्चात् उनके स्वरूपका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये। उनकी अङ्गकान्ति लाल है, शरीर विशाल है। सब प्रकारके आभूषण उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। उन्होंने अपने कर-कमलोंमें क्रमशः पाश, अङ्कुश, अक्षमाला तथा वर नामक मुद्राएँ धारण कर रखी हैं। इस प्रकार आवाहन और ध्यान करनेके पश्चात् शम्भुपुत्र गजाननकी पूजा करके खीर, पूआ, नारियल और गुड़ आदिका उत्तम नैवेद्य निवेदन करे। तत्पश्चात् ताम्बूल आदि दे उन्हें संतुष्ट करके नमस्कार करे और अपने अभीष्ट कार्यकी निर्विघ्न पूर्तिके लिये प्रार्थना करे।

तदनन्तर अपने गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार औपासनाग्निमें आज्यभागान्त† हवन करके अग्निदेवता-सम्बन्धी यज्ञविषयक स्थालीपाक होम करना चाहिये। इसके बाद 'भूः स्वाहा' इस मन्त्रसे पूर्णाहुति होम करके हवनका कार्य समाप्त करे। तत्पश्चात् आलस्यरहित हो अपराह्नकालतक गायत्री-मन्त्रका जप करता रहे। तदनन्तर स्नान करके सायंकालकी संध्योपासना तथा सायंकालिक उपासनासम्बन्धी नित्यहोम आदि करके मौन हो गुरुकी आज्ञा ले चरु पकाये। फिर अग्निमें समिधा, चरु और घीकी रुद्रसूक्तसे और सद्योजातादि पाँच मन्त्रोंसे पृथक्-पृथक् आहुति दे। अग्निमें उमासहित महेश्वरकी भावना करे और गौरीदेवीका चिन्तन करते हुए

---

* धर्मसिन्धुकारने इसके लिये तीन मन्त्र लिखे हैं। प्रथम बार चाटकर कहे 'त्रिवृदसि', द्वितीय बार 'प्रवृदसि' और तृतीय बार 'विवृदसि'।

† कुशकण्डिकाके अनन्तर अग्निमें जो चार आहुतियाँ दी जाती हैं, उनमें प्रथम दो को 'आघार' और अन्तिम दोको 'आज्यभाग' कहते हैं। प्रजापति और इन्द्रके उद्देश्यसे 'आघार' तथा अग्नि और सोमके उद्देश्यसे 'आज्यभाग' दिया जाता है।

'गौरीर्मिमाय * इस मन्त्रसे एक सौ आठ बार होम करके 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इस मन्त्रसे एक बार आहुति दे।

इस प्रकार तन्त्रसे हवन करनेके पश्चात् विद्वान् पुरुष अग्निसे उत्तरमें एक आसनपर बैठे, जिसमें नीचे कुशा, उसके ऊपर मृगचर्म और उसके ऊपर वस्त्र बिछा हुआ हो। ऐसे सुखद आसनपर बैठकर मौन-भावसे सुस्थिरचित्त हो जागरणपूर्वक ब्राह्ममुहूर्त आनेतक गायत्रीका जप करता रहे। इसके बाद स्नान करे। जो जलसे स्नान करनेमें असमर्थ हो, वह भस्मसे ही विधिपूर्वक स्नान करे फिर उस अग्निपर ही चरु पकाकर उसे घीसे तर करे। उसे उतारकर अग्निसे उत्तर दिशामें कुशपर रखे। पुनः घीसे चरुको मिश्रित करे। इसके बाद व्याहृति-मन्त्र, रुद्रसूक्त तथा सद्योजातादि पाँच मन्त्रोंका जप करे और इनके द्वारा एक-एक आहुति भी दे। चित्तको भगवान् शिवके चरणारविन्दमें लगाकर प्रजापति, इन्द्र, विश्वेदेव और ब्रह्माके लिये भी एक-एक आहुति दे। इन सबके नामके आदिमें ॐ और अन्तमें 'नमः स्वाहा' जोड़कर चतुर्थ्यन्त उच्चारण करे (यथा—ॐ प्रजापतये नमः स्वाहा—इत्यादि)। तत्पश्चात् पुण्याहवाचन कराकर 'अग्नये स्वाहा' इस मन्त्रसे अग्निके मुखमें आहुति देनेतकका कार्य सम्पन्न करे। फिर 'प्राणाय स्वाहा' इत्यादि पाँच मन्त्रोंद्वारा घृतसहित चरुकी आहुति दे। इसके बाद 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' बोलकर एक आहुति और दे। तदनन्तर फिर रुद्रसूक्त तथा ईशानादि पाँच मन्त्रोंका जप करे। महेशादि चतुर्व्यूह मन्त्रोंका भी पाठ करे। इस प्रकार तन्त्र-होम करके अपनी गृह्यशाखामें बतायी हुई पद्धतिके अनुसार उन-उन देवताओंके उद्देश्यसे बुद्धिमान् पुरुष साङ्ग होम करे। इस तरह जो अग्निमुख आदि कर्मतन्त्रको प्रवर्तित किया गया है, उसका निर्वाह करके विरजा होम करे। छब्बीस तत्त्वरूप इस शरीरमें छिपे हुए तत्त्व-समुदायकी शुद्धिके लिये विरजा होम करना चाहिये।

उस समय यह कहे कि 'मेरे शरीरमें जो ये तत्त्व हैं, इन सबकी शुद्धि हो।' उस प्रसङ्गमें आत्मतत्त्वकी शुद्धिके लिये आरुणकेतुक मन्त्रोंका पाठ करते हुए पृथ्वी आदि तत्त्वसे लेकर पुरुषतत्त्वपर्यन्त क्रमशः सभी तत्त्वोंकी शुद्धिके निमित्त घृतयुक्त चरुका होम करे तथा शिवके चरणारविन्दों-का चिन्तन करते हुए मौन रहे†। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पृथिव्यादिपञ्चक कहलाते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये शब्दादि पञ्चक हैं। वाक्, पाणि, पाद, पायु तथा उपस्थ—ये वागादिपञ्चक हैं। श्रोत्र, नेत्र, नासिका, रसना, और त्वक्—ये श्रोत्रादिपञ्चक हैं।

---

* पूरा मन्त्र इस प्रकार है—गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी। अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् स्वाहा। (ऋग्वेद मं० १ सू० १६५।४१)

† तत्त्वशुद्धिके लिये पृथक्-पृथक् वाक्य-योजना करनी चाहिये, जैसे पृथ्वी आदिके लिये—'पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशो मे शुध्यतां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा' इतना बोलकर समिधा, चरु और आज्यकी चालीस-चालीस आहुतियाँ दे। इसी तरह सभी तत्त्वोंके नाम लेकर वाक्य-योजना करे।

शिर, पार्श्व, पृष्ठ और उदर—ये चार हैं। इन्हींमें जङ्घाको भी जोड़ ले। फिर त्वक् आदि सात धातुएँ हैं। प्राण, अपान आदि पाँच वायुओंको प्राणादिपञ्चक कहा गया है। अन्नमयादि पाँचों कोशोंको कोशपञ्चक कहते हैं। (उनके नाम इस प्रकार हैं—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय।) इनके सिवा मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार, ख्याति, संकल्प, गुण, प्रकृति और पुरुष हैं। भोक्तापनको प्राप्त हुए पुरुषके लिये भोगकालमें जो पाँच अन्तरङ्ग साधन हैं, उन्हें तत्त्वपञ्चक कहा गया है। उनके नाम ये हैं—नियति, काल, राग, विद्या और कला। ये पाँचों मायासे उत्पन्न हैं। 'मायां तु प्रकृतिं विद्यात्'। इस श्रुतिमें प्रकृति ही माया कही गयी है। उसीसे ये तत्त्व उत्पन्न हुए हैं, इसमें संशय नहीं है। कालका स्वभाव ही 'नियति' है, ऐसा श्रुतिका कथन है। ये नियति आदि जो पाँच तत्त्व हैं, इन्हींको 'पञ्चकञ्चुक' कहते हैं। इन पाँच तत्त्वोंको न जाननेवाला विद्वान् भी मूढ़ ही कहा गया है।

नियति प्रकृतिसे नीचे है और यह पुरुष प्रकृतिसे ऊपर है। जैसे कौएकी एक ही आँख उसके दोनों गोलकोंमें घूमती रहती है, उसी प्रकार पुरुष प्रकृति और नियति दोनोंके पास रहता है। यह विद्यातत्त्व कहा गया है। शुद्ध विद्या, महेश्वर, सदाशिव, शक्ति और शिव—इन पाँचोंको शिवतत्त्व कहते हैं। ब्रह्मन्! 'प्रज्ञानं ब्रह्म' इस श्रुतिके वाक्यसे यह शिवतत्त्व ही प्रतिपादित हुआ है। मुनीश्वर! पृथ्वीसे लेकर शिवपर्यन्त जो तत्त्वसमूह है, उसमेंसे प्रत्येकको क्रमशः अपने-अपने कारणमें लीन करते हुए उसकी शुद्धि करो। १ पृथिव्यादिपञ्चक, २ शब्दादिपञ्चक, ३ वागादिपञ्चक, ४ श्रोत्रादिपञ्चक, ५ शिरादिपञ्चक, ६ त्वगादिधातुसप्तक, ७ प्राणादिपञ्चक, ८ अन्नमयादिकोशपञ्चक, ९ मन आदि पुरुषान्त तत्त्व, १० नियत्यादि तत्त्वपञ्चक (अथवा पञ्चकञ्चुक) और ११ शिवतत्त्व-पञ्चक—ये ग्यारह वर्ग हैं; इन एकादशवर्ग-सम्बन्धी मन्त्रोंके अन्तमें 'परस्मै शिवज्योतिषे इदं न मम' इस वाक्यका उच्चारण करे*। इसके द्वारा अपने उद्देश्यका त्याग बताया गया है।

इसके बाद 'विविद्या' तथा 'कर्षोत्क' सम्बन्धी मन्त्रोंके अन्तमें अर्थात् 'विविद्यायै स्वाहा', 'कर्षोत्काय स्वाहा' इनके अन्तमें स्वत्वत्यागके लिये 'व्यापकाय परमात्मने शिवज्योतिषे विश्वभूतघसनोत्सुकाय परस्मै देवाय इदं न मम' इसका उच्चारण करे। तत्पश्चात् 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे। उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवाः स चा' इस मन्त्रके अन्तमें 'विश्वरूपाय पुरुषाय ॐ स्वाहा' बोलकर स्वत्वत्यागके लिये 'लोकत्रयव्यापिने परमात्मने शिवायेदं न मम' का उच्चारण करे। तदनन्तर अपनी शाखामें बतायी हुई विधिसे पहले तत्त्वकर्मका सम्पादन करके घृतमिश्रित चरुका प्राशन एवं आचमन करनेके पश्चात् पुरोधा आचार्यको सुवर्ण आदिसे सम्पन्न समुचित दक्षिणा दे।

---

* यथा—'पृथिव्यादिपञ्चकं मे शुध्यतां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयास्'स्वाहा—पृथिव्यादिपञ्चकाय परस्मै शिवज्योतिषे इदं न मम।'

फिर ब्रह्माका विसर्जन करके प्रातः-कालिक उपासनासम्बन्धी नित्य होम करे। इसके बाद मनुष्य 'सं मा सिञ्चन्तु मरुतः' इस मन्त्रका जप करे।* तत्पश्चात्—'या ते अग्ने यज्ञिया तनूस्तयेह्यारोहात्मात्मानम्' † इत्यादि मन्त्रोंसे हाथको अग्निमें तपाकर उस अग्निको अद्वैतधाम-स्वरूप अपने आत्मामें आरोपित करे। तदनन्तर प्रातःकालकी संध्योपासना करके सूर्योपस्थानके पश्चात् जलाशयमें जाकर नाभितक जलके भीतर प्रवेश करे। वहाँ प्रसन्नतापूर्वक मनको स्थिरकर उत्सुकतापूर्वक वेदमन्त्रोंका जप करे। ‡

जो अग्निहोत्री हो, वह स्थापित अग्निमें 'प्राजापत्येष्टि' § करे तथा वेदोक्त वैश्वानर स्थालीपाक होम करके उसमें अपना सब कुछ दान कर दे। पूर्वोक्तरूपसे अग्निका आत्मामें आरोप करके ब्राह्मण घरसे निकल जाय। मुनीश्वर! फिर वह साधक निम्नाङ्कितरूपसे 'सावित्रीप्रवेश' करे—

ॐ भूः सावित्रीं प्रवेशयामि, ॐ तत्सवितुर्वरेण्यम्, ॐ भुवः सावित्रीं प्रवेशयामि $ भर्गो देवस्य धीमहि, ॐ स्वः सावित्रीं प्रवेशयामि, धियो यो नः प्रचोदयात्, ॐ भूर्भुवः स्वः सावित्रीं प्रवेशयामि, तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

—इन वाक्योंका प्रेमपूर्वक उच्चारण

---

* धर्मसिन्धुकारने कहा है कि 'सं मा सिञ्चन्तु मरुतः' इस मन्त्रसे अग्निका उपस्थान करके उसमें काष्ठमय यज्ञपात्रोंको जला दे। यदि पात्र तैजस धातुके हों तो उन्हें आचार्यको दे दे।

पूरा मन्त्र और उसका अर्थ इस प्रकार है—

सं मा सिञ्चन्तु मरुतः समिन्द्रः सं बृहस्पतिः। सं मायमग्निः सिञ्चत्वायुषा च धनेन च बलेन चायुष्मन्तं करोतु मा।

अर्थात् मरुद्गण, इन्द्र, बृहस्पति तथा अग्नि—ये सभी देवता मुझपर कल्याणकी वर्षा करें। ये अग्निदेव मुझे आयु, ज्ञानरूपी धन तथा साधनकी शक्तिसे सम्पन्न करें। साथ ही मुझको दीर्घजीवी भी बनायें।

† पूरे मन्त्र और अर्थ यों है—

या ते अग्ने यज्ञिया तनूस्तयेह्यारोहात्मात्मानम्। अच्छा वसूनि कृण्वन्नस्मे नर्या पुरूणि॥
यज्ञो भूत्वा यज्ञमासीद स्वां योनिम्। जातवेदो भुव आजायमानः सक्षय एहि॥

'हे अग्निदेव! जो तुम्हारा यज्ञिय (यज्ञोंमें प्रकट होनेवाला) स्वरूप है, उसी स्वरूपसे तुम यहाँ पधारो और मेरे लिये बहुत-से मनुष्योपयोगी विशुद्ध धन (साधन-सम्पत्ति) की सृष्टि करते हुए आत्मारूपसे मेरे आत्मामें विराजमान हो जाओ। तुम यज्ञरूप होकर अपने कारणरूप यज्ञमें पहुँच जाओ। हे जातवेदा! तुम पृथिवीसे उत्पन्न होकर अपने धामके साथ यहाँ पधारो।'

‡ यहाँ जल लेकर उसे 'आशुः शिशानः' इस सूक्तसे अभिमन्त्रित करके 'सर्वाभ्यो देवताभ्यः स्वाहा' ऐसा कहकर छोड़ दे। फिर संन्यासका संकल्प ले तीन बार जलाञ्जलि दे। उसके मन्त्र इस प्रकार हैं—ॐ एष ह वा अग्निः सूर्यः प्राणं गच्छ स्वाहा॥ १॥ ॐ स्वाम् योनिं गच्छ स्वाहा॥ २॥ ॐ आपो वै गच्छ स्वाहा॥ ३॥ (धर्मसिन्धु)

§ 'यदिदं यज्ञ पूतं यच्चाग्न्यनापदि प्रजापतौ तन्मनसि जुहोमि। विमुक्तोऽहं देवकिल्बिषात्स्वाहा' ऐसा कह घीकी आहुति दे—'इदं प्रजापतये न मम' कहकर त्याग करे। यही प्राजापत्येष्टि है।

$ धर्मसिन्धुमें 'प्रविशामि' पाठ है।

करे और चित्तको चञ्चल न होने दे।

उस समय गायत्रीका इस प्रकार ध्यान करे—ये भगवती गायत्री साक्षात् भगवान् शंकरके आधे शरीरमें वास करनेवाली हैं। इनके पाँच मुख और दस भुजाएँ हैं। ये पंद्रह नेत्रोंसे प्रकाशित होती हैं। नूतन रत्नमय किरीटसे जगमगाती हुई चन्द्रलेखा इनके मस्तकको विभूषित करती है। इनकी अङ्गकान्ति शुद्ध स्फटिक मणिके समान उज्ज्वल है। ये शुभलक्षणा देवी अपने दस हाथोंमें दस प्रकारके आयुध धारण करती हैं। हार, केयूर (बाजूबंद), कड़े, करधनी और नूपुर आदि आभूषणोंसे उनके अङ्ग विभूषित हैं। इन्होंने दिव्य वस्त्र धारण कर रखा है। इनके सभी आभूषण रत्ननिर्मित हैं। विष्णु, ब्रह्मा, देवता, ऋषि तथा गन्धर्वराज और मनुष्य ही सदा इनका सेवन करते हैं। ये सर्वव्यापिनी शिवा सदाशिव-देवकी मनोहारिणी धर्मपत्नी हैं। सम्पूर्ण जगत्की माता, तीनों लोकोंकी जननी, त्रिगुणमयी, निर्गुणा तथा अजन्मा हैं। इस प्रकार गायत्रीदेवीके स्वरूपका चिन्तन करते हुए शुद्ध-बुद्धिवाला पुरुष ब्राह्मणत्व आदि प्रदान करनेवाली अजन्मा आदि देवी त्रिपदा गायत्रीका जप करे। गायत्री व्याहृतियोंसे उत्पन्न हुई हैं और उन्हींमें लीन होती हैं। व्याहृतियाँ प्रणवसे प्रकट हुई हैं और प्रणवमें ही लयको प्राप्त होती हैं। प्रणव सम्पूर्ण वेदोंका आदि है। वह शिवका वाचक, मन्त्रोंका राजाधिराज, महाबीजस्वरूप और श्रेष्ठ मन्त्र है। शिव प्रणव है और प्रणव शिव कहा गया है; क्योंकि वाच्य और वाचकमें अधिक भेद नहीं होता। इसी महामन्त्रको काशीमें शरीर-त्याग करनेवाले जीवोंके मरणकालमें उन्हें सुनाकर भगवान् शिव परम मोक्ष प्रदान करते हैं। इसलिये श्रेष्ठ यति अपने हृदयकमलके मध्यमें विराजमान एकाक्षर प्रणवरूप परम कारण शिवदेवकी उपासना करते हैं। दूसरे मुमुक्षु, धीर एवं विरक्त लौकिक पुरुष भी मनसे विषयोंका परित्याग करके प्रणवरूप परम शिवकी उपासना करते हैं।

इस प्रकार गायत्रीका शिववाचक प्रणवमें लय करके 'अहं वृक्षस्य रेरिवा' * इस अनुवाकका जप करे। तत्पश्चात् 'यश्छन्द-सामृषभः' (तैत्तिरीय० १।४।१)—इस अनुवाकको आरम्भसे लेकर·····'श्रुतं मे गोपाय' † तक पढ़कर कहे—'दारुणायाश्च

---

* अहं वृक्षस्य रेरिवा। कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव। ऊर्ध्वपवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि। द्रविणं सवर्चसम्। सुमेधा अमृतोक्षितः। इति त्रिशङ्वोर्वेदानुवचनम्। (तैत्तिरीय० १।१०।१)

'मैं संसारवृक्षका उच्छेद करनेवाला हूँ, मेरी कीर्ति पर्वतके शिखरकी भाँति उन्नत है; अन्नोत्पादक शक्तिसे युक्त सूर्यमें जैसे उत्तम अमृत है, उसी प्रकार मैं भी अतिशय पवित्र अमृतस्वरूप हूँ तथा मैं प्रकाशयुक्त धनका भण्डार हूँ, परमानन्दमय अमृतसे अभिषिक्त तथा श्रेष्ठ बुद्धिवाला हूँ—इस प्रकार यह त्रिशङ्कु ऋषिका अनुभव किया हुआ वैदिक प्रवचन है।'

† यश्छन्दसामृषभो विश्वरूपः। छन्दोभ्योऽध्यमृतात्संभृतम्। स मेन्द्रो मेधया स्पृणोतु। अमृतस्य देव धारणो भूयासम्। शरीरं मे विचर्षणम्। जिह्वा मे मधुमत्तमा। कर्णाभ्यां भूरि विश्रुवम्। ब्रह्मणः केशोऽसि मेधया पिहितः श्रुतं मे गोपाय।

वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थितोऽहम्' अर्थात् 'मैं स्त्रीकी कामना, धनकी कामना और लोकोंमें ख्यातिकी कामनासे ऊपर उठ गया हूँ।' पुनः इस वाक्यका मन्द, मध्यम और उच्चस्वरसे क्रमशः तीन बार उच्चारण करे। तत्पश्चात् सृष्टि, स्थिति और लयके क्रमसे पहले प्रणवमन्त्रका उद्धार करके फिर क्रमशः इन वाक्योंका उच्चारण करे—'ॐ भूः संन्यस्तं मया', 'ॐ भुवः संन्यस्तं मया', 'ॐ सुवः संन्यस्तं मया', 'ॐ भूर्भुवः सुवः संन्यस्तं मया'* इन वाक्योंका मन्द, मध्यम और उच्चस्वरसे हृदयमें सदाशिवका ध्यान करते हुए सावधान चित्तसे उच्चारण करे। तदनन्तर 'अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा' (मेरी ओरसे सब प्राणियोंको अभयदान दिया गया)—ऐसा कहते हुए पूर्व दिशामें एक अञ्जलि जल लेकर छोड़े। इसके बाद शिखाके शेष बालोंको हाथसे उखाड़ डाले और यज्ञोपवीतको निकालकर जलके साथ हाथमें ले इस प्रकार कहे—'ॐ भूः समुद्रं गच्छ स्वाहा' यों कहकर उसका जलमें ही होम कर दे। फिर 'ॐ भूः संन्यस्तं मया', 'ॐ भुवः संन्यस्तं मया', 'ॐ सुवः संन्यस्तं मया'—इस प्रकार तीन बार कहकर तीन बार जलको अभिमन्त्रित करके उसका आचमन करे। फिर जलाशयके किनारे आकर वस्त्र और कटिसूत्रको भूमिपर त्याग दे तथा उत्तर या पूर्वकी ओर मुँह करके सात पदसे कुछ अधिक चले। कुछ दूर जानेपर आचार्य उससे कहे, 'ठहरो, ठहरो भगवन्! लोक-व्यवहारके लिये कौपीन और दण्ड स्वीकार करो।' यों कह आचार्य अपने हाथसे ही उसे कटिसूत्र और कौपीन देकर गेरुआ वस्त्र भी अर्पित करे। तत्पश्चात् संन्यासी जब उससे अपने शरीरको ढककर दो बार आचमन कर ले तब आचार्य शिष्यसे कहे—'इन्द्रस्य वज्रोऽसि' यह मन्त्र बोलकर दण्ड ग्रहण करो। तब वह इस मन्त्रको पढ़े और 'सखा मा गोपायौजः सखा योऽसीन्द्रस्य वज्रोऽसि वार्त्रघ्नः शर्म मे भव यत्पापं तन्निवारय' †—इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए दण्डकी प्रार्थना करके उसे हाथमें ले। (तत्पश्चात् प्रणव या गायत्रीका उच्चारण करके कमण्डलु ग्रहण करे।)

तदनन्तर भगवान् शिवके चरणारविन्दका चिन्तन करते हुए गुरुके निकट जा वह तीन बार पृथ्वीमें लोटकर दण्डवत् प्रणाम करे। उस समय वह अपने मनको पूर्णतया

'जो वेदोंमें सर्वश्रेष्ठ है, सर्वरूप है और अमृतस्वरूप वेदोंसे प्रधानरूपमें प्रकट हुआ है, वह सबका स्वामी परमेश्वर मुझे धारणायुक्त बुद्धिसे सम्पन्न करे। हे देव! मैं आपकी कृपासे अमृतमय परमात्माको अपने हृदयमें धारण करनेवाला बन जाऊँ। मेरा शरीर विशेष पुष्टिसे—सब प्रकारसे रोगरहित हो और मेरी जिह्वा अतिशय मधुमती (मधुरभाषिणी) हो जाय। मैं दोनों कानोंद्वारा अधिक सुनता रहूँ। (हे प्रणव! तू) लौकिक बुद्धिसे ढकी हुई परमात्माकी निधि है। तू मेरे सुने हुए उपदेशकी रक्षा कर।'

* मैंने भूलोकका संन्यास (पूर्णतः त्याग) कर दिया। मैंने भुवः (अन्तरिक्ष) लोकका परित्याग कर दिया तथा मैंने स्वर्गलोकका भी सर्वथा त्याग कर दिया। मैंने भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्गलोक—इन तीनोंको भलीभाँति त्याग दिया।

† हे दण्ड! तुम मेरे सखा (सहायक) हो, मेरी रक्षा करो। मेरे ओज (प्राणशक्ति)-की रक्षा करो। तुम जबसे मेरे सखा हो, जो इन्द्रके हाथमें वज्रके रूपमें रहते हो। तुमने ही वज्रास्त्रसे आघात करके वृत्रासुरका संहार किया है। तुम मेरे लिये कल्याणमय बनो। मुझमें जो पाप हो, उसका निवारण करो।

संयममें रखे। फिर धीरेसे उठकर प्रेमपूर्वक अपने गुरुकी ओर देखते हुए हाथ जोड़ उनके चरणोंके समीप खड़ा हो जाय। संन्यास-दीक्षा-विषयक कर्म आरम्भ होनेके पहले ही शुद्ध गोबर लेकर आँवले बराबर उसके गोले बना ले और सूर्यकी किरणोंसे ही उन्हें सुखाये। फिर होम आरम्भ होनेपर उन गोलोंको होमाग्निके बीचमें डाल दे। होम समाप्त होनेपर उन सबको संग्रह करके सुरक्षित रखे। तदनन्तर दण्डधारणके पश्चात् गुरु विरजाग्निजनित उस श्वेत भस्मको लेकर उसीको शिष्यके अङ्गोंमें लगाये अथवा उसे लगानेकी आज्ञा दे। उसका क्रम इस प्रकार है। 'ॐ अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म सर्वं ह वा इदं भस्म मन एतानि चक्षूंषि' इस मन्त्रसे भस्मको अभिमन्त्रित करे। तदनन्तर ईशानादि पाँच मन्त्रोंद्वारा उस भस्मका शिष्यके अङ्गोंसे स्पर्श कराकर उसे मस्तकसे लेकर पैरोंतक सर्वाङ्गमें लगानेके लिये दे दे। शिष्य उस भस्मको विधिपूर्वक हाथमें लेकर 'त्र्यायुषम्०*' तथा 'त्र्यम्बकम्० †' इन दोनों मन्त्रोंको तीन-तीन बार पढ़ते हुए ललाट आदि अङ्गोंमें क्रमशः त्रिपुण्ड्र धारण करे।

तत्पश्चात् श्रेष्ठ शिष्य अपने हृदय-कमलमें विराजमान उमासहित भगवान् शंकरका भक्तियुक्त चित्तसे ध्यान करे। फिर गुरु शिष्यके मस्तकपर हाथ रखकर उसके दाहिने कानमें ऋषि, छन्द और देवतासहित प्रणवका उपदेश करे। इसके बाद कृपा करके प्रणवके अर्थका भी बोध कराये। श्रेष्ठ गुरुको चाहिये कि वह प्रणवके छः प्रकारके अर्थका ज्ञान कराते हुए उसके बारह भेदोंका उपदेश दे। तत्पश्चात् शिष्य दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़कर गुरुको साष्टाङ्ग प्रणाम करे और सदा उनके अधीन रहे, उनकी आज्ञाके बिना दूसरा कोई कार्य न करे। गुरुकी आज्ञासे शिष्य वेदान्तके तात्पर्यके अनुसार सगुण-निर्गुण-भेदसे शिवके ज्ञानमें तत्पर रहे। गुरु अपने उसी शिष्यके द्वारा श्रवण, मनन और निदिध्यासनपूर्वक जपके अन्तमें प्रातःकालिक आदि नियमोंका अनुष्ठान करवाये। कैलासप्रस्तर नामक मण्डलमें शिवके द्वारा प्रतिपादित मार्गके अनुसार शिष्य वहीं रहकर शिवपूजन करे। यदि गुरुके आदेशके अनुसार वह प्रतिदिन वहीं रहकर मङ्गलमय देवता शिवकी पूजा करनेमें असमर्थ हो तो उनसे अर्घासहित स्फटिकमय शिवलिङ्ग ग्रहण कर ले और कहीं भी रहकर नित्य उसका पूजन किया करे। वह गुरुके निकट शपथ खाते हुए इस तरह प्रतिज्ञा करे—'मेरे प्राण चले जायँ, यह अच्छा है। मेरा सिर काट लिया जाय, यह भी अच्छा है; परंतु मैं भगवान् त्रिलोचनकी पूजा किये बिना कदापि भोजन नहीं कर सकता।' ऐसा कहकर सुदृढ़ चित्तवाला शिष्य मनमें शिवकी भक्ति लिये गुरुके निकट तीन बार शपथ खाय और तभीसे मनमें उत्साह रखकर उत्तम भक्तिभावसे पञ्चावरण-पूजनकी पद्धतिके अनुसार प्रतिदिन महादेवजीकी पूजा करे। (अध्याय १३)

☆

---

* त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽस्तु त्र्यायुषम्॥ (यजुर्वेद ३। ६२)

† त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥ (यजुर्वेद ३। ६०)

प्रणवके अर्थोंका विवेचन

वामदेवजी बोले—भगवान् षडानन ! सम्पूर्ण विज्ञानमय अमृतके सागर ! समस्त देवताओंके स्वामी महेश्वरके पुत्र ! प्रणतार्तिके भञ्जन कार्तिकेय ! आपने कहा है कि प्रणवके छः प्रकारके अर्थोंका परिज्ञान अभीष्ट वस्तुको देनेवाला है। यह छः प्रकारके अर्थोंका ज्ञान क्या है ? प्रभो ! वे छः प्रकारके अर्थ कौन-कौनसे हैं और उनका परिज्ञान क्या वस्तु है ? उनके द्वारा प्रतिपाद्य वस्तु क्या है और उन अर्थोंका परिज्ञान होनेपर कौन-सा फल मिलता है ? पार्वतीनन्दन ! मैंने जो-जो बातें पूछी हैं, उन सबका सम्यक्-रूपसे वर्णन कीजिये।

सुब्रह्मण्य स्कन्द बोले—मुनिश्रेष्ठ ! तुमने जो कुछ पूछा है, उसे आदरपूर्वक सुनो। समष्टि और व्यष्टिभावसे महेश्वरका परिज्ञान ही प्रणवार्थका परिज्ञान है। मैं इस विषयको विस्तारके साथ कहता हूँ। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनीश्वर ! मेरे इस प्रवचनसे उन छः प्रकारके अर्थोंकी एकताका भी बोध होगा। पहला मन्त्ररूप अर्थ है, दूसरा यन्त्रभावित अर्थ है, तीसरा देवताबोधक अर्थ है, चौथा प्रपञ्चरूप अर्थ है, पाँचवाँ अर्थ गुरुके रूपको दिखानेवाला है और छठा अर्थ, शिष्यके स्वरूपका परिचय देनेवाला है। इस प्रकार ये छः अर्थ बताये गये। मुनिश्रेष्ठ ! उन छहों अर्थोंमें जो मन्त्ररूप अर्थ है, उसको तुम्हें बताता हूँ। उसका ज्ञान होनेमात्रसे मनुष्य महाज्ञानी हो जाता है। प्रणवमें वेदोंने पाँच अक्षर बताये हैं, पहला आदिस्वर—'अ', दूसरा पाँचवाँ स्वर—'उ', तीसरा पञ्चम वर्ग पवर्गका अन्तिम अक्षर 'म', उसके बाद चौथा अक्षर बिन्दु और पाँचवाँ अक्षर नाद। इनके सिवा दूसरे वर्ण नहीं हैं। यह समष्टिरूप वेदादि (प्रणव) कहा गया है। नाद सब अक्षरोंकी समष्टिरूप है; बिन्दुयुक्त जो चार अक्षर हैं, वे व्यष्टिरूपसे शिववाचक प्रणवमें प्रतिष्ठित हैं।

विद्वन् ! अब यन्त्ररूप या यन्त्रभावित अर्थ सुनो। यह यन्त्र ही शिवलिङ्गरूपमें स्थित है। सबसे नीचे पीठ (अर्घा) लिखे। उसके ऊपर पहला स्वर अकार लिखे। उसके ऊपर उकार अङ्कित करे और उसके भी ऊपर पवर्गका अन्तिम अक्षर मकार लिखे। मकारके ऊपर अनुस्वार और उसके भी ऊपर अर्धचन्द्राकार नाद अङ्कित करे। इस तरह यन्त्रके पूर्ण हो जानेपर साधकका सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होता है। इस प्रकार यन्त्र लिखकर उसे प्रणवसे ही वेष्टित करे। उस प्रणवसे ही प्रकट होनेवाले नादके द्वारा नादका अवसान समझे।

मुने ! अब मैं देवतारूप तीसरे अर्थको बताऊँगा, जो सर्वत्र गूढ़ है। वामदेव ! तुम्हारे स्नेहवश भगवान् शंकरके द्वारा प्रतिपादित उस अर्थका मैं तुमसे वर्णन करता हूँ। 'सद्योजातं प्रपद्यामि' यहाँसे आरम्भ करके 'सदाशिवोम्' तक जो पाँच* मन्त्र हैं, श्रुतिने प्रणवको इन सबका याचक कहा है। इन्हें ब्रह्मरूपी पाँच सूक्ष्म देवता समझना चाहिये। इन्हींका शिवकी मूर्तिके रूपमें भी विस्तारपूर्वक वर्णन है। शिवका वाचक

* इन पाँचों मन्त्रोंका उल्लेख पहले हो चुका है।

मन्त्र शिवमूर्तिका भी वाचक है; क्योंकि मूर्ति और मूर्तिमान्‌में अधिक भेद नहीं है। 'ईशान मुकुटोपेतः' इस श्लोकसे आरम्भ करके पहले इन मन्त्रोंद्वारा शिवके विग्रहका प्रतिपादन किया जा चुका है। अब उनके पाँच मुखोंका वर्णन सुनो। पञ्चम मन्त्र 'ईशानः सर्वविद्यानाम्' को आदि मानकर वहाँसे लेकर ऊपरके 'सद्योजात' मन्त्रतक क्रमशः एक चक्रमें अङ्कित करे। फिर 'सद्योजात' से लेकर 'ईशान' मन्त्रतक क्रमशः उसी चक्रमें अङ्कित करे। ये ही पाँच भगवान् शिवके पाँच मुख बताये गये हैं। पुरुषसे लेकर सद्योजाततक जो ब्रह्मरूप चार मन्त्र हैं, वे ही महेश्वरदेवके चतुर्व्यूह पदपर प्रतिष्ठित हैं। 'ईशान' मन्त्र सद्योजातादि पाँचों मन्त्रोंका समष्टिरूप है। मुने! पुरुषसे लेकर सद्योजाततक जो चार मन्त्र हैं, वे ईशान-देवके व्यष्टिरूप हैं।

इसे अनुग्रहमय चक्र कहते हैं। यही पञ्चार्थका कारण है। यह सूक्ष्म, निर्विकार, अनामय परब्रह्मस्वरूप है। अनुग्रह भी दो प्रकारका है। एक तो तिरोभाव आदि पाँच* कृत्योंके अन्तर्गत है, दूसरा जीवोंको कार्यकारण आदिके बन्धनोंसे मुक्ति देनेमें समर्थ है। यह दोनों प्रकारका अनुग्रह सदाशिवका ही द्विविध कृत्य कहा गया है। मुने! अनुग्रहमें भी सृष्टि आदि कृत्योंका योग होनेसे भगवान् शिवके पाँच कृत्य माने गये हैं। इन पाँचों कृत्योंमें भी सद्योजात आदि देवता प्रतिष्ठित बताये गये हैं। ये पाँचों परब्रह्मस्वरूप तथा सदा ही कल्याणदायक हैं। अनुग्रहमय चक्र शान्त्यतीत † कलारूप है। सदाशिवसे अधिष्ठित होनेके कारण उसे परम पद कहते हैं। शुद्ध अन्तःकरणवाले संन्यासियोंको मिलने योग्य पद यही है। जो सदाशिवके उपासक हैं और जिनका चित्त प्रणवोपासनामें संलग्न है, उन्हें भी इसी पदकी प्राप्ति होती है। इसी पदको पाकर मुनीश्वरगण उन ब्रह्मरूपी महादेवजीके साथ प्रचुर दिव्य भोगोंका उपभोग करके महाप्रलयकालमें शिवकी समताको प्राप्त हो जाते हैं। वे मुक्त जीव फिर कभी संसारसागरमें नहीं गिरते।

ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे।

(मुण्डक० ३।२।६)

—इस सनातन श्रुतिने इसी अर्थका प्रतिपादन किया है। शिवका ऐश्वर्य भी यह समष्टिरूप ही है। अथर्ववेदकी श्रुति भी कहती है कि वह सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे सम्पन्न है। सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्रदान करनेकी शक्ति सदाशिवमें ही बतायी गयी है। चमकाध्यायके पदसे यह सूचित होता है कि शिवसे बढ़कर दूसरा कोई पद नहीं है। ब्रह्म-पञ्चकके विस्तारको ही प्रपञ्च कहते हैं। इन पाँच ब्रह्ममूर्तियोंसे ही निवृत्ति आदि पाँच कलाएँ हुई हैं। ये सब-की-सब सूक्ष्मभूत स्वरूपिणी होनेसे कारणरूपमें विख्यात हैं। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले वामदेव! स्थूलरूपमें प्रकट जो यह जगत्-प्रपञ्च है, इसको जिसने पाँच रूपोंद्वारा व्याप्त कर रखा है, वह ब्रह्म अपने उन पाँचों रूपोंके साथ ब्रह्मपञ्चक नाम धारण करता है। मुनिश्रेष्ठ!

---

* सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव तथा अनुग्रह—ये परमेश्वरके पाँच कृत्य हैं।

† कलाएँ पाँच हैं—निवृत्तिकला, प्रतिष्ठाकला, विद्याकला, शान्तिकला तथा शान्त्यतीतकला।

पुरुष, श्रोत्र, वाणी, शब्द और आकाश—इन पाँचोंको ब्रह्मने ईशानरूपसे व्याप्त कर रखा है। मुनीश्वर! प्रकृति, त्वचा, पाणि, स्पर्श और वायु—इन पाँचको ब्रह्मने ही पुरुषरूपसे व्याप्त कर रखा है। अहंकार, नेत्र, पैर, रूप और अग्नि—ये पाँच अघोररूपी ब्रह्मसे व्याप्त हैं, बुद्धि, रसना, पायु, रस और जल—ये वामदेव-रूपी ब्रह्मसे नित्य व्याप्त रहते हैं। मन, नासिका, उपस्थ, गन्ध और पृथिवी—ये पाँच सद्योजातरूपी ब्रह्मसे व्याप्त हैं। इस प्रकार यह जगत् पञ्चब्रह्मस्वरूप है। यन्त्ररूपसे बताया गया जो शिववाचक प्रणव है, वह नादपर्यन्त पाँचों वर्णोंका समष्टिरूप है तथा बिन्दुयुक्त जो चार वर्ण हैं, वे प्रणवके व्यष्टिरूप हैं। शिवके उपदेश किये हुए मार्गसे उत्कृष्ट मन्त्राधिराज शिवरूपी प्रणवका पूर्वोक्त यन्त्ररूपसे चिन्तन करना चाहिये।

(अध्याय १४)

☆

शैवदर्शनके अनुसार शिवतत्त्व, जगत्-प्रपञ्च और जीवतत्त्वके विषयमें विशद विवेचन तथा शिवसे जीव और जगत्की अभिन्नताका प्रतिपादन

तदनन्तर उत्तम श्रेष्ठ पद्धतिका वर्णन करके सृष्टि, स्थिति और संहार—सबको शक्तिमान् शिवकी लीला बतलाते हुए वामदेवजीके पूछनेपर स्कन्दने कहा—मुने! कर्मास्तितत्त्वसे लेकर जो विस्तृत शास्त्रवाद है अर्थात् कर्म-सत्ताके प्रतिपादक कर्मफलवादसे आरम्भ करके शास्त्रोंमें जो विविध विषयोंका विशद विवेचन है, वह ज्ञान प्रदान करनेवाला है; अतः ज्ञानवान् पुरुषको विवेकपूर्वक इसका श्रवण करना चाहिये। तुमने जिन शिष्योंको उपदेश दिया है, उनमेंसे कौन तुम्हारे समान है? वे अधम शिष्य आज भी अन्यान्य शास्त्रोंमें भटक रहे हैं। अनीश्वरवादी दर्शनोंके चक्करमें पड़कर मोहित हो रहे हैं। छः मुनियोंने उन्हें शाप दे रखा है; क्योंकि पहले वे शिवकी निन्दा किया करते थे। अतः उनकी बातें नहीं सुननी चाहिये; क्योंकि वे अन्यथावादी (शिव-शास्त्रके विपरीत बात करनेवाले) हैं। यहाँ पाँच* अवयवोंसे युक्त अनुमानके प्रयोगके लिये भी अवकाश है ही। उत्तम

---

* प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन—ये अनुमानके पाँच अवयव हैं। 'पर्वतो वह्निमान्' (पर्वतपर आग है)—यह प्रतिज्ञा है। 'धूमवत्त्वात्' (क्योंकि वहाँ धूम दिखायी देता है)—यह हेतु है। 'जहाँ-जहाँ धूम होता है, वहाँ-वहाँ आग अवश्य रहती है, जैसे रसोईघर'—यह उदाहरण है। 'यतोऽयं धूमवान्' (चूँकि यह पर्वत धूमवान् है)—यह उपनय है। 'अतः अग्निमान्' (अतः अग्निसे युक्त है) यह निगमन है। इसी तरह ईश्वरके लिये भी अनुमान होता है—यथा—'क्षित्यङ्कुरादिकं कर्तृजन्यम्' (पृथिवी तथा अङ्कुर आदि किसी कर्ताद्वारा उत्पन्न हुए हैं)—यह प्रतिज्ञा है। 'कार्यत्वात्' (क्योंकि ये कार्य हैं—) यह हेतु है। 'यत्-यत् कार्यं तत्तत् कर्तृजन्यं यथा घटः कुलालजन्यः' (जो-जो कार्य है, वह किसी-न-किसी कर्तासे उत्पन्न होता है, जैसे घड़ा कुम्भकारसे उत्पन्न होता है—यह उदाहरण हुआ। 'यता इदं कार्यम्' (चूँकि ये पृथ्वी आदि कार्य हैं)—यह उपनय हुआ। 'अतः कर्तृजन्यम्' (इसलिये कर्तासे उत्पन्न हुए हैं)—यह निगमन हुआ। पृथ्वी आदि कार्य हम-जैसे लोगोंसे उत्पन्न हुआ है, यह कहना सम्भव नहीं; अतः इसका कोई विलक्षण कर्ता है, वही सर्वज्ञशक्तिमान् ईश्वर है।

व्रतका पालन करनेवाले वामदेव ! जैसे धूमका दर्शन होनेसे लोग अनुमानद्वारा पर्वतपर अग्निकी सत्ताका प्रतिपादन करते हैं, उसी प्रकार इस प्रत्यक्ष प्रपञ्चके दर्शनरूप हेतुका अवलम्बन करके परमेश्वर परमात्माको जाना जा सकता है, इसमें संशय नहीं है।

यह विश्व स्त्री-पुरुषरूप है, ऐसा प्रत्यक्ष ही देखा जाता है। छः कोशरूप जो शरीर है, उसमें आदिके तीन माताके अंशसे उत्पन्न हुए हैं और अन्तिम तीन पिताके अंशसे—यह श्रुतिका कथन है। इस प्रकार सभी शरीरोंमें स्त्री-पुरुषभावको जाननेवाले लोग हैं। मुने ! विद्वानोंने परमात्मामें भी स्त्री-पुरुषभावको जाना है। श्रुति कहती है, परब्रह्म परमात्मा सत्, चित् और आनन्दरूप है। असत् प्रपञ्चको निवृत्त करनेवाला शब्द ही सद्रूप कहा जाता है। चित्-शब्दसे जड जगत्की निवृत्ति की जाती है। यद्यपि सत्-शब्द तीनों लिङ्गोंमें विद्यमान है, तथापि यहाँ परब्रह्म परमात्माके अर्थमें पुंल्लिङ्ग सत्-शब्दको ही ग्रहण करना चाहिये। वह सत्-शब्द प्रकाशका वाचक है। 'सन् प्रकाशः'— सन्-शब्द स्पष्टरूपसे प्रकाशका वाचक है। परमात्मामें जो सत्ता या प्रकाशरूपता है, वह उसके पुरुषभावको सूचित करती है। ज्ञान शब्दका पर्यायवाची जो चित्-शब्द है, वह स्त्रीलिङ्ग है अर्थात् परमात्मामें चिद्रूपता उसके स्त्रीभावको सूचित करती है। प्रकाश और चित्—ये दोनों जगत्के कारण-भावको प्राप्त हुए हैं। इसी प्रकार सच्चिदात्मा परमेश्वर भी जब जगत्के कारणभावको प्राप्त होते हैं तब उन एकमात्र परमात्मामें ही 'शिव' भाव और 'शक्ति' भावका भेद किया जाता है। जब तेल और बत्तीमें मलिनता होती है, तब उसके प्रकाशमें भी मलिनता आ जाती है। चिताकी आग आदिमें अशिवता और मलिनता स्पष्ट देखी जाती है। अतः मलिनता आदि आरोपित वस्तु है, उसका निवर्तक होनेके कारण परमात्माके 'शिवत्व'का ही श्रुतिके द्वारा प्रतिपादन किया गया है।

जीवके आश्रित जो चिच्छक्ति है, वह सदा दुर्बल होती है। उसकी निवृत्तिके लिये ही परमात्मामें सार्वकालिक सर्वशक्तिमत्ता विद्यमान है। ईश्वर बलवान् हैं, शक्तिमान् हैं—यह व्यवहार देखा जाता है। महामुने वामदेव ! लोक और वेदमें भी सदा ही परमात्माकी शिवरूपता और शक्तिरूपताका साक्षात्कार कराया गया है। शिव और शक्तिके संयोगसे निरन्तर आनन्द प्रकट रहता है, अतः मुने ! उस आनन्दको प्राप्त करनेके उद्देश्यसे ही पापरहित मुनि शिवमें मन लगाकर निरामय शिव (परम कल्याण एवं परमानन्द) को प्राप्त हुए हैं। उपनिषदोंमें शिव और शक्तिको ही सर्वात्मा एवं ब्रह्म कहा गया है। ब्रह्म-शब्दसे बृंहिधात्वर्थगत व्यापकता एवं सर्वात्मताका ही प्रतिपादन होता है। शम्भु नामक विग्रहमें बृंहणत्व और बृहत्त्व (व्यापकता एवं विशालता) नित्य विद्यमान है। सद्यो जातादि पञ्चब्रह्ममय शिवविग्रहमें विश्वकी प्रतीति ब्रह्म-शब्दसे ही कही गयी है।

वामदेव ! 'हंसः' पदको उलट देनेसे 'सोऽहम्' पद बनता है। उसमें प्रणवका प्राकट्य कैसे होता है यह तुम्हारे स्नेहवश मैं बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो। 'सोऽहम्' पदमेंसे सकार और हकार नामक

व्यञ्जनोंको त्याग देनेसे स्थूल 'ओम्' शब्द बच रहता है, जो परमात्माका वाचक है! तत्त्वदर्शी मुनि कहते हैं कि उसे महामन्त्ररूप जानना चाहिये। उसमें जो सूक्ष्म महामन्त्र है, उसका उद्धार मैं तुम्हें बता रहा हूँ। 'हंसः' पदमें तीन अक्षर हैं—'ह, अ, स', इन तीनोंमें जो 'अ' है, वह पंद्रहवें (अनुस्वार) और सोलहवें (विसर्ग) के साथ है। सकारके साथ जो 'अ' है, वह विसर्गसहित है; वह यदि सकारके साथ ही उठकर 'हं'के आदिमें चला जाय तो 'हंसः' के विपरीत 'सोऽहम्' यह महामन्त्र हो जायगा। इसमें जो सकार है, वह शिवका वाचक है। अर्थात् शिव ही सकारके अर्थ माने गये हैं। शक्त्यात्मक शिव ही इस महामन्त्रके वाच्यार्थ हैं, यह विद्वानोंका निर्णय है। गुरु जब शिष्यको इस महामन्त्रका उपदेश देते हैं, तब 'सोऽहम्' पदसे उसको शक्त्यात्मक शिवका ही बोध कराना अभीष्ट होता है। अर्थात् वह यह अनुभव करे कि 'मैं शक्त्यात्मक शिवरूप हूँ।' इस प्रकार जब यह महामन्त्र जीवपरक होता है अर्थात् जीवकी शिवरूपताका बोध कराता है, तब पशु (जीव) अपनेको शक्त्यात्मक एवं शिवका अंश जानकर शिवके साथ अपनी एकता सिद्ध हो जानेसे शिवकी समताका भागी हो जाता है।

अब श्रुतिके 'प्रज्ञानं ब्रह्म' इस वाक्यमें जो 'प्रज्ञानम्' पद आया है, उसके अर्थको दिखाया जा रहा है। 'प्रज्ञान' शब्द 'चैतन्य' का पर्याय है, इसमें संशय नहीं है। मुने! शिवसूत्रमें यह कहा गया है कि 'चैतन्यम् आत्मा' अर्थात् आत्मा (ब्रह्म या परमात्मा) चैतन्यरूप है। चैतन्य-शब्दसे यह सूचित होता है कि जिसमें विश्वका सम्पूर्ण ज्ञान तथा स्वतन्त्रतापूर्वक जगत्के निर्माणकी क्रिया स्वभावतः विद्यमान है, उसीको आत्मा या परमात्मा कहा गया है। इस प्रकार मैंने यहाँ शिवसूत्रोंकी व्याख्या ही की है।

'ज्ञानं बन्धः' यह दूसरा शिवसूत्र है। इसमें पशुवर्ग (जीवसमुदाय) का लक्षण बताया गया है। इस सूत्रमें आदि पद 'ज्ञानम्'के द्वारा किंचिन्मात्र ज्ञान और क्रियाका होना ही जीवका लक्षण कहा गया है। यह ज्ञान और क्रिया पराशक्तिका प्रथम स्पन्दन है। कृष्ण-यजुर्वेदकी श्वेताश्वतर शाखाका अध्ययन करनेवाले विद्वानोंने 'स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च'* इस श्रुतिके द्वारा इसी पराशक्तिका प्रसन्नतापूर्वक स्तवन किया है। भगवान् शंकरकी तीन दृष्टियाँ मानी गयी हैं—ज्ञान, क्रिया और इच्छारूप। ये तीनों दृष्टियाँ जीवोंके मनमें स्थित हो इन्द्रियज्ञानगोचर देहमें प्रवेश करके जीवरूप हो सदा जानती और करती हैं। अतः यह दृष्टित्रयरूप जीव आत्मा (महेश्वर) का स्वरूप ही है, ऐसा निश्चित सिद्धान्त है।

अब मैं जगत्प्रपञ्चके साथ प्रणवकी एकताका बोध करनेवाले प्रपञ्चार्थका वर्णन

---

* यह श्रुति श्वेताश्वतरोपनिषद् (६। ८) की है। इसका पूरा पाठ इस प्रकार है—

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥

देह और इन्द्रियसे उनका है सम्बन्ध नहीं कोई। अधिक कहाँ, उनके सम भी तो दीख रहा न कहीं कोई॥

ज्ञानरूप, बलरूप, क्रियारूप उनकी पराशक्ति भारी। विविध रूपमें सुनी गयी है, स्वाभाविक उनमें सारी॥

करूँगा। 'ओमितीदं सर्वम्' (तैत्तिरीय० १।८।१) अर्थात् यह प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाला समस्त जगत् ओंकार है—यह सनातन श्रुतिका कथन है। इससे प्रणव और जगत्की एकता सूचित होती है। 'तस्माद्वा' (तैत्तिरीय० २।१) इस वाक्यसे आरम्भ करके तैत्तिरीय श्रुतिने संसारकी सृष्टिके क्रमका वर्णन किया है। वामदेव! उस श्रुतिका जो विवेकपूर्ण तात्पर्य है, उसे मैं तुम्हारे स्नेहवश बता रहा हूँ, सुनो। शिवशक्तिका संयोग ही परमात्मा है, यह ज्ञानी पुरुषोंका निश्चित मत है। शिवकी जो पराशक्ति है, उससे चिच्छक्ति प्रकट होती है। चिच्छक्तिसे आनन्दशक्तिका प्रादुर्भाव होता है, आनन्दशक्तिसे इच्छा-शक्तिका उद्भव हुआ है, इच्छाशक्तिसे ज्ञानशक्ति और ज्ञानशक्तिसे पाँचवीं क्रियाशक्ति प्रकट हुई है। मुने! इन्हींसे निवृत्ति आदि कलाएँ उत्पन्न हुई हैं। चिच्छक्तिसे नाद और आनन्दशक्तिसे बिन्दुका प्राकट्य बताया गया है। इच्छाशक्तिसे मकार प्रकट हुआ है। ज्ञानशक्तिसे पाँचवाँ स्वर उकार उत्पन्न हुआ है और क्रियाशक्तिसे अकारकी उत्पत्ति हुई है। मुनीश्वर! इस प्रकार मैंने तुम्हें प्रणवकी उत्पत्ति बतलायी है।

अब ईशानादि पञ्च ब्रह्मकी उत्पत्तिका वर्णन सुनो। शिवसे ईशान उत्पन्न हुए हैं, ईशानसे तत्पुरुषका प्रादुर्भाव हुआ है, तत्पुरुषसे अघोरका, अघोरसे वामदेवका और वामदेवसे सद्योजातका प्राकट्य हुआ है। इस आदि अक्षर प्रणवसे ही मूलभूत पाँच स्वर और तैंतीस व्यञ्जनके रूपमें अड़तीस अक्षरोंका प्रादुर्भाव हुआ है। अब कलाओंकी उत्पत्तिका क्रम सुनो। ईशानसे शान्त्यतीताकला उत्पन्न हुई है। तत्पुरुषसे शान्तिकला, अघोरसे विद्याकला, वामदेवसे प्रतिष्ठाकला और सद्योजातसे निवृत्ति-कलाकी उत्पत्ति हुई है। ईशानसे चिच्छक्ति-द्वारा मिथुनपञ्चककी उत्पत्ति होती है। अनुग्रह, तिरोभाव, संहार, स्थिति और सृष्टि—इन पाँच कृत्योंका हेतु होनेके कारण उसे पञ्चक कहते हैं। यह बात तत्त्वदर्शी ज्ञानी मुनियोंने कही है। वाच्य-वाचकके सम्बन्धसे उनमें मिथुनत्वकी प्राप्ति हुई है। कला वर्णस्वरूप इस पञ्चकमें भूतपञ्चककी गणना है। मुनिश्रेष्ठ! आकाशादिके क्रमसे इन पाँचों मिथुनोंकी उत्पत्ति हुई है। इनमें पहला मिथुन है आकाश, दूसरा वायु, तीसरा अग्नि, चौथा जल और पाँचवाँ मिथुन पृथ्वी है। इनमें आकाशसे लेकर पृथ्वीतकके भूतोंका जैसा स्वरूप बताया गया है, उसे सुनो। आकाशमें एकमात्र शब्द ही गुण है; वायुमें शब्द और स्पर्श दो गुण हैं; अग्निमें शब्द, स्पर्श और रूप—इन तीन गुणोंकी प्रधानता है; जलमें शब्द, स्पर्श, रूप और रस—ये चार गुण माने गये हैं तथा पृथ्वी शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन पाँच गुणोंसे सम्पन्न है। यही भूतोंका व्यापकत्व कहा गया है अर्थात् शब्दादि गुणोंद्वारा आकाशादि भूत वायु आदि परवर्ती भूतोंमें किस प्रकार व्यापक हैं, यह दिखाया गया है। इसके विपरीत गन्धादि गुणोंके क्रमसे वे भूत पूर्ववर्ती भूतोंसे व्याप्य हैं अर्थात् गन्ध गुणवाली पृथ्वी जलका और रसगुणवाला जल अग्निका व्याप्य है, इत्यादि रूपसे इनकी व्याप्यताको समझना चाहिये। पाँच भूतोंका यह विस्तार ही 'प्रपञ्च' कहलाता है। सर्वसमष्टिका जो आत्मा है, उसीका नाम

'विराट्' है और पृथ्वीतत्त्वसे लेकर क्रमशः शिवतत्त्वतक जो तत्त्वोंका समुदाय है, वही 'ब्रह्माण्ड' है। वह क्रमशः तत्त्वसमूहमें लीन होता हुआ अन्ततोगत्वा सबके जीवनभूत चैतन्यमय परमेश्वरमें ही लयको प्राप्त होता है और सृष्टिकालमें फिर शक्तिद्वारा शिवसे निकलकर स्थूल प्रपञ्चके रूपमें प्रलयकालपर्यन्त सुखपूर्वक स्थित रहता है।

अपनी इच्छासे संसारकी सृष्टिके लिये उद्यत हुए महेश्वरका जो प्रथम परिस्पन्द है, उसे 'शिवतत्त्व' कहते हैं। यही इच्छाशक्ति-तत्त्व है; क्योंकि सम्पूर्ण कृत्योंमें इसीका अनुवर्तन होता है। मुनीश्वर ! ज्ञान और क्रिया—इन दो शक्तियोंमें जब ज्ञानका आधिक्य हो, तब उसे सदाशिवतत्त्व समझना चाहिये; जब क्रिया-शक्तिका उद्रेक हो तब उसे महेश्वरतत्त्व जानना चाहिये तथा जब ज्ञान और क्रिया दोनों शक्तियाँ समान हों तब वहाँ शुद्ध विद्यात्मक-तत्त्व समझना चाहिये। समस्त भाव-पदार्थ परमेश्वरके अङ्गभूत ही हैं; तथापि उनमें जो भेदबुद्धि होती है, उसका नाम माया-तत्त्व है। जब शिव अपने परम ऐश्वर्यशाली रूपको मायासे निगृहीत करके सम्पूर्ण पदार्थोंको ग्रहण करने लगता है, तब उसका नाम 'पुरुष' होता है। 'तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्' (उस शरीरको रचकर स्वयं उसमें प्रविष्ट हुआ) इस श्रुतिने उसके इसी स्वरूपका प्रतिपादन किया है अथवा इसी तत्त्वका प्रतिपादन करनेके लिये उक्त श्रुतिका प्रादुर्भाव हुआ है। यही पुरुष मायासे मोहित होकर संसारी (संसार-बन्धनमें बँधा हुआ) पशु कहलाता है। शिवतत्त्वके ज्ञानसे शून्य होनेके कारण उसकी बुद्धि नाना कर्मोंमें आसक्त हो मूढ़ताको प्राप्त हो जाती है। वह जगत्‌को शिवसे अभिन्न नहीं जानता तथा अपनेको भी शिवसे भिन्न ही समझता है। प्रभो ! यदि शिवसे अपनी तथा जगत्‌की अभिन्नताका बोध हो जाय तो इस पशु (जीव) को मोहका बन्धन न प्राप्त हो। जैसे इन्द्रजाल-विद्याके ज्ञाता (बाजीगर) को अपनी रची हुई अद्भुत वस्तुओंके विषयमें मोह या भ्रम नहीं होता है, उसी प्रकार ज्ञानयोगीको भी नहीं होता। गुरुके उपदेशद्वारा अपने ऐश्वर्यका बोध प्राप्त हो जानेपर वह चिदानन्दघन शिवरूप ही हो जाता है।

शिवकी पाँच शक्तियाँ हैं—१-सर्व-कर्तृत्वरूपा, २-सर्वतत्त्वरूपा, ३-पूर्णत्वरूपा, ४-नित्यत्वरूपा और ५-व्यापकत्वरूपा। जीवकी पाँच कलाएँ हैं—१-कला, २-विद्या, ३-राग, ४-काल और ५-नियति। इन्हें कला-पञ्चक कहते हैं। जो यहाँ पाँच तत्त्वोंके रूपमें प्रकट होती है, उसका नाम 'कला' है। जो कुछ-कुछ कर्तृत्वमें हेतु बनती है और कुछ तत्त्वका साधन होती है, उस कलाका नाम 'विद्या' है। जो विषयोंमें आसक्ति पैदा करने-वाली है, उस कलाका नाम 'राग' है। जो भाव पदार्थों और प्रकाशोंका भासनात्मकरूपसे क्रमशः अवच्छेदक होकर सम्पूर्ण भूतोंका आदि कहलाता है, वही 'काल' है। यह मेरा कर्तव्य है और यह नहीं है—इस प्रकार नियन्त्रण करनेवाली जो विभुकी शक्ति है, उसका नाम 'नियति' है। उसके आक्षेपसे जीवका पतन होता है। ये पाँचों ही जीवके स्वरूपको आच्छादित करनेवाले आवरण हैं। इसलिये 'पञ्चकञ्चुक' कहे गये हैं। इनके निवारणके लिये अन्तरङ्ग साधनकी आवश्यकता है। (अध्याय १५-१६)

☆

महावाक्योंके अर्थपर विचार तथा संन्यासियोंके योगपट्टका प्रकार

स्कन्दजी कहते हैं—मुने अब महावाक्य प्रस्तुत किये जाते हैं—*

१-प्रज्ञानं ब्रह्म (ऐतरेय० ३। ३ तथा आत्मप्र० १),
२-अहं ब्रह्मास्मि (बृहदारण्यक० १। ४। १०),
३-तत्त्वमसि (छा० उ० प्र० ८ से १६ तक),
४-अयमात्मा ब्रह्म (माण्डूक्य० २; बृह० २। ५। १९),
५-ईशावास्यमिदं सर्वम् (ईशा० १),
६-प्राणोऽसि (कौषी० ३),
७-प्रज्ञानात्मा (कौषी० ३),
८-यदेह तदमुत्र तदन्विह (कठ० २। १। १०)
९-अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि (केन० १। ३),
१०-एष त आत्मान्तर्याम्यमृतः (बृह० ३। ७। ३—२३),
११-स यश्चायं पुरुषो यश्चासावादित्ये स एकः, (तैत्तिरीय० २। ८),
१२-अहमस्मि परं ब्रह्म परात्परम्।
१३-वेदशास्त्रगुरूणां तु स्वयमानन्दलक्षणम्।
१४-सर्वभूतस्थितं ब्रह्म तदेवाहं न संशयः।
१५-तत्त्वस्य प्राणोऽहमस्मि पृथिव्याः प्राणोऽहमस्मि,
१६-अपां च प्राणोऽहमस्मि तेजसश्च प्राणोऽहमस्मि,
१७-वायोश्च प्राणोऽहमस्मि आकाशस्य प्राणोऽहमस्मि,
१८-त्रिगुणस्य प्राणोऽहमस्मि,
१९-सर्वोऽहं सर्वात्मको संसारी यद्भूतं यच्च भव्यं यद्वर्तमानं सर्वात्मकत्वादद्वितीयोऽहम्,
२०-सर्वं खल्विदं ब्रह्म (छान्दोग्य० ३। १४। १),
२१-सर्वोऽहं विमुक्तोऽहम्।
२२-योऽसौ सोऽहं हंसः सोऽहमस्ति।

इस प्रकार सर्वत्र चिन्तन करे। अब इन महावाक्योंका भावार्थ कहते हैं—'प्रज्ञानं ब्रह्म' का वाक्यार्थ पहले ही समझाया जा चुका है। (अब 'अहं ब्रह्मास्मि'का अर्थ बताया जाता है।) शक्तिस्वरूप अथवा शक्तियुक्त परमेश्वर ही 'अहम्' पदके अर्थभूत

---

* इन वाक्योंका साधारण अर्थ यों समझना चाहिये—१-ब्रह्म उत्कृष्ट ज्ञानस्वरूप आत्मा चैतन्यरूप है। २-वह ब्रह्म मैं हूँ। ३-वह ब्रह्म तू है। ४-यह आत्मा ब्रह्म है। ५-यह सब ईश्वरसे व्याप्त है। ६-मैं प्राण हूँ। ७-प्रज्ञानस्वरूप हूँ। ८-जो परब्रह्म यहाँ है, वही वहाँ (परलोकमें) भी है; जो वहाँ है, वही यहाँ (इस लोकमें) भी है। ९-वह ब्रह्म विदित (ज्ञात वस्तुओं) से भिन्न है और अविदित (अज्ञात) से भी ऊपर है। १०-वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। ११-वह जो यह पुरुषमें है और वह जो यह आदित्यमें है, एक ही है। १२-मैं परापररूप परात्पर परब्रह्म हूँ। १३-वेदों, शास्त्रों और गुरुजनोंके वचनोंसे स्वयं ही हृदयमें आनन्दस्वरूप ब्रह्मका अनुभव होने लगता है। १४-जो सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित है, वही ब्रह्म मैं हूँ—इसमें संशय नहीं है। १५-मैं तत्त्वका प्राण हूँ, पृथ्वीका प्राण हूँ। १६-मैं जलका प्राण हूँ, तेजका प्राण हूँ। १७-वायुका प्राण हूँ, आकाशका प्राण हूँ। १८-मैं त्रिगुणका प्राण हूँ। १९ मैं सब हूँ, सर्वरूप हूँ, संसारी जीवात्मा हूँ; जो भूत, वर्तमान और भविष्य है, वह सब मेरा ही स्वरूप होनेके कारण मैं अद्वितीय परमात्मा हूँ। २०-यह सब निश्चय ही ब्रह्म है। २१-मैं सर्वरूप हूँ, मुक्त हूँ। २२-जो वह है, वह मैं हूँ। मैं वह हूँ और यह मैं हूँ।

हैं। 'अकार' सब वर्णोंका अग्रगण्य, परम प्रकाश शिवरूप है। 'हकार' व्योमस्वरूप होनेके कारण उसका शक्तिरूपसे वर्णन किया गया है। शिव और शक्तिके संयोगसे सदा आनन्द उदित होता है। 'मकार' उसी आनन्दका बोधक है। 'ब्रह्म' शब्दसे शिवशक्तिकी सर्वरूपता स्पष्ट ही सूचित होती है। पहले ही इस बातका उपदेश किया गया है कि वह शक्तिमान् परमेश्वर मैं हूँ, ऐसी भावना करनी चाहिये। (अब तत्त्वमसिका अर्थ कहते हैं—) 'तत्त्वमसि' इस वाक्यमें तत्पदका वही अर्थ है, जो 'सोऽहमस्मि' में 'सः' पदका अर्थ बताया गया है अर्थात् तत्पद शक्त्यात्मक परमेश्वरका ही वाचक है, अन्यथा 'सोऽहम्' इस वाक्यमें विपरीत अर्थकी भावना हो सकती है। क्योंकि 'अहम्' पद पुँल्लिङ्ग है, अतः 'सः'के साथ उसका अन्वय हो जायगा; परंतु 'तत्'पद नपुंसक है और 'त्वम्' पुँल्लिङ्ग, अतः परस्परविरोधी लिङ्ग होनेके कारण उन दोनोंमें अन्वय नहीं हो सकता। जब दोनोंका अर्थ 'शक्तिमान् परमेश्वर' होगा, तब अर्थमें समानलिङ्गता होनेसे अन्वयमें अनुपपत्ति नहीं होगी। यदि ऐसा न माना जाय तो स्त्री-पुरुषरूप जगत्का कारण भी किसी और ही प्रकारका होगा। इसलिये 'सोऽहमस्मि'का 'सः' और 'तत्त्वमसि'का तत्—ये दोनों समानार्थक हैं। इन महावाक्योंके उपदेशसे एक ही अर्थकी भावनाका विधान है।

(अब 'अयमात्मा ब्रह्म'का अर्थ बताया जाता है—) 'अयमात्मा ब्रह्म' इस वाक्यमें 'अयम्' और 'आत्मा'—ये दोनों पद पुँल्लिङ्गरूप हैं। अतः यहाँ अन्वयमें बाधा नहीं है। 'अयम्' शक्तिमान् परमेश्वररूप आत्मा ब्रह्म है—यह इस वाक्यका तात्पर्य है। (अब 'ईशा वास्यमिदं सर्वम्'का भावार्थ बता रहे हैं—) परमेश्वरसे रक्षणीय होनेके कारण यह सम्पूर्ण जगत् उनसे व्याप्त है। (अब 'प्राणोऽस्मि' 'प्रज्ञानात्मा' और 'यदेवेह तदमुत्र' इन वाक्योंके अर्थपर विचार किया जाता है—) मैं प्रज्ञानस्वरूप प्राण हूँ। यहाँ प्राण शब्द परमेश्वरका ही वाचक है। जो यहाँ है, वह वहाँ है—ऐसा चिन्तन करे। यहाँ 'यत्, तत्'का अर्थ क्रमशः 'यः' और 'सः' है अर्थात् जो परमात्मा यहाँ है, वह परमात्मा वहाँ है—ऐसा सिद्धान्तपक्षका अवलम्बन करनेवाले विद्वानोंने कहा है। उपर्युक्त वाक्यमें 'यदमुत्र तदिह' इस वाक्यांशका भाव यह है कि 'योऽमुत्र स इह स्थितः' अर्थात् जो परमात्मा वहाँ परलोकमें स्थित है, वही यहाँ (इस लोकमें) भी स्थित है। इस प्रकार विद्वानोंको पहलेके समान ही परमपुरुष परमात्मारूप अर्थ यहाँ अभीष्ट है।

(अब 'अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि' इस वाक्यपर विचार करते हैं—) मुने! 'अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि' इस वाक्यमें जिस प्रकार फलकी भी विपरीतताकी भावना होती है, उसे यहाँ बताता हूँ; सुनो। 'विदितात्' यह पद 'अयथाविदितात्' के उन्हींका इन समस्त उत्कृष्ट गुणोंसे नित्य सम्बन्ध है। अपने और परायेके 'भेदसतात्' के अर्थमें प्रवृत्त हो सकता है। वह विदितसे भिन्न है अर्थात् जो असम्यग्रूपसे ज्ञात है, उससे भिन्न है। इसी प्रकार जो यथावत्रूपसे विदित नहीं है, उससे भी पृथक् है। इस कथनसे यह निश्चित होता है कि मुक्तिरूप फलकी सिद्धिके लिये कोई और ही तत्त्व है, जो विदिताविदितसे पर

है। परंतु जो आत्मा है, वह सर्वरूप है, वह किसीसे अन्य नहीं हो सकता। अतः आत्मा या ब्रह्म आदि पद पूर्ववत् शक्तिमान् परमेश्वर शिवके ही बोधक हैं, यह मानना चाहिये।

(अब 'एष त आत्मा' तथा 'यश्चायं पुरुषे' इन दो वाक्योंके अर्थपर विचार किया जाता है—) यह तुम्हारा अन्तर्यामी आत्मा है, जो स्वयं ही अमृतस्वरूप शिव है। यह जो पुरुषमें शम्भु है, वही सूर्यमें भी स्थित है। इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है। जो पुरुषमें है, वही आदित्यमें है। इन दोनोंमें पृथक्ता नहीं है। वह तत्त्व एक ही है। उसीको सर्वरूप कहा गया है। पुरुष और आदित्य—इन दो उपाधियोंसे युक्त जो अर्थ किया जाता है, वह औपचारिक है। उन शम्भुनाथको सब श्रुतियाँ हिरण्यमय बताती हैं। 'हिरण्यबाहवे नमः' इसमें जो बाहु शब्द है, वह सब अङ्गोंका उपलक्षण है। अन्यथा उसे हिरण्यपति कहना किसी भी यत्नसे सम्भव नहीं होता। छान्दोग्योपनिषद्में जो यह श्रुति है—'य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात् सर्व एव सुवर्णः। (छान्दोग्य० १। ६। ६) इसके द्वारा आदित्यमण्डलान्तर्गत पुरुषको सुवर्णमय दाढ़ी-मूँछोंवाला, सुवर्ण-सदृश केशोंवाला तथा नखसे लेकर केशाग्रभाग-पर्यन्त सारा-का-सारा सुवर्णमय—प्रकाशमय ही बताया गया है। अतः वह हिरण्यमय पुरुष साक्षात् शम्भु ही हैं।

अब 'अहमस्मि परं ब्रह्म परापरपरात्परम्' इस वाक्यका तात्पर्य बताता हूँ, सुनो। 'अहम्' पदके अर्थभूत सत्यात्मा शिव ही बताये गये हैं। वे ही शिव मैं हूँ, ऐसी वाक्यार्थयोजना अवश्य होती है। उन्हींको सबसे उत्कृष्ट और सर्वस्वरूप परब्रह्म कहा गया है। उसके तीन भेद हैं—पर, अपर तथा परात्पर। रुद्र, ब्रह्मा और विष्णु—ये तीन देवता श्रुतिने ही बताये हैं। ये ही क्रमशः पर, अपर तथा परात्पररूप हैं। इन तीनोंसे भी जो श्रेष्ठ देवता हैं, वे शम्भु 'परब्रह्म' शब्दसे कहे गये हैं।

वेदों, शास्त्रों और गुरुके वचनोंके अभ्याससे शिष्यके हृदयमें स्वयं ही पूर्णानन्दमय शम्भुका प्रादुर्भाव होता है। सम्पूर्ण भूतोंके हृदयमें विराजमान शम्भु ब्रह्मरूप ही हैं। वही मैं हूँ, इसमें संशय नहीं है। मैं शिव ही सम्पूर्ण तत्त्व-समुदायका प्राण हूँ।

ऐसा कहकर स्कन्दजी फिर कहते हैं—मुने! मैं शिव आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व—इन तीनोंका प्राण हूँ। पृथिवी आदिका भी प्राण हूँ। पृथ्वी आदिके गुणोंतकका ग्रहण होनेसे यह समझ लो कि यहाँ सारे आत्मतत्त्व गृहीत हो गये। फिर सबका ग्रहण विद्यातत्त्व और शिवतत्त्वका भी ग्रहण कराता है। इन सब तत्त्वोंका मैं प्राण हूँ। मैं सर्व हूँ, सर्वात्मक हूँ, जीवका भी अन्तर्यामी होनेसे उसका भी जीव (आत्मा) हूँ। जो भूत, वर्तमान और भविष्यकाल है, वह सब मेरा स्वरूप होनेके कारण मैं ही हूँ। 'सर्वो वै रुद्रः' (सब कुछ रुद्र ही है)—यह श्रुति साक्षात् शिवके मुखसे प्रकट हुई है। अतः शिव ही सर्वरूप हैं; क्योंकि उन्हींका इन समस्त उत्कृष्ट गुणोंसे नित्य सम्बन्ध है। अपने और परायेके भेदसे रहित होनेके कारण मैं ही अद्वितीय आत्मा हूँ। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इस वाक्यका अर्थ पहले बताया जा चुका है। मैं भावरूप होनेके

कारण पूर्ण हूँ। नित्यमुक्त भी मैं ही हूँ। पशु (जीव) मेरी कृपासे मुक्त होकर मेरे स्वरूपको प्राप्त होते हैं। जो सर्वात्मक शम्भु हैं, वही मैं हूँ। मैं शिवरूप हूँ। वामदेव ! इस प्रकार सम्पूर्ण वाक्योंके अर्थ भगवान् शिव ही बताये गये हैं*। ईशावास्योपनिषद्‌की श्रुतिके दो वाक्योंद्वारा प्रतिपादित अर्थ साक्षात् शिवकी एकताका ज्ञान प्रदान करनेवाला होता है। गुरुको चाहिये कि शिष्योंको इसका आदरपूर्वक उपदेश करे।

गुरुको उचित है कि वे आधारसहित शङ्खको लेकर अस्त्र-मन्त्र (फट्)से तथा भस्मद्वारा उसकी शुद्धि करके उसे अपने सामने चौकोर मण्डलमें स्थापित करे। फिर ओंकारका उच्चारण करके गन्ध आदिके द्वारा उस शङ्खकी पूजा करे। उसमें वस्त्र लपेट दे और सुगन्धित जल भरकर प्रणवका उच्चारण करते हुए उसका पूजन करे। तत्पश्चात् सात बार प्रणवके द्वारा फिर उस शङ्खको अभिमन्त्रित करके शिष्यसे कहे—'हे शिष्य ! जो थोड़ा-सा भी अन्तर करता है—भेदभाव रखता है, वह भयका भागी होता है। यह श्रुतिका सिद्धान्त बताया गया, इसलिये तुम अपने चित्तको स्थिर करके निर्भय हो जाओ†।' ऐसा कहकर गुरु स्वयं महादेवजीका ध्यान करते हुए उन्हींके रूपमें शिष्यका अर्चन करे। शिष्यके आसनकी पूजा करके उसमें शिवके आसन और शिवकी मूर्तिकी भावना करे। फिर सिरसे पैरतक 'सद्योजातादि' पाँच मन्त्रोंका न्यास करके मस्तक, मुख और कलाओंके भेदसे प्रणवकी कलाओंका भी न्यास करे। शिष्यके शरीरमें अड़तीस मन्त्ररूपा प्रणवकी कलाओंका न्यास करके उसके मस्तकपर शिवका आवाहन करे। तत्पश्चात् स्थापनी आदि मुद्राओंका प्रदर्शन करे। फिर अङ्गन्यास करके आसनपूर्वक षोडश उपचारोंकी कल्पना करे। खीरका नैवेद्य अर्पण करके 'ॐ स्वाहा' का उच्चारण करे। कुल्ला और आचमन कराये। अर्घ्य आदि देकर क्रमशः धूप-दीपादि समर्पित करे। शिवके आठ नामोंसे पूजन करके वेदोंके पारंगत ब्राह्मणोंके साथ 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' इत्यादि ब्रह्मानन्दवल्लीके मन्त्रोंको तथा 'भृगुर्वै वारुणिः' इत्यादि भृगुवल्लीके मन्त्रोंको पढ़े। तत्पश्चात् 'यो देवानां प्रथमं पुरस्तात्'—(१०। ३) से लेकर 'तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः' (१०। ८)

---

* तत्त्वयोश्चास्म्यहं प्राणः सर्वः सर्वात्मको ह्यहम्। जीवस्य चान्तर्यामित्वाज्जीवोऽहं तस्य सर्वदा॥
यद् भूतं यच्च भव्यं यद् भविष्यत् सर्वमेव च। मन्मयत्वादहं सर्वः सर्वो वै रुद्र इत्यपि॥
श्रुतिराह मुने सा हि साक्षाच्छिवमुखोदिता। सर्वात्मा परमैरेभिर्गुणैर्नित्यसमन्वयात्॥
स्वस्मात् परात्मविरहादद्वितीयोऽहमेव हि। सर्वं खल्विदं ब्रह्मेति वाक्यार्थः पूर्वमीरितः॥
पूर्णोऽहं भावरूपत्वान्नित्यमुक्तोऽहमेव हि। पशवो मत्प्रसादेन मुक्ता मद्भावमाश्रिताः॥
योऽसौ सर्वात्मकः शम्भुः सोऽहं हंसः शिवोऽस्म्यहम्। इति वै सर्ववाक्यार्थो वामदेव शिवोदितः॥
(शि० पु० कै० सं० १९। २६—३१)

† यस्त्वन्तरं किञ्चिदपि कुरुतेऽसौ भवति भीतिभाक्। इत्याह श्रुतिसत्तत्त्वं दृढात्मा गतभीर्भव॥
(शि० पु० कै० सं० १९। ३५-३६)

तक महानारायणोपनिषद्‌के मन्त्रोंका पाठ करे। इसके बाद शिष्यके सामने कह्लार आदिकी बनी हुई माला लेकर खड़े हो गुरु शिवनिर्मित पाञ्चास्थिक शास्त्रके सिद्धिस्कन्दका धीरे-धीरे जप करे। अनुकूल चित्तसे 'पूर्णोऽहम्' इस मन्त्रतकका जप करके गुरु उस मालाको शिष्यके कण्ठमें पहना दे। तदनन्तर ललाटमें तिलक लगाकर सम्प्रदायके अनुसार उसके सर्वाङ्गमें विधिवत् चन्दनका लेप कराये। तत्पश्चात् गुरु प्रसन्नतापूर्वक श्रीपादयुक्त नाम देकर शिष्यको छत्र और चरणपादुका अर्पित करे। उसे व्याख्यान देने तथा आवश्यक कर्म आदिके लिये गुर्वासन ग्रहण करनेका अधिकार दे। फिर गुरु अपने उस शिवरूपी शिष्यपर अनुग्रह करके कहे—''तुम सदा समाधिस्थ रहकर 'मैं शिव हूँ' इस प्रकारकी भावना करते रहो।'' यों कहकर वह स्वयं शिवको नमस्कार करे। फिर सम्प्रदायकी मर्यादाके अनुसार दूसरे लोग भी उसे नमस्कार करें। उस समय शिष्य उठकर गुरुको नमस्कार करे। अपने गुरुके गुरुको और उनके शिष्योंको भी मस्तक झुकाये।

इस प्रकार नमस्कार करके सुशील शिष्य जब मौन और विनीतभावसे गुरुके समीप खड़ा हो, तब गुरु स्वयं उसे इस प्रकारका उपदेश दे—'बेटा! आजसे तुम समस्त लोकोंपर अनुग्रह करते रहो। यदि कोई शिष्य होनेके लिये आये तो पहले उसकी परीक्षा कर लो, फिर शास्त्रविधिके अनुसार उसे शिष्य बनाओ। राग आदि दोषोंका त्याग करके निरन्तर शिवका चिन्तन करते रहो। श्रेष्ठ सम्प्रदायके सिद्ध पुरुषोंका सङ्ग करो, दूसरोंका नहीं। प्राणोंपर संकट आ जाय तो भी शिवका पूजन किये बिना कभी भोजन न करो। गुरुभक्तिका आश्रय ले सुखी रहो, सुखी रहो।'*

मुनीश्वर वामदेव! तुम्हारे स्नेहवश अत्यन्त गोपनीय होनेपर भी मैंने यह योगपट्टका प्रकार तुम्हें बताया है। ऐसा कहकर स्कन्दने यतियोंपर कृपा करके उनसे संन्यासियोंके क्षौर और स्नानविधिका वर्णन किया।

(अध्याय १७—१९)

☆

यतिके अन्त्येष्टिकर्मकी दशाहपर्यन्त विधिका वर्णन

वामदेवजी बोले—जो मुक्त यति हैं, उनके शरीरका दाहकर्म नहीं होता। मरनेपर उनके शरीरको गाड़ दिया जाता है, यह मैंने सुना है। मेरे गुरु कार्तिकेय! आप प्रसन्नतापूर्वक यतियोंके उस अन्त्येष्टिकर्मका मुझसे वर्णन कीजिये; क्योंकि तीनों लोकोंमें आपके सिवा दूसरा कोई इस विषयका वर्णन करनेवाला नहीं है। भगवन्! शंकरनन्दन! जो पूर्ण परब्रह्ममें अहंभावका आश्रय ले देहपञ्जरसे मुक्त हो गये हैं तथा जो

---

* रागादिदोषान् संत्यज्य शिवध्यानपरो भव। सत्सम्प्रदायसंसिद्धैः सङ्गं कुरु न चेतरैः॥
अनभ्यर्च्य शिवं जातु मा भुङ्क्ष्व प्राणसंकटम्। गुरुभक्तिं समास्थाय सुखी भव सुखी भव॥
(शि॰ पु॰ कै॰ सं॰ १९। ५३-५४)

उपासनाके मार्गसे शरीरबन्धनसे मुक्त हो परमात्माको प्राप्त हुए हैं, उनकी गतिमें क्या अन्तर है—यह बताइये। प्रभो ! मैं आपका शिष्य हूँ, इसलिये अच्छी तरह विचार करके प्रसन्नतापूर्वक मुझसे इस विषयका वर्णन कीजिये।

स्कन्दने कहा—जो कोई यति समाधिस्थ हो शिवके चिन्तनपूर्वक अपने शरीरका परित्याग करता है, वह यदि महान् धीर हो तो परिपूर्ण शिवरूप हो जाता है; किंतु यदि कोई अधीरचित्त होनेके कारण समाधिलाभ नहीं कर पाता तो उसके लिये उपाय बताता हूँ; सावधान होकर सुनो। वेदान्त-शास्त्रके वाक्योंसे जो ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय—इन तीन पदार्थोंका परिज्ञान होता है, उसे गुरुके मुखसे सुनकर यति यम-नियमादिरूप योगका अभ्यास करे। उसे करते हुए वह भलीभाँति शिवके ध्यानमें तत्पर रहे। मुने ! उसे नित्य नियमपूर्वक प्रणवके जप और अर्थचिन्तनमें मनको लगाये रखना चाहिये। मुने ! यदि देहकी दुर्बलताके कारण धीरता धारण करनेमें असमर्थ यति निष्कामभावसे शिवका स्मरण करके अपने जीर्ण शरीरको त्याग दे तो भगवान् सदाशिवके अनुग्रहसे नन्दीके भेजे हुए विख्यात पाँच आतिवाहिक देवता आते हैं। उनमेंसे कोई तो अग्निका अभिमानी, कोई ज्योतिःपुञ्जस्वरूप, कोई दिनाभिमानी, कोई शुक्लपक्षाभिमानी और कोई उत्तरायणका अभिमानी होता है। ये पाँचों सब प्राणियोंपर अनुग्रह करनेमें तत्पर रहते हैं। इसी तरह धूमाभिमानी, तमका अभिमानी, रात्रिका अभिमानी, कृष्ण-पक्षका अभिमानी और दक्षिणायनका अभिमानी—ये सब मिलकर पाँच होते हैं। ये पाँचों विख्यात देवता दक्षिण मार्गमें प्रसिद्ध हैं। महामुने वामदेव ! अब तुम उन सब देवताओंकी वृत्तिका वर्णन सुनो। कर्मके अनुष्ठानमें लगे हुए जीवोंको साथ ले ये पाँचों देवता उनके पुण्यवश स्वर्गलोकको जाते हैं और वहाँ यथोक्त भोगोंका उपभोग करके वे जीव पुण्य क्षीण होनेपर पुनः मनुष्यलोकमें आते तथा पूर्ववत् जन्म ग्रहण करते हैं।

इनके सिवा जो उत्तर मार्गके पाँच देवता हैं, वे भूतलसे लेकर ऊर्ध्वलोकतकके मार्गको पाँच भागोंमें विभक्त करके यतिको साथ ले क्रमशः अग्नि आदिके मार्गमें होते हुए उसे सदाशिवके धाममें पहुँचाते हैं। वहाँ देवाधिदेव महादेवके चरणोंमें प्रणाम करके लोकानुग्रहके कर्ममें ही लगाये गये वे अनुग्राहकार देवता उन सदाशिवके पीछे खड़े हो जाते हैं। यतिको आया देख देवाधिदेव सदाशिव यदि वह विरक्त हो तो उसे महामन्त्रके तात्पर्यका उपदेश दे गणपतिके पदपर अभिषिक्त करके अपने ही समान शरीर देते हैं। इस प्रकार सर्वेश्वर सर्वनियन्ता भगवान् शंकर उसपर अनुग्रह करते हैं। उसे अनुगृहीत करके निश्चल समाधि देते हैं। अपने प्रति दास्यभावकी फलस्वरूपा तथा सूर्य आदिके कार्य करनेकी शक्तिरूपा ऐसी सिद्धियाँ प्रदान करते हैं, जो कहीं अवरुद्ध नहीं होतीं। साथ ही वे जगद्गुरु शंकर उस यतिको वह परम मुक्ति देते हैं, जो ब्रह्माजीकी आयु समाप्त होनेपर भी पुनरावृत्तिके चक्करसे दूर रहती है। अतः यही समष्टिमान् सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे युक्त पद है और यही मोक्षका राजमार्ग है, ऐसा

वेदान्तशास्त्रका निश्चय है।

जिस समय यति मरणासन्न हो शरीरसे शिथिल हो जाय, उस समय उस श्रेष्ठ सम्प्रदायवाले दूसरे यति अनुकूलताकी भावना ले उसके चारों ओर खड़े हो जायँ। वे सब वहाँ क्रमशः प्रणव आदि वाक्योंका उपदेश दे उनके तात्पर्यका सावधानी और प्रसन्नताके साथ सुस्पष्ट वर्णन करें तथा जबतक उसके प्राणोंका लय न हो जाय तबतक निर्गुण परमज्योतिःस्वरूप सदाशिवका उसे निरन्तर स्मरण कराते रहें। सब यतियोंका यहाँ समानरूपसे संस्कार-क्रम बताया जाता है। संन्यासी सब कर्मोंका त्याग करके भगवान् शिवका आश्रय ग्रहण कर लेते हैं। इसलिये उनके शरीरका दाहसंस्कार नहीं होता और उसके न होनेसे उनकी दुर्गति नहीं होती। संन्यासीके शरीरको दूषित करनेवाले राजाका राज्य नष्ट हो जाता है। उसके गाँवोंमें रहनेवाले लोग अत्यन्त दुःखी हो जाते हैं। इसलिये उस दोषका परिहार करनेके लिये शान्तिका विधान बताया जाता है। उस समय 'नम इरिण्याय' से लेकर 'नम अमीवकेभ्यः' तकके मन्त्रका विनीतचित्त होकर जप करे। फिर अन्तमें ओंकारका जप करते हुए मिट्टीसे देवयजनकी* पूर्ति करे। मुनीश्वर! ऐसा करनेसे उस दोषकी शान्ति हो जाती है।

(अब संन्यासीके शवके संस्कारकी विधि बताते हैं।) पुत्र या शिष्य आदिको चाहिये कि यतिके शरीरका यथोचित रीतिसे उत्तम संस्कार करे। ब्रह्मन्! मैं कृपापूर्वक संस्कारकी विधि बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो। पहले यतिके शरीरको शुद्ध जलसे नहलाकर पुष्प आदिसे उसकी पूजा करे। पूजनके समय श्रीरुद्रसम्बन्धी चमकाध्याय और नमकाध्यायका पाठ करके रुद्रसूक्तका उच्चारण करे। उसके आगे शङ्खकी स्थापना करके शङ्खस्थ जलसे यतिके शरीरका अभिषेक करे। सिरपर पुष्प रखकर प्रणवद्वारा उसका मार्जन करे। पहलेके कौपीन आदिको हटाकर दूसरे नवीन कौपीन आदि धारण कराये। फिर विधिपूर्वक उसके सारे अङ्गोंमें भस्म लगाये। विधिवत् त्रिपुण्ड्र लगाकर चन्दनद्वारा तिलक करे। फिर फूलों और मालाओंसे उसके शरीरको अलंकृत करे। छाती, कण्ठ, मस्तक, बाँह, कलाई और कानोंमें क्रमशः रुद्राक्षकी मालाके आभूषण मन्त्रोच्चारणपूर्वक धारण कराकर उन सब अङ्गोंको सुशोभित करे। फिर धूप देकर उस शरीरको उठाये और विमानके ऊपर रखकर ईशानादि पञ्चब्रह्ममय रमणीय रथपर स्थापित करे। आदिमें ओंकारसे युक्त पाँच सद्योजातादि ब्रह्ममन्त्रोंका उच्चारण करके सुगन्धित पुष्पों और मालाओंसे उस रथको सुसज्जित करे। फिर नृत्य, वाद्य तथा ब्राह्मणोंके वेदमन्त्रोच्चारणकी ध्वनिके साथ ग्रामकी प्रदक्षिणा करते हुए उस प्रेतको बाहर ले जाय।

तदनन्तर साथ गये हुए वे सब यति गाँवके पूर्व या उत्तर दिशामें पवित्र स्थानमें किसी पवित्र वृक्षके निकट देवयजन (गड्ढा) खोदें। उसकी लम्बाई संन्यासीके दण्डके बराबर ही होनी चाहिये। फिर प्रणव

* संन्यासीके शरीरको गाड़नेके लिये जो गड्ढा खोदा जाता है, उसको 'देवयजन' कहते हैं।

तथा व्याहृति-मन्त्रोंसे उस स्थानका प्रोक्षण करके वहाँ क्रमशः शमीके पत्र और फूल बिछाये। उनके ऊपर उत्तराग्र कुश बिछाकर उसपर योगपीठ रखे। उसके ऊपर पहले कुश बिछाये, कुशोंके ऊपर मृगचर्म तथा उसके भी ऊपर वस्त्र बिछाकर प्रणवसहित सद्योजातादि पञ्चब्रह्ममन्त्रोंका पाठ करते हुए पञ्चगव्योंद्वारा उस शवका प्रोक्षण करे। तत्पश्चात् रुद्रसूक्त एवं प्रणवका उच्चारण करते हुए शङ्खके जलसे उसका अभिषेक करके उसके मस्तकपर फूल डाले। शिष्य आदि संस्कारकर्ता पुरुष वहाँ गये हुए मृत यतिके अनुकूल भाव रखते हुए शिवका चिन्तन करता रहे। तदनन्तर ॐकारका उच्चारण और स्वस्तिवाचन करके उस शवको उठाकर गड्ढेके भीतर योगासनपर इस तरह बिठाये जिससे उसका मुख पूर्व दिशाकी ओर रहे। फिर चन्दन-पुष्पसे अलंकृत करके उसे धूप और गुग्गुलकी सुगन्ध दे। इसके बाद 'विष्णो! हव्यमिदं रक्षस्व' ऐसा कहकर उसके दाहिने हाथमें दण्ड दे और 'प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो॰' (शु॰ यजु॰ २३। ६५) इस मन्त्रको पढ़कर बायें हाथमें जलसहित कमण्डलु अर्पित करे। फिर 'ब्रह्म यज्ञानं प्रथमं॰' (शु॰ यजु॰ १३। ३) इस मन्त्रसे उसके मस्तकका स्पर्श करके दोनों भौंहोंके स्पर्शपूर्वक रुद्रसूक्तका जप करे। तत्पश्चात् 'मा नो महान्तमुत' (शु॰ यजु॰ १६। १५) इत्यादि चार मन्त्रोंको पढ़कर नारियलके द्वारा यतिके शवके मस्तकका भेदन करे। इसके बाद उस गड्ढेको पाट दे। फिर उस स्थानका स्पर्श करके अनन्यचित्तसे पाँच ब्रह्ममन्त्रोंका जप करे। तदनन्तर 'यो देवानां प्रथमं पुरस्तात्' (१०। ३) से लेकर 'तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः।' (१०। ८) तक महानारायणोपनिषद्के मन्त्रोंका जप करके संसाररूपी रोगके भेषज, सर्वज्ञ, स्वतन्त्र तथा सबपर अनुग्रह करनेवाले उमासहित महादेवजीका चिन्तन एवं पूजन करे। (पूजनकी विधि यों है—)

एक हाथ ऊँचे और दो हाथ लंबे-चौड़े एक पीठका मिट्टीके द्वारा निर्माण करे। फिर उसे गोबरसे लीपे। वह पीठ चौकोर होना चाहिये। उसके मध्यभागमें उमा-महेश्वरको स्थापित करके गन्ध, अक्षत, सुगन्धित पुष्प, बिल्वपत्र और तुलसीदलोंसे उनकी पूजा करे। तत्पश्चात् प्रणवसे धूप और दीप निवेदन करे। फिर दूध और हविष्यका नैवेद्य लगाकर पाँच बार परिक्रमा करके नमस्कार करे। फिर बारह बार प्रणवका जप करके प्रणाम करे। तदनन्तर (ब्रह्मीभूत यतिकी तृप्तिके लिये नारायणपूजन, बलिदान, घृतदीप-दानका संकल्प करके गर्तके ऊपर मृण्मय लिङ्ग बनाकर पुरुषसूक्तसे पूजा करके घृतमिश्रित पायसकी बलि दे। पीछे दीप जला पायसबलिको जलमें डाल दे) तत्पश्चात् दिशाविदिशाओंके क्रमसे प्रणवके उच्चारणपूर्वक 'ॐ ब्रह्मणे नमः' इस मन्त्रसे ब्रह्मीभूत यतिके लिये शङ्खसे आठ बार अर्घ्यजल दे। इस प्रकार दस दिनोंतक करता रहे। मुनिश्रेष्ठ! यह दशाहतककी विधि तुम्हें बतायी गयी। अब यतियोंके एकादशाहकी विधि सुनो। (अध्याय २०-२१)

☆

यतिके लिये एकादशाह-कृत्यका वर्णन

स्कन्दजी कहते हैं—वामदेव ! यतिका एकादशाह प्राप्त होनेपर जो विधि बतायी गयी है, उसका मैं तुम्हारे स्नेहवश वर्णन करता हूँ। मिट्टीकी वेदी बनाकर उसका सम्मार्जन और उपलेपन करे। तत्पश्चात् पुण्याहवाचनपूर्वक प्रोक्षण करके पश्चिमसे लेकर पूर्वकी ओर पाँच मण्डल बनाये और स्वयं श्राद्धकर्ता उत्तराभिमुख बैठकर कार्य करे। प्रादेशमात्र लंबा-चौड़ा चौकोर मण्डल बनाकर उसके मध्यभागमें बिन्दु, उसके ऊपर त्रिकोण मण्डल, उसके ऊपर षट्कोण मण्डल और उसके ऊपर गोल मण्डल बनाये। फिर अपने सामने शङ्खकी स्थापना करके पूजाके लिये बतायी हुई पद्धतिके क्रमसे आचमन, प्राणायाम एवं संकल्प करके पूर्वोक्त पाँच आतिवाहिक देवताओंका देवेश्वरी देवियोंके रूपमें पूजन करे। उत्तर ओर आसनके लिये कुश डालकर जलका स्पर्श करे। पश्चिमसे आरम्भ करके पूर्वपर्यन्त जो मण्डल बताये गये हैं, उनके भीतर पीठके रूपमें पुष्प रखे और उन पुष्पोंपर क्रमशः उक्त पाँचों देवियोंका आवाहन करे। पहले अग्नि-पुञ्जस्वरूपिणी आतिवाहिक देवीका आवाहन करते हुए इस प्रकार कहे—'ॐ ह्रीं अग्निरूपामातिवाहिकदेवताम् आवाहयामि नमः'। इस प्रकार सर्वत्र वाक्ययोजना और भावना करे। इस तरह पाँचों देवियोंका आवाहन करके प्रत्येकके लिये आदरपूर्वक स्थापना आदि मुद्राओंका प्रदर्शन करे। तत्पश्चात् ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः—इन बीजमन्त्रोंद्वारा षडङ्गन्यास और करन्यास करे। इसके बाद उन देवियोंका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये। उन सबके चार-चार हाथ हैं। उनमेंसे दो हाथोंमें वे पाश और अङ्कुश धारण करती हैं तथा शेष दो हाथोंमें अभय और वरद मुद्राएँ हैं। उनकी अङ्गकान्ति चन्द्रकान्तिमणिके समान है। लाल अँगूठियोंकी प्रभासे उन्होंने सम्पूर्ण दिशाओंके मुख-मण्डलको रँग दिया है। वे लाल वस्त्र धारण करती हैं। उनके हाथ और पैर कमलोंके समान शोभा पाते हैं। तीन नेत्रोंसे सुशोभित मुखरूपी पूर्ण चन्द्रमाकी छटासे वे मनको मोहे लेती हैं। माणिक्य-निर्मित मुकुटोंसे उद्भासित चन्द्रलेखा उनके सीमन्तको विभूषित कर रही है। कपोलोंपर रत्नमय कुण्डल झलमला रहे हैं। उनके उरोज पीन तथा उन्नत हैं। हार, केयूर, कड़े और करधनीकी लड़ियोंसे विभूषित होनेके कारण वे बड़ी मनोहारिणी जान पड़ती हैं। उनका कटिभाग कृश और नितम्ब स्थूल हैं। उनके अंग लाल रंगके दिव्य वस्त्रोंसे आच्छादित हैं। चरणारविन्दोंमें माणिक्यनिर्मित पायजेबोंकी झनकार होती रहती है। पैरोंकी अँगुलियोंमें बिछुओंकी पंक्ति अत्यन्त सुन्दर एवं मनोहर है।

यदि अनुग्रह मूर्तिके समान मूर्तिमान् हो तो उससे क्या सिद्ध हो सकता है। इसलिये वे देवियाँ महेश्वरकी भाँति शक्त्यात्मक मूर्तिवाले अनुग्रहसे सम्पन्न हैं। अतः उनके अनुग्रहसे सब कुछ सिद्ध हो सकता है। सबपर अनुग्रह करनेवाले भगवान् शिवने ही उन पाँच मूर्तियोंको स्वीकार किया है। इसलिये वे दिव्य, सम्पूर्ण कार्य करनेमें समर्थ तथा परम अनुग्रहमें तत्पर हैं। इस प्रकार उन सब अनुग्रहपरायणा कल्याणमयी

देवियोंका ध्यान करके इनके लिये शङ्खस्थ जलके बिन्दुओंद्वारा पैरोंमें पाद्य, हाथोंमें आचमनीय तथा मस्तकोंपर अर्घ्य देना चाहिये। तदनन्तर शङ्खके जलकी बूँदोंसे उनका स्नानकर्म सम्पन्न कराना चाहिये। स्नानके पश्चात् दिव्य लाल रंगके वस्त्र और उत्तरीय अर्पित करे। बहुमूल्य मुकुट एवं आभूषण दे (इन वस्तुओंके अभावमें मनके द्वारा भावना करके इन्हें अर्पित करना चाहिये)। तत्पश्चात् सुगन्धित चन्दन, अत्यन्त सुन्दर अक्षत तथा उत्तम गन्धसे युक्त मनोहर पुष्प चढ़ाये। अत्यन्त सुगन्धित धूप और घीकी बत्तीसे युक्त दीपक निवेदन करे। इन सब वस्तुओंको अर्पण करते समय आरम्भमें 'ओं ह्रीं' का प्रयोग करके फिर 'समर्पयामि नमः' बोलना चाहिये यथा 'ॐ ह्रीं अग्न्यादिरूपाभ्यः पञ्चदेवीभ्यः दीपं समर्पयामि नमः।' इस तरह अन्य उपचारोंको अर्पित करते समय वाक्ययोजना कर लेनी चाहिये।

दीपसमर्पणके पश्चात् हाथ जोड़कर प्रत्येक देवीके लिये पृथक्-पृथक् केलेके पत्तेपर पूरा-पूरा सुवासित नैवेद्य रखे। वह नैवेद्य घी, शक्कर और मधुसे मिश्रित खीर, पूआ, केलेके फल और गुड़ आदिके रूपमें होना चाहिये। 'भूर्भुवः स्वः' बोलकर उसका प्रोक्षण आदि संस्कार करे। फिर 'ॐ ह्रीं स्वाहा नैवेद्यं निवेदयामि नमः' बोलकर नैवेद्य-समर्पणके पश्चात् 'ॐ ह्रीं नैवेद्यान्ते आचमनार्थं पानीयं समर्पयामि नमः।' कहते हुए बड़े प्रेमसे जल अर्पित करे। मुनिश्रेष्ठ! तत्पश्चात् प्रसन्नतापूर्वक नैवेद्यको पूर्व दिशामें हटा दे और उस स्थानको शुद्ध करके कुल्ला, आचमन तथा अर्घ्यके लिये जल दे। फिर ताम्बूल, धूप और दीप देकर परिक्रमा एवं नमस्कार करके मस्तकपर हाथ जोड़ इन सब देवियोंसे इस प्रकार प्रार्थना करे—'हे श्रीमाताओ! आप अत्यन्त प्रसन्न हो शिवपदकी अभिलाषा रखनेवाले इस यतिको परमेश्वरके चरणारविन्दोंमें रख दें और इसके लिये अपनी स्वीकृति दें।' इस प्रकार प्रार्थना करके उन सबका, वे जैसे आयी थीं, उसी तरह विदा देकर, विसर्जन कर दे और उनका प्रसाद लेकर कुमारी कन्याओंको बाँट दे या गौओंको खिला दे अथवा जलमें डाल दे। इनके सिवा और कहीं किसी प्रकार भी न डाले।

यहीं पार्वण करे। यतिके लिये कहीं भी एकोद्दिष्ट श्राद्धका विधान नहीं है। यहाँ पार्वण-श्राद्धके लिये जो नियम है, उसे मैं बता रहा हूँ। मुनिश्रेष्ठ! तुम उसे सुनो। इससे कल्याणकी प्राप्ति होगी। श्राद्धकर्ता पुरुष स्नान करके प्राणायाम करे। यज्ञोपवीत पहन सावधान हो हाथमें पवित्री धारण करके देश-कालका कीर्तन करनेके पश्चात् 'मैं इस पुण्यतिथिको पार्वण-श्राद्ध करूँगा' इस तरह संकल्प करे। संकल्पके बाद उत्तर दिशामें आसनके लिये उत्तम कुश बिछाये। फिर जलका स्पर्श करे। उन आसनोंपर दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाले चार शिवभक्त ब्राह्मणोंको बुलाकर भक्तिभावसे बिठाये। वे ब्राह्मण उबटन लगाकर स्नान किये होने चाहिये। उनमेंसे एक ब्राह्मणसे कहे—'आप विश्वेदेवके लिये यहाँ श्राद्ध ग्रहण करनेकी कृपा करें।' इसी तरह दूसरेसे आत्माके लिये, तीसरेसे अन्तरात्माके लिये और चौथेसे परमात्माके लिये श्राद्ध ग्रहण

करनेकी प्रार्थना करके श्राद्धकर्ता यति श्रद्धा और आदरपूर्वक उन सबका यथोचितरूपसे वरण करे। फिर उन सबके पैर धोकर उन्हें पूर्वाभिमुख बिठाये और गन्ध आदिसे अलंकृत करके शिवके सम्मुख भोजन कराये। तदनन्तर वहाँ गोबरसे भूमिको लीपकर पूर्वाग्र कुश बिछाये और प्राणायामपूर्वक पिण्डदानके लिये संकल्प करके तीन मण्डलोंकी पूजा करे। इसके बाद पहले पिण्डको हाथमें ले 'आत्मने इमं पिण्डं ददामि' ऐसा कहकर उस पिण्डको प्रथम मण्डलमें दे दे। तत्पश्चात् दूसरे पिण्डको 'अन्तरात्मने इमं पिण्डं ददामि' कहकर दूसरे मण्डलमें दे दे। फिर तीसरे पिण्डको 'परमात्मने इमं पिण्डं ददामि' कहकर तीसरे मण्डलमें अर्पित करे। इस तरह भक्ति-भावसे विधिपूर्वक पिण्ड और कुशोदक दे। तत्पश्चात् उठकर परिक्रमा और नमस्कार करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको विधिवत् दक्षिणा दे। उसी जगह और उसी दिन नारायणबलि करे। रक्षाके लिये ही सर्वत्र श्रीविष्णुकी पूजाका विधान है। अतः विष्णुकी महापूजा करे और खीरका नैवेद्य लगाये। इसके बाद वेदोंके पारंगत बारह विद्वान् ब्राह्मणोंको बुलाकर केशव आदि नाम-मन्त्रोंद्वारा गन्ध, पुष्प और अक्षत आदिसे उनकी पूजा करे। उनके लिये विधिपूर्वक जूता, छाता और वस्त्र आदि दे। अत्यन्त भक्तिसे भाँति-भाँतिके शुभ वचन कहकर उन्हें संतोष दे। फिर पूर्वाग्र कुशोंको बिछाकर 'ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ सुवः स्वाहा' ऐसा उच्चारण करके पृथ्वीपर खीरकी बलि दे। मुनीश्वर! यह मैंने एकादशाहकी विधि बतायी है। अब द्वादशाहकी विधि बताता हूँ, आदरपूर्वक सुनो।

(अध्याय २२)

☆

यतिके द्वादशाह-कृत्यका वर्णन, स्कन्द और वामदेवका कैलास पर्वतपर जाना तथा सूतजीके द्वारा इस संहिताका उपसंहार

स्कन्दजी कहते हैं—वामदेव! बारहवें दिन प्रातःकाल उठकर श्राद्धकर्ता पुरुष स्नान और नित्यकर्म करके शिवभक्तों, यतियों अथवा शिवके प्रति प्रेम रखनेवाले ब्राह्मणोंको* निमन्त्रित करे। मध्याह्नकालमें स्नान करके पवित्र हुए उन ब्राह्मणोंको बुलाकर भक्तिभावसे विधि-पूर्वक भाँति-भाँतिके स्वादिष्ट अन्न भोजन कराये। फिर परमेश्वरके निकट बिठाकर पञ्चावरण-पद्धतिसे उनका पूजन करे। तत्पश्चात् मौनभावसे प्राणायाम करके देश-काल आदिके कीर्तनपूर्वक महान् संकल्पकी प्रणालीके अनुसार संकल्प करते हुए—'अस्मद्गुरोरिह पूजां करिष्ये (मैं अपने गुरुकी यहाँ पूजा करूँगा)' ऐसा कहकर कुशोंका स्पर्श करे। फिर

* धर्मसिन्धुके अनुसार सोलह ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करना चाहिये। इनमेंसे चार तो गुरु, परमगुरु, परमेष्ठि गुरु और परात्पर गुरुके लिये होते हैं और बारह ब्राह्मणोंकी केशवादि नामोंसे पूजा होती है। परंतु इस पुराणमें दिये गये वर्णनके अनुसार बारह ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करना आवश्यक है।

ब्राह्मणोंके पैर धोकर आचमन करके श्राद्धकर्ता मौन रहे और भस्मसे विभूषित उन ब्राह्मणोंको पूर्वाभिमुख आसनपर बिठाये। वहाँ सदाशिव आदिके क्रमसे उन आठ ब्राह्मणोंका बड़े आदरके साथ चिन्तन करे अर्थात् उन्हें सदाशिव आदिका स्वरूप माने। मुने! अन्य चार ब्राह्मणोंका भी चार गुरुओंके रूपमें चिन्तन करे। चारों गुरु ये हैं—गुरु, परमगुरु, परात्पर गुरु और परमेष्ठी गुरु। परमेष्ठी गुरुका उनमें उमासहित महेश्वरकी भावना करते हुए चिन्तन करे। अपने गुरुका नाम लेकर ध्यान करे। उन सबके लिये 'इदमासनम्' ऐसा कहकर पृथक्-पृथक् आसन रखे। आदिमें प्रणव, बीचमें द्वितीयान्त गुरु तथा अन्तमें 'आवाहयामि नमः' बोलकर आवाहन करे। यथा—ॐ अमुकनामानं गुरुम् आवाहयामि नमः। ॐ परमगुरुम् आवाहयामि नमः। ॐ परात्परगुरुम् आवाहयामि नमः। ॐ परमेष्ठिगुरुम् आवाहयामि नमः। इस प्रकार आवाहन करके अर्घोदक (अर्घमें रखे हुए जल) से पाद्य, आचमन और अर्घ्य निवेदन करे। फिर वस्त्र, गन्ध और अक्षत देकर 'ॐ गुरवे नमः' इत्यादि रूपसे गुरुओंको तथा 'ॐ सदाशिवाय नमः' इत्यादि रूपसे आठ नामोंके उच्चारणपूर्वक आठ अन्य ब्राह्मणोंको सुगन्धित फूलोंसे अलंकृत करे। तत्पश्चात् धूप, दीप देकर 'कृतमिदं सकलमाराधनं सम्पूर्णमस्तु (की गयी यह सारी आराधना पूर्णरूपसे सफल हो)' ऐसा कहकर खड़ा हो नमस्कार करे। इसके बाद केलेके पत्तोंको पात्ररूपमें बिछाकर जलसे शुद्ध करके उनपर शुद्ध अन्न, खीर, पूआ, दाल और साग आदि व्यञ्जन परोसकर केलेके फल, नारियल और गुड़ भी रखे। पात्रोंको रखनेके लिये आसन भी अलग-अलग दे। उन आसनोंका क्रमशः प्रोक्षण करके उन्हें यथास्थान रखे। फिर भोजनपात्रका भी प्रोक्षण एवं अभिषेक करके हाथसे उसका स्पर्श करते हुए कहे—'विष्णो! हव्यमिदं रक्षस्व (हे विष्णो! इस हविष्यको आप सुरक्षित रखें)' फिर उठकर उन ब्राह्मणोंको पीनेके लिये जल देकर उनसे इस प्रकार प्रार्थना करे—'सदाशिवादयो मे प्रीता वरदा भवन्तु (सदाशिव आदि मुझपर प्रसन्न हो अभीष्ट वर देनेवाले हों)'।

इसके बाद 'ये देवा' (शु० यजु० १७। १३-१४) आदि मन्त्रका उच्चारण करके अक्षतसहित इस अन्नका त्याग करे। फिर नमस्कार करके उठे और 'सर्वंब्राह्मकृतमस्तु।' ऐसा कहकर ब्राह्मणोंको संतुष्ट करके 'गणानां त्वा' (शु० यजु० २३। १९) इस मन्त्रका पहले पाठ करके चारों वेदोंके आदिमन्त्रोंका, रुद्राध्यायका, चमकाध्यायका, रुद्रसूक्तका तथा सद्योजातादि पाँच ब्रह्ममन्त्रोंका पाठ करे। ब्राह्मण-भोजनके अन्तमें भी यथासम्भव मन्त्र बोले और अक्षत छोड़े, फिर आचमनादि जल दे। हाथ-पैर और मुँह धोनेके लिये भी जल अर्पित करे। आचमनके पश्चात् सब ब्राह्मणोंको सुखपूर्वक आसनोंपर बिठाकर शुद्ध जल देनेके अनन्तर मुखशुद्धिके लिये यथोचित कपूर आदिसे युक्त ताम्बूल अर्पित करे। फिर दक्षिणा, चरणपादुका, आसन, छाता, व्यजन, चौकी और बाँसकी छड़ी देकर परिक्रमा और नमस्कारके द्वारा उन ब्राह्मणोंको संतुष्ट करे तथा उनसे आशीर्वाद

ले। पुनः प्रणाम करके गुरुके प्रति अविचल भक्तिके लिये प्रार्थना करे। तत्पश्चात् विसर्जनकी भावनासे कहे—'सदाशिवादयः प्रीता यथासुखं गच्छन्तु' (सदाशिव आदि संतुष्ट हो सुखपूर्वक यहाँसे पधारें)। इस प्रकार विदा करके दरवाजेतक उनके पीछे-पीछे जाय। फिर उनके रोकनेपर आगे न जाकर लौट आये। लौटकर द्वारपर बैठे हुए ब्राह्मणों, बन्धुजनों, दीनों और अनाथोंके साथ स्वयं भी भोजन करके सुखपूर्वक रहे। ऐसा करनेसे उसमें कहीं भी विकृति नहीं हो सकती। यह सब सत्य है, सत्य है और बारंबार सत्य है। इस प्रकार प्रतिवर्ष गुरुकी उत्तम आराधना करनेवाला शिष्य इस लोकमें महान् भोगोंका उपभोग करके अन्तमें शिवलोकको प्राप्त कर लेता है।

मुने! यह साक्षात् भगवान् शिवका कहा हुआ उत्तम रहस्य है, जो वेदान्तके सिद्धान्तसे निश्चित किया गया है। तुमने मुझसे जो कुछ सुना है, उसे विद्वान् पुरुष तुम्हारा ही मत कहेंगे। अतः यति इसी मार्गसे चलकर 'शिवोऽहमस्मि' (मैं शिव हूँ) इस रूपमें आत्मस्वरूप शिवकी भावना करता हुआ शिवरूप हो जाता है।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार मुनीश्वर वामदेवको उपदेश देकर दिव्य ज्ञानदाता गुरु देवेश्वर कार्तिकेय पिता-माताके सर्वदेव-वन्दित चरणारविन्दोंका चिन्तन करते हुए अनेक शिखरोंसे आवृत, शोभाशाली एवं परम आश्चर्यमय कैलासशिखरको चले गये। श्रेष्ठ शिष्योंसहित वामदेव भी मयूरवाहन कार्तिकेयको प्रणाम करके शीघ्र ही परम अद्भुत कैलासशिखरपर जा पहुँचे और महादेवजीके निकट जा उन्होंने उमासहित महेश्वरके मायानाशक मोक्षदायक चरणोंका दर्शन किया। फिर भक्तिभावसे अपना सारा अङ्ग भगवान् शिवको समर्पित करके, वे शरीरकी सुधि भुलाकर उनके निकट दण्डकी भाँति पड़ गये और बारंबार उठ-उठकर नमस्कार करने लगे। तत्पश्चात् उन्होंने भाँति-भाँतिके स्तोत्रोंद्वारा, जो वेदों और आगमोंके रससे पूर्ण थे, जगदम्बा और पुत्रसहित परमेश्वर शिवका स्तवन किया। इसके बाद देवी पार्वती और महादेवजीके चरणारविन्दको अपने मस्तकपर रखकर उनका पूर्ण अनुग्रह प्राप्त करके वे वहीं सुखपूर्वक रहने लगे। तुम सभी ऋषि भी इसी प्रकार प्रणवके अर्थभूत महेश्वरका तथा वेदोंके गोपनीय रहस्य, वेदसर्वस्व और मोक्षदायक तारक मन्त्र ॐकारका ज्ञान प्राप्त करके यहीं सुखसे रहो तथा विश्वनाथजीके चरणोंमें सायुज्यरूपा अनुपम एवं उत्तम मुक्तिका चिन्तन किया करो। अब मैं गुरुदेवकी सेवाके लिये बदरिकाश्रम तीर्थको जाऊँगा। तुम्हें फिर मेरे साथ सम्भाषणका एवं सत्संगका अवसर प्राप्त हो।

(अध्याय २३)

॥ कैलाससंहिता सम्पूर्ण ॥

वायवीयसंहिता (पूर्वखण्ड)

प्रयागमें ऋषियोंद्वारा सम्मानित सूतजीके द्वारा कथाका आरम्भ, विद्यास्थानों एवं पुराणोंका परिचय तथा वायुसंहिताका प्रारम्भ

व्यास उवाच

नमः शिवाय सोमाय सगणाय ससूनवे।
प्रधानपुरुषेशाय सर्गस्थित्यन्तहेतवे॥
शक्तिस्तिमा यस्य ह्यैश्वर्यं चापि सर्वगम्।
स्वामित्वं च विभुत्वं च स्वभावं सम्प्रचक्षते॥
तमजं विश्वकर्माणं शाश्वतं शिवमव्ययम्।
महादेवं महात्मानं व्रजामि शरणं शिवम्॥

व्यासजी कहते हैं—जो जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहारके हेतु तथा प्रकृति और पुरुषके ईश्वर हैं, उन प्रमथगण, पुत्रद्वय तथा उमासहित भगवान् शिवको नमस्कार है। जिनकी शक्तिकी कहीं तुलना नहीं है, जिनका ऐश्वर्य सर्वत्र व्यापक है तथा स्वामित्व और विभुत्व जिनका स्वभाव कहा गया है, उन विश्वस्रष्टा, सनातन, अजन्मा, अविनाशी, महान् देव, मङ्गलमय परमात्मा शिवकी मैं शरण लेता हूँ।

जो धर्मका क्षेत्र और महान् तीर्थ है, जहाँ गङ्गा और यमुनाका संगम हुआ है तथा जो ब्रह्मलोकका मार्ग है, उस प्रयागमें शुद्ध हृदयवाले सत्यव्रतपरायण महातेजस्वी एवं महाभाग मुनियोंने एक महान् यज्ञका आयोजन किया। वहाँ क्लेशरहित कर्म करनेवाले उन महात्माओंके यज्ञका समाचार सुनकर निपुण कथावाचक, त्रिकालवेत्ता, उत्तम नीतिके ज्ञाता तथा क्रान्तदर्शी विद्वान् पौराणिकशिरोमणि सूतजी उस स्थानपर आये। सूतजीको आते देख मुनियोंका मन प्रसन्नतासे खिल उठा। उन्होंने उनसे सान्त्वनापूर्ण मधुर बातें कहकर उनकी यथायोग्य पूजा की। मुनियोंद्वारा की हुई उस पूजाको ग्रहण करके सूतजीने उनकी प्रेरणासे अपने लिये बताये गये उपयुक्त आसनको स्वीकार किया। उस समय महर्षियोंने अनुकूल वचनोंद्वारा उनका सत्कार करते हुए उन्हें अत्यन्त अभिमुख करके यह बात कही।

ऋषि बोले—शिवभक्तशिरोमणि महाबुद्धिमान् महाभाग रोमहर्षणजी! आप सर्वज्ञ हैं और हमारे महान् सौभाग्यसे यहाँ पधारे हैं। तीनों लोकोंमें ऐसी कोई बात नहीं है, जो आपको विदित न हो। आप भाग्यवश हमें दर्शन देनेके लिये स्वयं यहाँ आ गये हैं। अतः अब हमारा कोई कल्याण किये बिना आपको यहाँसे व्यर्थ नहीं जाना चाहिये। इसलिये आप हमें शीघ्र यह पवित्र पुराण सुनाये, जो अत्यन्त श्रवणीय, उत्तम कथा और ज्ञानसे युक्त तथा वेदान्तके सारसर्वस्वसे सम्पन्न हो। वेदवादी मुनियोंने जब इस प्रकार प्रार्थना की, तब सूतजीने मधुर, न्याययुक्त एवं शुभ वचनोंमें उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया।

सूतजीने कहा—महर्षियो! आपने मेरा सत्कार किया और मुझपर कृपा की है, ऐसी दशामें आपसे प्रेरित होकर मैं आपके समक्ष महर्षियोंद्वारा सम्मानित पुराणका भलीभाँति प्रवचन क्यों नहीं करूँगा। अब मैं महादेवजी, देवी पार्वती, कुमार स्कन्द, गणेशजी, नन्दी तथा सत्यवतीकुमार साक्षात् भगवान् व्यासको प्रणाम करके उस परम पवित्र वेदतुल्य पुराणकी कथा कहूँगा, जो शिवतत्त्वके ज्ञानका सागर है और भोग

एवं मोक्षरूपी फल देनेवाला साक्षात् साधन है। विद्याके सम्पूर्ण स्थानोंका, पुराणोंकी संख्याका और उनकी उत्पत्तिका विवरण दे रहा हूँ। आपलोग मुझसे इस विषयको ध्यानपूर्वक सुनें। छः वेदाङ्ग, चार वेद, मीमांसा, विस्तृत न्यायशास्त्र, पुराण और धर्मशास्त्र—ये चौदह विद्याएँ हैं। इनके साथ आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद और उत्तम अर्थशास्त्रको भी गिन लिया जाय तो ये विद्याएँ अठारह हो जाती हैं। इन अठारह विद्याओंके मार्ग एक-दूसरेसे भिन्न हैं। इन सबके निर्माता त्रिकालदर्शी विद्वान् साक्षात् भगवान् शूलपाणि शिव हैं, ऐसा श्रुतिका कथन है। सम्पूर्ण जगत्के स्वामी उन भगवान् शिवको जब समस्त संसारकी सृष्टि करनेकी इच्छा हुई, तब उन्होंने सबसे पहले अपने सनातन पुत्र साक्षात् ब्रह्माजीको उत्पन्न किया और अपने उन प्रथम पुत्र, विश्वयोनि ब्रह्माको परमेश्वर शिवने जगत्की सृष्टिका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये पहले ये सब विद्याएँ दीं। उसके बाद उन्होंने पालन करनेके लिये भगवान् श्रीहरिको नियुक्त किया और उन्हें जगत्की रक्षाके लिये शक्ति प्रदान की। ये भगवान् विष्णु ब्रह्माजीके भी पालक हैं। ब्रह्माजी विद्या प्राप्त करके जब प्रजाकी सृष्टिके विस्तारकार्यमें लगे, तब उन्होंने सम्पूर्ण शास्त्रोंमें पहले पुराणको ही स्मरण किया और उन्हींको वे प्रकाशमें लाये। पुराणोंके प्रकट होनेके अनन्तर उनके चार मुखोंसे चारों वेदोंका प्रादुर्भाव हुआ। फिर उन्हींके मुखसे सम्पूर्ण शास्त्रोंकी प्रवृत्ति हुई।

द्वापरमें भगवान् श्रीहरि सत्यवतीके गर्भसे उसी तरह प्रकट हुए, जैसे अरणिसे आग प्रकट होती है। उस समय उनका नाम श्रीकृष्णद्वैपायन हुआ। मुनिवर! श्रीकृष्णद्वैपायनने वेदोंको संक्षिप्त करके उन्हें चार भागोंमें विभक्त किया। इस प्रकार चार भागोंमें वेदोंका व्यास (विस्तार) करनेसे वे लोकमें वेदव्यासके नामसे विख्यात हुए। इसी तरह उन्होंने पुराणोंको संक्षिप्त करके चार लाख श्लोकोंमें सीमित किया। आज भी देवलोकमें पुराणोंका विस्तार सौ कोटि श्लोकोंमें है। जो द्विज छहों अङ्गों और उपनिषदोंसहित चारों वेदोंको तो जानता है किन्तु पुराणको नहीं जानता, वह श्रेष्ठ विद्वान् नहीं हो सकता। इतिहास और पुराणोंसे वेदकी व्याख्या करे। जिसका ज्ञान बहुत कम है अर्थात् जो पौराणिक ज्ञानसे शून्य है, ऐसे पुरुषसे वेद यह सोचकर डरता है कि यह मुझपर प्रहार कर बैठेगा। सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—ये पुराणके पाँच लक्षण हैं। छोटे और बड़ेके भेदसे अठारह पुराण बताये गये हैं।

१. ब्राह्मपुराण, २. पद्मपुराण,
३. विष्णुपुराण, ४. शिवपुराण,
५. भागवतपुराण, ६. भविष्यपुराण,
७. नारदपुराण, ८. मार्कण्डेयपुराण,
९. अग्निपुराण, १०. ब्रह्मवैवर्तपुराण,
११. लिङ्गपुराण, १२. वाराहपुराण,
१३. स्कन्दपुराण, १४. वामनपुराण,
१५. कूर्मपुराण, १६. मत्स्यपुराण,
१७. गरुडपुराण और १८. ब्रह्माण्डपुराण—

यह पुराणोंका पवित्र क्रम है। इसमें शिवपुराण चौथा है, जो भगवान् शिवसे सम्बन्ध रखता है और सब मनोरथोंका साधक है। इस ग्रन्थकी श्लोकसंख्या एक लाख है और यह बारह संहिताओंमें विभक्त है। इसका निर्माण साक्षात् भगवान् शिवने

ही किया है तथा इसमें धर्म प्रतिष्ठित है। वेदव्यासने इस एक लाख श्लोकवाले शिवपुराणको संक्षिप्त करके चौबीस हजार श्लोकोंका कर दिया है। इसमें सात संहिताएँ हैं। पहली विद्येश्वरसंहिता, दूसरी रुद्रसंहिता, तीसरी शतरुद्रसंहिता, चौथी कोटिरुद्रसंहिता, पाँचवीं उमासंहिता, छठी कैलाससंहिता और सातवीं वायवीयसंहिता है। इस प्रकार इसमें सात ही संहिताएँ हैं। विद्येश्वरसंहितामें दो हजार, रुद्रसंहितामें दस हजार पाँच सौ, शतरुद्रसंहितामें दो हजार एक सौ अस्सी, कोटिरुद्रसंहितामें दो हजार दो सौ चालीस, उमासंहितामें एक हजार आठ सौ चालीस, कैलाससंहितामें एक हजार दो सौ चालीस और वायवीयसंहितामें चार हजार श्लोक हैं। इस परम पवित्र शिवपुराणको आपलोगोंने सुन लिया। केवल चार हजार श्लोकोंकी वायवीय-संहिता रह गयी है, जो दो भागोंसे युक्त है। उसका वर्णन मैं करूँगा। जो वेदोंका विद्वान् न हो, उससे उत्तम शास्त्रका वर्णन नहीं करना चाहिये। जो पुराणोंको न जानता हो और जिसकी पुराणपर श्रद्धा न हो उससे भी इसकी कथा नहीं कहनी चाहिये। जो भगवान् शिवका भक्त हो, शिवोक्त धर्मका पालन करता हो और दोषदृष्टिसे रहित हो, उस जाँचे-बूझे हुए धर्मात्मा शिष्यको ही इसका उपदेश देना चाहिये। जिनकी कृपासे मुझको पुराणसंहिताका ज्ञान है, उन अमिततेजस्वी भगवान् व्यासको नमस्कार है।

(अध्याय १)

ऋषियोंका ब्रह्माजीके पास जा उनकी स्तुति करके उनसे परमपुरुषके विषयमें प्रश्न करना और ब्रह्माजीका आनन्दमग्न हो 'रुद्र' कहकर उत्तर देना

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! पहले अनेक कल्पोंके बारंबार बीतनेपर सुदीर्घकालके पश्चात् जब यह वर्तमान कल्प उपस्थित हुआ और सृष्टिका कार्य आरम्भ हुआ, जब जीविका-साधक कर्म—कृषि, गोरक्षा और वाणिज्यकी प्रतिष्ठा हुई तथा प्रजावर्गके लोग सजग एवं सचेत हो गये, तब छः कुलोंमें उत्पन्न हुए महर्षियोंमें परस्पर बहस छिड़ गयी। 'यह परब्रह्म है या नहीं है' इस प्रकार उनमें महान् विवाद होने लगा। किंतु परम तत्त्वका निरूपण अत्यन्त कठिन होनेके कारण उस समय वहाँ कुछ निश्चय न हो सका। तब वे सब लोग जगत्-स्रष्टा अविनाशी ब्रह्माजीका दर्शन करनेके लिये उस स्थानपर गये, जहाँ देवताओं और असुरोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए भगवान् ब्रह्मा विराजमान थे। देवताओं और दानवोंसे भरे हुए सुन्दर रमणीय मेरु-शिखरपर, जहाँ सिद्ध और चारण परस्पर बातचीत करते हैं, यक्ष और गन्धर्व सदा रहते हैं, विहंगोंके समुदाय कलरव करते हैं, मणि और मूँगे जिसकी शोभा बढ़ाते हैं तथा निकुञ्ज, कन्दराएँ, छोटी गुफाएँ और अनेकानेक निर्झर जिसे सुशोभित करते हैं,

एक ब्रह्मवन नामसे प्रसिद्ध वन है। उसमें नाना प्रकारके वन्यपशु भरे हुए हैं। उसकी लंबाई सौ योजन और चौड़ाई दस योजनकी है। उसके भीतर एक रमणीय सरोवर है, जो सुस्वादु निर्मल जलसे भरा रहता है। वहाँके रमणीय पुष्पित वृक्षोंपर मतवाले भौंरे छाये रहते हैं। उस वनमें एक मनोहर एवं विशाल नगर है, जो प्रातःकालके सूर्यकी भाँति प्रकाशित होता रहता है। वहाँ दुर्धर्ष शक्तिसे युक्त बलाभिमानी दैत्य, दानव तथा राक्षसोंका निवास है। वह नगर तपाये हुए सुवर्णका बना जान पड़ता है। उसकी चहारदीवारियाँ और सदर फाटक बहुत ऊँचे हैं। छोटे बुर्जों, ढालू छतों, आवासस्थानों तथा सैकड़ों गलियोंसे उस नगरकी बड़ी शोभा है। वह विचित्र बहुमूल्य मणियोंसे आकाशको चूमता-सा प्रतीत होता है तथा कई करोड़ विशाल भवनोंसे अलंकृत है।

उस नगरमें प्रजापति ब्रह्मा अपने सभासदोंके साथ निवास करते हैं। वहाँ जाकर उन मुनियोंने साक्षात् लोकपितामह ब्रह्माजीको देखा। देवर्षियोंके समुदाय उनकी सेवामें बैठे थे। उनकी अङ्गकान्ति शुद्ध सुवर्णके समान थी। वे सब आभूषणोंसे विभूषित थे। उनका मुख प्रसन्न था, उससे सौम्यभाव प्रकट होता था। उनके नेत्र कमलदलके समान विशाल थे। दिव्य-कान्तिसे सम्पन्न, दिव्य गन्ध एवं अनुलेपनसे चर्चित, दिव्य श्वेत वस्त्रोंसे सुशोभित तथा दिव्य मालाओंसे विभूषित ब्रह्माजीके चरणारविन्दोंकी वन्दना सुरेन्द्र, असुरेन्द्र तथा योगीन्द्र भी करते थे। जैसे प्रभा दिवाकरकी सेवा करती है, उसी प्रकार समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त साक्षात् सरस्वती देवी हाथमें चँवर ले उनकी सेवा कर रही थीं, इससे उनकी बड़ी शोभा हो रही थी।

ब्रह्माजीका दर्शन करके उन सभी महर्षियोंके मुख और नेत्र खिल उठे। उन्होंने मस्तकपर अञ्जलि बाँधकर उन सुर-श्रेष्ठकी स्तुति की।

ऋषि बोले—संसारकी सृष्टि, पालन और संहारके हेतु तीन रूप धारण करनेवाले आप पुराणपुरुष परमात्मा ब्रह्माको नमस्कार है। प्रकृति जिनका शरीर है, जो प्रकृतिमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाले हैं तथा प्रकृतिरूपमें तेईस विकारोंसे युक्त होनेपर भी जो वास्तवमें निर्विकार हैं, उन ब्रह्मदेवको नमस्कार है। ब्रह्माण्ड जिनकी देह है, तो भी जो ब्रह्माण्डके उदरमें निवास करते हैं तथा वहाँ रहकर जिनके कार्य और करण सम्यक्-रूपसे सिद्ध होते हैं, उन ब्रह्माजीको नमस्कार है।

जो सर्वलोकस्वरूप तथा समस्त लोकोंके

स्रष्टा हैं, जो सम्पूर्ण जीवोंका शरीरसे संयोग और वियोग करानेमें हेतु हैं, उन ब्रह्माजीको नमस्कार है। नाथ! पितामह! आपसे ही सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार होते हैं, तथापि मायासे आवृत होनेके कारण हम आपको नहीं जानते।

सूतजी कहते हैं—उन महाभाग महर्षियोंके इस प्रकार स्तुति करनेपर ब्रह्माजी उन मुनियोंको आह्लाद प्रदान करते हुए गम्भीर वाणीमें इस प्रकार बोले।

ब्रह्माजीने कहा—महान् सत्त्वगुणसे सम्पन्न महाभाग महातेजस्वी महर्षियो! तुम सब लोग एक साथ यहाँ किस लिये आये हो?

ब्रह्माजीके इस प्रकार पूछनेपर ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ उन सभी मुनियोंने हाथ जोड़ विनयभरी वाणीमें कहा।

मुनि बोले—भगवन्! हमलोग अज्ञानके महान् अन्धकारसे आवृत हो खिन्न हो रहे हैं। परस्पर विवाद करते हुए हमें परमतत्त्वका साक्षात्कार नहीं हो रहा है। आप सम्पूर्ण जगत्‌के धारण-पोषण करनेवाले तथा समस्त कारणोंके भी कारण हैं। नाथ! यहाँ कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो आपको विदित न हो। कौन ऐसा पुरुष है, जो सम्पूर्ण जीवोंसे पुरातन, अन्तर्यामी, उत्कृष्ट विशुद्ध परिपूर्ण एवं सनातन परमेश्वर है? कौन अपने अद्भुत क्रियाकलापद्वारा सबसे प्रथम संसारकी सृष्टि करता है? महाप्राज्ञ! हमारे इस संदेहका निवारण करनेके लिये आप हमें परमार्थतत्त्वका उपदेश दें।

मुनियोंके इस प्रकार पूछनेपर ब्रह्माजीके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे। वे देवताओं, दानवों और मुनियोंके निकट खड़े हो गये और चिरकालतक ध्यानमग्न हो 'रुद्र' ऐसा कहते हुए आनन्दविभोर हो गये। उनका सारा शरीर पुलकित हो उठा और वे हाथ जोड़कर बोले।

(अध्याय २)

☆

ब्रह्माजीके द्वारा परमतत्त्वके रूपमें भगवान् शिवकी ही महत्ताका प्रतिपादन, उनकी कृपाको ही सब साधनोंका फल बताना तथा उनकी आज्ञासे सब मुनियोंका नैमिषारण्यमें आना

ब्रह्माजीने कहा—मुनियो! जिन्हें न पाकर मनसहित वाणी लौट आती है, जिनके आनन्दमय स्वरूपका अनुभव करनेवाला पुरुष कभी किसीसे नहीं डरता, जिनसे सम्पूर्ण भूतों और इन्द्रियोंके साथ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इन्द्रपूर्वक यह समस्त जगत् पहले प्रकट होता है, जो कारणोंके भी स्रष्टा और विचारक परम कारण हैं, जिनके सिवा और किसीसे कभी भी जगत्‌की उत्पत्ति नहीं होती,* सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे सम्पन्न होनेके

* यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं यस्य वै विद्वान् न बिभेति कुतश्चन॥
यस्मात् सर्वमिदं ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रपूर्वकम्। सह भूतेन्द्रियैः सर्वैः प्रथमं सम्प्रसूयते॥
कारणानां च यो धाता ध्याता परमकारणम्। न सम्प्रसूयतेऽन्यस्मात् कुतश्चन कदाचन॥
(शि० पु० वा० सं० पू० खं० ३।१—३)

कारण जो स्वयं ही सर्वेश्वर नाम धारण करते हैं, सब मुमुक्षु जिन शम्भुका अपने हृदय-आकाशके भीतर ध्यान करते हैं, जिन्होंने सबसे पहले मुझे ही अपने पुत्रके रूपमें उत्पन्न किया और मुझे ही सम्पूर्ण वेदोंका ज्ञान दिया, जिनके कृपाप्रसादसे मैंने यह प्रजापतिका पद प्राप्त किया है, जो ईश्वर अकेले ही वृक्षकी भाँति निश्चल भावसे प्रकाशमान आकाशमें विराजमान है, जिन परमपुरुष परमात्मासे यह सम्पूर्ण जगत् परिपूर्ण है, जो अकेले ही बहुत-से निष्क्रिय जीवोंके शासक एवं उन्हें सक्रियता प्रदान करनेवाले हैं, जो महेश्वर एक बीजको अनेक रूपोंमें परिणत कर देते हैं, जो सबका शासन करनेवाले ईश्वर इन जीवोंसहित इन समस्त लोकोंको वशमें रखते हैं, सब रूपोंमें जो एकमात्र भगवान् रुद्र ही हैं, दूसरा कोई नहीं है, जो सदा ही मनुष्योंके हृदयमें भलीभाँति प्रविष्ट होकर स्थित हैं, जो स्वयं सम्पूर्ण विश्वको देखते हुए भी दूसरोंसे कदापि लक्षित नहीं होते और सदा समस्त जगत्के अधिष्ठाता हैं, जो अनन्त शक्तिशाली एकमात्र भगवान् रुद्र कालसे मुक्त समस्त कारणोंपर भी शासन करते हैं, जिनके लिये न दिन है न रात्रि है, जिनके समान भी कोई नहीं है, फिर अधिक तो हो ही कैसे सकता है, जिनकी ज्ञान, बल और क्रियारूपा पराशक्ति स्वाभाविक एवं नित्य है।'* जो इस क्षर (विनाशशील), अव्यक्त (प्रकृति) पर तथा अमृतस्वरूप अक्षर (अविनाशी) जीवात्मापर शासन करते हैं, उनका निरन्तर ध्यान करनेसे, मनको उनमें लगाये रहनेसे तथा उन्हींके तत्त्वकी भावना करते हुए उनमें तन्मय रहनेसे जीव अन्तमें उन्हींको प्राप्त हो जाता है। फिर तो सारी माया अपने-आप दूर हो जाती है। उनके पास न तो बिजली प्रकाश करती है और न सूर्य तथा चन्द्रमा ही अपनी प्रभा फैलाते हैं, अपितु उन्हींके प्रकाशसे यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है। ऐसा सनातन श्रुतिका कथन है। † एकमात्र महादेव महेश्वरको ही अपना आराध्यदेव जानना चाहिये। उनसे श्रेष्ठ दूसरा कोई पद उपलब्ध नहीं होता। ये स्वयं ही सबके आदि हैं, किंतु इनका न आदि है न अन्त। ये स्वभावसे ही निर्मल, स्वतन्त्र, परिपूर्ण, स्वेच्छाधीन तथा चराचररूप हैं। इनका शरीर अप्राकृतिक (दिव्य) है। ये श्रीमान् महेश्वर लक्ष्य और लक्षणसे रहित हैं। ये नित्यमुक्त होकर सबको बन्धनसे मुक्त करनेवाले हैं। कालकी सीमासे परे रहकर कालको प्रेरित करनेवाले हैं। ‡ ये सबके ऊपर निवास करते हैं। स्वयं ही सबके आवासस्थान हैं, सर्वज्ञ हैं तथा छः प्रकारके अध्वा (मार्ग) से

---

* न तस्य दिवसो रात्रिर्न सन्नो न चाधिकः। स्वाभाविकी पराशक्तिर्नित्या ज्ञानक्रिये अपि॥
(शि० पु० वा० सं० पू० खं० ३। ११)

† परिगत्र भासते विद्युत्र सूर्यो न च चन्द्रमाः। यस्य भासा विभातीदमिलेषा दाक्षती श्रुतिः॥
(शि० पु० वा० सं० पू० खं० ३। १४)

‡ अप्राकृतवपुः श्रीमान् लक्ष्यलक्षणवर्जितः। अयं मुक्तो मोचकश्च हाकालः कालचोदकः॥
(शि० पु० वा० सं० पू० खं० ३। १७)

युक्त इस सम्पूर्ण जगत्के पालक हैं। उत्तरोत्तर उत्कृष्ट भूतोंसे वे परम उत्कृष्ट हैं। उनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है। अनन्त आनन्दराशिरूपी मकरन्दका पान करनेवाले मधुव्रत (भ्रमर) हैं। अखण्ड ब्रह्माण्डोंको मसलकर मृत्पिण्डके समान कर देनेकी कलामें पण्डित हैं। उदारता, वीरता, गम्भीरता और मधुरताके महासागर हैं। इनके समान भी कोई वस्तु नहीं है, फिर इनसे बढ़कर तो हो ही कैसे सकती है। ये उपमारहित हैं। समस्त प्राणियोंके राजाधिराजके रूपमें विराजमान हैं। ये ही सृष्टिके प्रारम्भमें अपने अद्भुत क्रियाकलाप-द्वारा इस सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करते हैं और अन्तकालमें यह फिर इन्हींमें लीन हो जायगा। सब प्राणी इन्हींके वशमें हैं। ये ही सबको विभिन्न कार्योंमें नियुक्त करनेवाले हैं। पराभक्तिसे ही इनका दर्शन होता है, अन्य किसी प्रकारसे कभी नहीं।

व्रत, सम्पूर्ण दान, तपस्या और नियम—इन सब साधनोंको पूर्वकालमें सत्पुरुषोंने भावशुद्धि तथा अनुरागकी उत्पत्तिके लिये ही बताया था, इसमें संशय नहीं है। मैं, भगवान् विष्णु, रुद्रदेव तथा दूसरे-दूसरे देवता एवं असुर आज भी उग्र तपस्याओंके द्वारा उनके दर्शनकी इच्छा रखते हैं। धर्मभ्रष्ट, मूढ़, दुष्ट और घृणित आचार-विचारवाले लोगोंको उनका दर्शन होना असम्भव है। भक्तजन भीतर और बाहर भी उन्हींका पूजन एवं ध्यान करते हैं। यह रूप तीन प्रकारका है—स्थूल, सूक्ष्म और इन दोनोंसे परे। हम सब देवता आदि जिस रूपको प्रत्यक्ष देखते हैं, वह स्थूल है। सूक्ष्म रूपका दर्शन केवल योगियोंको होता है और उससे भी परे जो नित्य, ज्ञानस्वरूप आनन्दमय तथा अविनाशी भगवत्स्वरूप है, वह उसमें निष्ठा रखनेवाले भजनपरायण भक्तोंकी ही दृष्टिमें आता है। भगवद्व्रतका आश्रय लेनेवाले भक्त ही उसको देख पाते हैं। इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या लाभ, गुह्यसे भी गुह्यतर एवं उत्कृष्ट साधन है भगवान् शिवके प्रति भक्ति। जो उस भक्तिसे युक्त है, वह संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है—इसमें संदेह नहीं है। वह भक्ति भगवान् शिवकी कृपासे ही उपलब्ध होती है और उनकी कृपा भी भक्तिसे ही सम्भव होती है—इस प्रकार ये दोनों एक-दूसरेके आश्रित हैं—ठीक वैसे ही, जैसे अङ्कुरसे बीज और बीजसे अङ्कुर होता है। जीवको भगवत्कृपासे ही सर्वत्र सिद्धियाँ मिलती हैं। सम्पूर्ण साधनोंसे अन्तमें भगवान्की कृपा ही साध्य है। अन्तःकरणकी शुद्धि या प्रसादका साधन है धर्म और उस धर्मके स्वरूपका प्रतिपादन वेदने किया है। वेदोंके अभ्याससे पहलेके पुण्य और पापोंमें समता आती है, उस समतासे प्रसाद (प्रसन्नता या अन्तःशुद्धि) का सम्यक् प्राप्त होता है और उससे धर्मकी वृद्धि होती है। धर्मकी वृद्धिसे पशु (जीवके) पापोंका क्षय होता है। इस तरह जिसके पाप क्षीण हो गये हैं, उस जीवको अनेक जन्मोंके अभ्याससे क्रमशः उमा-महेश्वरके तत्त्वका ज्ञान प्राप्त होकर उसके हृदयमें उनके प्रति भक्तिका उदय होता है। उस भक्तिभावके अनुरूप ही महेश्वरके कृपाप्रसादका उद्रेक होता है। उस प्रसादसे कर्मोंका त्याग होता है। कर्मोंके त्यागका अभिप्राय उनके फलोंके त्यागसे है, कर्मोंके स्वरूपतः त्यागसे नहीं। अतः यह सिद्ध

हुआ कि कर्मफलोंके त्यागसे शिवधर्ममें मङ्गलमयी प्रवृत्ति होती है।

इसलिये शिवका कृपाप्रसाद प्राप्त करनेके उद्देश्यसे तुम सब लोग अपने स्त्री-पुत्रों और अग्नियोंके साथ वाणी और मनके दोषोंसे रहित होकर एकमात्र भगवान् शिवका ही ध्यान करते रहो। उन्हींमें निष्ठा रखकर उनके भजनमें तत्पर हो जाओ। उन्हींमें मन लगाकर उनके आश्रित होकर रहो। सब कार्य करते हुए मनसे उन्हींका चिन्तन किया करो। एक सहस्र दिव्य वर्षोंके लिये दीर्घकालिक यज्ञका आरम्भ करके उसे पूर्ण करो। यज्ञके अन्तमें मन्त्रद्वारा आवाहन करनेपर साक्षात् वायुदेवता वहाँ पधारेंगे। फिर वे ही तुम सब लोगोंके कल्याणका साधन एवं उपाय बतायेंगे। तत्पश्चात् तुम सब लोग परम सुन्दर पुण्यमयी वाराणसी-पुरीको जाना, जहाँ पिनाकपाणि श्रीमान् भगवान् विश्वनाथ भक्तजनोंपर अनुग्रह करनेके लिये देवी पार्वतीके साथ सदा विहार करते हैं। द्विजोत्तमो! वहाँ तुम्हें बड़ा भारी आश्चर्य दिखायी देगा। उस आश्चर्यको देखकर तुम फिर मेरे पास आना, तब मैं तुम्हें मोक्षका उपाय बताऊँगा। उस उपायसे एक ही जन्ममें मुक्ति तुम्हारे हाथमें आ जायगी, जो अनेक जन्मोंके संसारबन्धनसे छुटकारा दिलानेवाली होगी। यह मैंने मनोमय चक्रका निर्माण किया है। इस चक्रको मैं यहींसे छोड़ता हूँ। जहाँ जाकर इसकी नेमि विशीर्ण हो जाय—टूट-फूट जाय, वही तपस्याके लिये शुभ देश है।

ऐसा कहकर पितामह ब्रह्माने उस सूर्यतुल्य तेजस्वी मनोमय चक्रकी ओर देखा और महादेवजीको प्रणाम करके उसे छोड़ दिया। वे सब ब्राह्मण उन लोकनाथ ब्रह्माजीको प्रणाम करके उस स्थानके लिये चल दिये, जहाँ उस चक्रकी नेमि जीर्ण-शीर्ण होनेवाली थी। ब्रह्माजीका फेंका हुआ वह सुन्दर चक्र मनोहर शिलाखण्डोंसे युक्त और निर्मल एवं स्वादिष्ठ जलसे पूर्ण किसी वनमें गिरा। उस चक्रकी नेमिके शीर्ण होनेसे वह मुनिपूजित वन नैमिष नामसे विख्यात हुआ। अनेक यक्ष, गन्धर्व और विद्याधर वहाँ आकर रहने लगे। पूर्वकालमें जगत्की सृष्टिकी इच्छा रखनेवाले विश्वस्रष्टा एवं गार्हपत्य अग्निके उपासक ब्रह्मज्ञ प्रजापतियोंने वहीं दिव्य यज्ञका आरम्भ

किया था। वहीं शब्दशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा न्यायशास्त्रके ज्ञाता विद्वान् महर्षियोंने शक्ति, ज्ञान और क्रियायोगके द्वारा शास्त्रीय विधिका अनुष्ठान किया था। उसी स्थानपर वेदवेत्ता विद्वान् सदा वाद और जल्पके बलसे युक्त वचनोंद्वारा अतिवाद करनेवाले वेदबहिष्कृत नास्तिकोंको पराहत या पराजित

करते थे। तभीसे नैमिषारण्य ऋषियोंकी तपस्याके योग्य स्थान बन गया। स्फटिक-मणिमय पर्वतकी शिलाओंसे झरते हुए अमृतके समान मधुर एवं स्वच्छ जलके कारण वह वन बड़ा रमणीय प्रतीत होता है। वहाँ प्रायः अत्यन्त रसीले फल देनेवाले वृक्ष हैं तथा उस वनमें हिंसक जीव-जन्तुओंका अभाव है। (अध्याय ३)

नैमिषारण्यमें दीर्घसत्रके अन्तमें मुनियोंके पास वायुदेवताका आगमन, उनका सत्कार तथा ऋषियोंके पूछनेपर वायुके द्वारा पशु, पाश एवं पशुपतिका तात्त्विक विवेचन

सूतजी कहते हैं—मुनीश्वरो! उस समय उत्तम व्रतका पालन करनेवाले उन महाभाग महर्षियोंने उस देशमें महादेवजीकी आराधना करते हुए एक महान् यज्ञका आयोजन किया। वह यज्ञ जब आरम्भ हुआ, तब महर्षियोंको सर्वथा आश्चर्यजनक जान पड़ा। तदनन्तर समय बीतनेपर जब प्रचुर दक्षिणाओंसे युक्त वह यज्ञ समाप्त हुआ, तब ब्रह्माजीकी आज्ञासे वायुदेव स्वयं वहाँ पधारे। उनको आया देख दीर्घकालिक यज्ञका अनुष्ठान करनेवाले वे मुनि ब्रह्माजीकी बातको याद करके अनुपम हर्षका अनुभव करने लगे। उन सबने उठकर आकाशजन्मा वायुदेवताको प्रणाम किया और उन्हें बैठनेके लिये एक सोनेका बना हुआ आसन दिया। वायुदेवता उस आसनपर बैठे। मुनियोंने उनकी विधिवत् पूजा की। तदनन्तर उन सबका अभिनन्दन करके वे कुशल-मङ्गल पूछने लगे।

वायुदेवता बोले—ब्राह्मणो! इस महान् यज्ञका अनुष्ठान पूर्ण होनेतक तुम सब लोग सकुशल रहे न? यज्ञहन्ता देवद्रोही दैत्योंने तुम्हें बाधा तो नहीं पहुँचायी? तुम्हें कोई प्रायश्चित्त तो नहीं करना पड़ा? तुम्हारे यज्ञमें कोई दोष तो नहीं आया? क्या तुमलोगोंने स्तोत्र और शस्त्रप्रहोंद्वारा देवताओंका तथा पितृकर्मोंद्वारा पितरोंका भलीभाँति पूजन करके यज्ञविधिका अनुष्ठान भलीभाँति सम्पन्न किया? इस महायज्ञकी समाप्ति हो जानेपर अब आपलोग क्या करना चाहते हैं?

मुनियोंने कहा—प्रभो! हमारे कल्याणकी वृद्धिके लिये जब आप स्वयं यहाँ आ गये, तब अब हमारा सब प्रकारसे

कुशल-मङ्गल ही है तथा हमारी तपस्या भी उत्तम होगी। अब पहलेका वृत्तान्त सुनिये। हमारा हृदय अज्ञानान्धकारसे आक्रान्त हो गया था, तब हमने विज्ञानकी प्राप्तिके लिये पूर्वकालमें प्रजापतिकी उपासना की। शरणागतवत्सल प्रजापतिने हम शरणागतों-पर कृपा करके इस प्रकार कहा—'ब्राह्मणो ! रुद्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं। वे ही परम कारण हैं। उन्हें तर्कसे नहीं जाना जा सकता। भक्तिमान् पुरुष ही उनके स्वरूपको ठीक-ठीक देखता और समझता है। भक्ति भी उनकी कृपासे ही मिलती है और उस कृपासे ही परमानन्दकी प्राप्ति होती है। अतः उनके कृपाप्रसादको प्राप्त करनेके लिये तुमलोग नैमिषारण्यमें यज्ञका आयोजन करो। दीर्घकालतक चलनेवाले उस यज्ञके द्वारा परम कारण रुद्रदेवकी आराधना करो। यज्ञके अन्तमें उन रुद्रदेवके कृपा-प्रसादसे वायुदेवता यहाँ पधारेंगे। उनके मुखसे वहाँ तुम्हें ज्ञानलाभ होगा और उससे कल्याणकी प्राप्ति होगी।' महाभाग ! ऐसा आदेश देकर परमेष्ठीने हम सबको यहाँ भेजा। हम इस देशमें आपके आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए एक सहस्र दिव्य वर्षोंतक दीर्घकालिक यज्ञके अनुष्ठानमें लगे रहे हैं। अतः इस समय आपके आगमनके सिवा हमारे लिये दूसरी कोई प्रार्थनीय वस्तु नहीं है।

दीर्घकालसे यज्ञानुष्ठानमें लगे हुए उन महर्षियोंका यह पुरातन वृत्तान्त सुनकर वायुदेवता मन-ही-मन प्रसन्न हो मुनियोंसे घिरे हुए वहाँ बैठे रहे। फिर उन सबके पूछनेपर उनके भक्तिभावकी वृद्धिके लिये उन्होंने भगवान् शंकरके सृष्टि आदि ऐश्वर्यको संक्षेपसे बताया।

नैमिषारण्यके ऋषियोंने पूछा—देव ! आपने ईश्वरविषयक ज्ञान कैसे प्राप्त किया? तथा आप अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीके शिष्य किस प्रकार हुए ?

वायुदेवता बोले—महर्षियो ! उन्नीसवें कल्पका नाम श्वेतलोहितकल्प समझना चाहिये। उसी कल्पमें चतुर्मुख ब्रह्माने सृष्टिकी कामनासे तपस्या की। उनकी उस तीव्र तपस्यासे संतुष्ट हो स्वयं उनके पिता देवदेव महेश्वरने उन्हें दर्शन दिया। वे दिव्य कुमारावस्थासे युक्त रूप धारण करके रूपधारियोंमें श्रेष्ठ श्वेत नामक मुनि होकर दिव्य वाणी बोलते हुए उनके सामने उपस्थित हुए। वेदोंके अधिपति तथा सबके पालक पिता महेश्वरका दर्शन करके गायत्रीसहित ब्रह्माजीने उन्हें प्रणाम किया और उन्हींसे उत्तम ज्ञान पाया। ज्ञान पाकर विश्वकर्मा चतुर्मुख ब्रह्मा सम्पूर्ण चराचर भूतोंकी सृष्टि करने लगे। साक्षात् परमेश्वर शिवसे सुनकर ब्रह्माजीने अमृतस्वरूप ज्ञान प्राप्त किया था, इसलिये मैंने तपस्याके बलसे उन्हींके मुखसे उस ज्ञानको उपलब्ध किया।

मुनियोंने पूछा—आपने वह कौन-सा ज्ञान प्राप्त किया, जो सत्यसे भी परम सत्य एवं शुभ है तथा जिसमें उत्तम निष्ठा रखकर पुरुष परमानन्दको प्राप्त करता है ?

वायुदेवता बोले—महर्षियो ! मैंने पूर्वकालमें पशु-पाश और पशुपतिका जो ज्ञान प्राप्त किया था, सुख चाहनेवाले पुरुषको उसीमें ऊँची निष्ठा रखनी चाहिये। अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला दुःख ज्ञानसे ही दूर होता है। वस्तुके विवेकका नाम ज्ञान है। वस्तुके तीन भेद माने गये हैं—जड (प्रकृति), चेतन (जीव) और उन दोनोंका

नियन्ता (परमेश्वर)। इन्हीं तीनोंको क्रमसे पाश, पशु तथा पशुपति कहते हैं। तत्त्वज्ञ पुरुष प्रायः इन्हीं तीन तत्त्वोंको क्षर, अक्षर तथा उन दोनोंसे अतीत कहते हैं। अक्षर ही पशु कहा गया है। क्षर तत्त्वका ही नाम पाश है तथा क्षर और अक्षर दोनोंसे परे जो परमतत्त्व है, उसीको पति या पशुपति कहते हैं। प्रकृतिको ही क्षर कहा गया है। पुरुष (जीव) को ही अक्षर कहते हैं और जो इन दोनोंको प्रेरित करता है, वह क्षर और अक्षर दोनोंसे भिन्न तत्त्व परमेश्वर कहा गया है। मायाका ही नाम प्रकृति है। पुरुष उस मायासे आवृत है। मल और कर्मके द्वारा प्रकृतिका पुरुषके साथ सम्बन्ध होता है। शिव ही इन दोनोंके प्रेरक ईश्वर हैं। माया महेश्वरकी शक्ति है। चित्स्वरूप जीव उस मायासे आवृत है। चेतन जीवको आच्छादित करनेवाला अज्ञानमय पाश ही मल कहलाता है। उससे शुद्ध हो जानेपर जीव स्वतः शिव हो जाता है। वह विशुद्ध ही शिवत्व है।

मुनियोंने पूछा—सर्वव्यापी चेतनको माया किस हेतुसे आवृत करती है? किसलिये पुरुषको आवरण प्राप्त होता है? और किस उपायसे उसका निवारण होता है?

वायुदेवता बोले—व्यापक तत्त्वको भी आंशिक आवरण प्राप्त होता है; क्योंकि कला आदि भी व्यापक हैं। भोगके लिये किया गया कर्म ही उस आवरणमें कारण है। मलका नाश होनेसे वह आवरण दूर हो जाता है। कला, विद्या, राग, काल और नियति—इन्हींको कला आदि कहते हैं। कर्मफलका जो उपभोग करता है, उसीका नाम पुरुष (जीव) है। कर्म दो प्रकारके हैं—पुण्यकर्म और पापकर्म। पुण्यकर्मका फल सुख और पापकर्मका फल दुःख है। कर्म अनादि है और फलका उपभोग कर लेनेपर उसका अन्त हो जाता है। यद्यपि जड कर्मका चेतन आत्मासे कुछ सम्बन्ध नहीं है, तथापि अज्ञानवश जीवने उसे अपने-आपमें मान रखा है। भोग कर्मका विनाश करनेवाला है, प्रकृतिको भोग्य कहते हैं और भोगका साधन है शरीर। बाह्य इन्द्रियाँ और अन्तःकरण उसके द्वार हैं। अतिशय भक्तिभावसे उपलब्ध हुए महेश्वरके कृपाप्रसादसे मलका नाश होता है और मलका नाश हो जानेपर पुरुष निर्मल—शिवके समान हो जाता है। विद्या पुरुषकी ज्ञानशक्तिको और कला उसकी क्रिया-शक्तिको अभिव्यक्त करनेवाली है। राग भोग्य वस्तुके लिये क्रियामें प्रवृत्त करनेवाला होता है। काल उसमें अवच्छेदक होता है और नियति उसे नियन्त्रणमें रखनेवाली है। अव्यक्तरूप जो कारण है, वह त्रिगुणमय है; उसीसे जड जगत्की उत्पत्ति होती है और उसीमें उसका लय होता है। तत्त्वचिन्तक पुरुष उस अव्यक्तको ही प्रधान और प्रकृति कहते हैं। सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण प्रकृतिसे प्रकट होते हैं; तिलमें तेलकी भाँति वे प्रकृतिमें सूक्ष्मरूपसे विद्यमान रहते हैं। सुख और उसके हेतुको संक्षेपसे सात्त्विक कहा गया है, दुःख और उसके हेतु राजस कार्य हैं तथा जडता और मोह—वे तमोगुणके कार्य हैं। सात्त्विकी वृत्ति ऊर्ध्वको ले जानेवाली है, तामसी वृत्ति अधोगतिमें डालनेवाली है तथा राजसी वृत्ति मध्यम स्थितिमें रखनेवाली है। पाँच

तन्मात्राएँ, पाँच भूत, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा प्रधान (चित्त), महत्तत्त्व (बुद्धि), अहंकार और मन—ये चार अन्तःकरण—सब मिलकर चौबीस तत्त्व होते हैं। इस प्रकार संक्षेपसे ही विकारसहित अव्यक्त (प्रकृति) का वर्णन किया गया। कारणावस्थामें रहनेपर ही इसे अव्यक्त कहते हैं और शरीर आदिके रूपमें जब वह कार्यावस्थाको प्राप्त होता है, तब उसकी 'व्यक्त' संज्ञा होती है—ठीक उसी तरह, जैसे कारणावस्थामें स्थित होनेपर जिसे हम 'मिट्टी' कहते हैं वही कार्यावस्थामें 'घट' आदि नाम धारण कर लेती है। जैसे घट आदि कार्य मृत्तिका आदि कारणसे अधिक भिन्न नहीं है, उसी प्रकार शरीर आदि व्यक्त पदार्थ अव्यक्तसे अधिक भिन्न नहीं हैं। इसलिये एकमात्र अव्यक्त ही कारण, करण, उनका आधारभूत शरीर तथा भोग्य वस्तु है, दूसरा कोई नहीं।

मुनियोंने पूछा—प्रभो! बुद्धि, इन्द्रिय और शरीरसे व्यतिरिक्त किसी आत्मा नामक वस्तुकी वास्तविक स्थिति कहाँ है?

वायुदेवता बोले—महर्षियो! सर्वव्यापी चेतनका बुद्धि, इन्द्रिय और शरीरसे पार्थक्य अवश्य है। आत्मा नामक कोई पदार्थ निश्चय ही विद्यमान है; परन्तु उसकी सत्तामें किसी हेतुकी उपलब्धि बहुत ही कठिन है! सत्पुरुष बुद्धि, इन्द्रिय और शरीरको आत्मा नहीं मानते; क्योंकि स्मृति (बुद्धिका ज्ञान) अनियत है तथा उसे सम्पूर्ण शरीरका एक साथ अनुभव नहीं होता। इसीलिये वेदों और वेदान्तोंमें आत्माको पूर्वानुभूत विषयोंका स्मरणकर्ता, सम्पूर्ण ज्ञेय पदार्थोंमें व्यापक तथा अन्तर्यामी कहा जाता है। यह न स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसक ही है। न ऊपर है, न अगल-बगलमें है, न नीचे है और न किसी स्थान-विशेषमें। यह सम्पूर्ण चल शरीरोंमें अविचल, निराकार एवं अविनाशी रूपसे स्थित है। ज्ञानी पुरुष निरन्तर विचार करनेसे उस आत्मतत्त्वका साक्षात्कार कर पाते हैं। *

पुरुषका जो यह शरीर कहा गया है, इससे बढ़कर अशुद्ध, पराधीन, दुःखमय और अस्थिर दूसरी कोई वस्तु नहीं है। शरीर ही सब विपत्तियोंका मूल कारण है। उससे युक्त हुआ पुरुष अपने कर्मके अनुसार सुखी, दुःखी और मूढ़ होता है। † जैसे पानीसे सींचा हुआ खेत अङ्कुर उत्पन्न करता है, उसी प्रकार अज्ञानसे आप्लावित हुआ कर्म नूतन शरीरको जन्म देता है। ये शरीर अत्यन्त दुःखोंके आलय माने जाते हैं। इनकी मृत्यु अनिवार्य होती है। भूतकालमें कितने ही शरीर नष्ट हो गये और

---

* न च स्त्री न पुमानेष नैव चापि नपुंसकः। नैवोर्ध्वं नापि तिर्यक् च नाधस्तान्न कुतश्चन॥
अशरीरं शरीरेषु चलेषु स्थाणुमव्ययम्। सदा पश्यति तं धीरो नरः प्रत्यात्ममवस्थितम्॥
(शि० पु० वा० सं० पू० खं० ५। ४८-४९)

† यच्छरीरमिदं प्रोक्तं पुरुषस्य ततः परम्। अशुद्धमवशं दुःखमधुवं न च विद्यते॥
विपदां बीजभूतेन पुरुषस्तेन संयुतः। सुखी दुःखी च मूढश्च भवति स्वेन कर्मणा॥
(शि० पु० वा० सं० पू० खं० ५। ५१-५२)

भविष्यकालमें सहस्रों शरीर आनेवाले हैं, वे सब आ-आकर जब जीर्ण-शीर्ण हो जाते हैं, तब पुरुष उन्हें छोड़ देता है। कोई भी जीवात्मा किसी भी शरीरमें अनन्त कालतक रहनेका अवसर नहीं पाता। यहाँ स्त्रियों, पुत्रों और बन्धु-बान्धवोंसे जो मिलन होता है, वह पथिकको मार्गमें मिले हुए दूसरे पथिकोंके समागमके ही समान है। जैसे महासागरमें एक काष्ठ कहींसे और दूसरा काष्ठ कहींसे बहता आता है, वे दोनों काष्ठ कहीं थोड़ी देरके लिये मिल जाते हैं और मिलकर फिर बिछुड़ जाते हैं। उसी प्रकार प्राणियोंका यह समागम भी संयोग-वियोगसे युक्त है।* ब्रह्माजीसे लेकर स्थावर प्राणियोंतक सभी जीव पशु कहे गये हैं। उन सभी पशुओंके लिये ही यह दृष्टान्त या दर्शन-शास्त्र कहा गया है। यह जीव पाशोंमें बँधता और सुख-दुःख भोगता है, इसलिये 'पशु' कहलाता है। यह ईश्वरकी लीलाका साधन-भूत है, ऐसा ज्ञानी महात्मा कहते हैं। (अध्याय ४-५)

महेश्वरकी महत्ताका प्रतिपादन

वायुदेवता कहते हैं—महर्षियो! इस विश्वका निर्माण करनेवाला कोई पति है, जो अनन्त रमणीय गुणोंका आश्रय कहा गया है। वही पशुओंको पाशसे मुक्त करनेवाला है। उसके बिना संसारकी सृष्टि कैसे हो सकती है; क्योंकि पशु अज्ञानी और पाश अचेतन है। प्रधान परमाणु आदि जितने भी जड तत्त्व हैं, उन सबका कर्ता वह पति ही है—यह बात स्वयं समझमें आ जाती है। किसी बुद्धिमान् या चेतन कारणके बिना इन जड तत्त्वोंका निर्माण कैसे सम्भव है। पशु, पाश और पतिका जो वास्तवमें पृथक्-पृथक् स्वरूप है, उसे जानकर ही ब्रह्मवेत्ता पुरुष योनिसे मुक्त होता है। क्षर और अक्षर—ये दोनों एक-दूसरेसे संयुक्त होते हैं। पति या महेश्वर ही व्यक्ताव्यक्त जगत्का भरण-पोषण करते हैं। वे ही जगत्को बन्धनसे छुड़ानेवाले हैं। भोक्ता, भोग्य और प्रेरक—ये तीन ही तत्त्व जाननेयोग्य हैं। विज्ञ पुरुषोंके लिये इनसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु जाननेयोग्य नहीं है। सृष्टिके आरम्भमें एक ही रुद्रदेव विद्यमान रहते हैं, दूसरा कोई नहीं होता। वे ही इस जगत्की सृष्टि करके इसकी रक्षा करते हैं और अन्तमें सबका संहार कर डालते हैं। उनके सब ओर नेत्र हैं, सब ओर मुख हैं, सब ओर भुजाएँ हैं और सब ओर चरण हैं। ये ही सबसे पहले देवताओंमें ब्रह्माजीको उत्पन्न करते हैं। श्रुति कहती है कि 'रुद्रदेव सबसे श्रेष्ठ महान् ऋषि हैं। मैं इन महान् अमृतस्वरूप अविनाशी पुरुष

---

* नैत्रास्य भविता कश्चित्रासौ भवति कस्यचित्। पथि संगम एवायं दारैः पुत्रैश्च बन्धुभिः॥
यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ। समेत्य च व्यपेयातां तद्वद् भूतसमागमः॥
(शि० पु० वा० सं० पू० खं० ५। ५८-५९)

परमेश्वरको जानता हूँ। इनकी अङ्गकान्ति सूर्यके समान है। ये प्रभु अज्ञानान्धकारसे परे विराजमान हैं।' * इन परमात्मासे परे दूसरी कोई वस्तु नहीं है। इनसे अत्यन्त सूक्ष्म और इनसे अधिक महान् भी कुछ नहीं है। इनसे यह सारा जगत् परिपूर्ण है। इनके सब ओर हाथ, पैर, नेत्र, मस्तक, मुख और कान हैं। ये लोकमें सबको व्याप्त करके स्थित हैं। ये सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंको जाननेवाले हैं, परंतु वास्तवमें सब इन्द्रियोंसे रहित हैं। सबके स्वामी, शासक, शरणदाता और सुहृद् हैं। ये नेत्रके बिना भी देखते हैं और कानके बिना भी सुनते हैं। ये सबको जानते हैं, किंतु इनको पूर्णरूपसे जाननेवाला कोई नहीं है। इन्हें परम पुरुष कहते हैं। ये अणुसे भी अत्यन्त अणु और महान्‌से भी परम महान् हैं। ये अविनाशी महेश्वर इस जीवकी हृदय-गुफामें निवास करते हैं। †

एक साथ रहनेवाले दो पक्षी एक ही वृक्ष (शरीर) का आश्रय लेकर रहते हैं। उनमेंसे एक तो उस वृक्षके कर्मरूप फलोंका स्वाद ले-लेकर उपभोग करता है, किंतु दूसरा उस वृक्षके फलका उपभोग न करता हुआ केवल देखता रहता है। ‡ जीवात्मा इस वृक्षके प्रति आसक्तिमें डूबा हुआ है, अतः मोहित होकर शोक करता रहता है। वह जब कभी भगवत्कृपासे भक्तसेवित परम कारणरूप परमेश्वरका और उनकी महिमाका साक्षात्कार कर लेता है, तब शोकरहित हो सुखी हो जाता है। छन्द, यज्ञ, क्रतु तथा भूत, वर्तमान और भविष्य सम्पूर्ण विश्वको वह मायावी रचता है और मायासे ही उसमें प्रविष्ट होकर रहता है। प्रकृतिको ही माया समझना चाहिये और महेश्वर ही वह मायावी है। § ये विश्वकर्मा महेश्वर ही परम देवता परमात्मा हैं, जो सबके हृदयमें विराजमान हैं। उन्हें जानकर ही पुरुष परमानन्दमय अमृतका अनुभव करता है। ब्रह्मासे भी श्रेष्ठ, असीम एवं अविनाशी परमात्मामें विद्या और अविद्या दोनों गूढ़भावसे स्थित

---

* विश्वस्मादधिको रुद्रो महर्षिरिति हि श्रुतिः ॥
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमसृतं ध्रुवम्। आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्संस्थितं प्रभुम् ॥
(शि० पु० वा० सं० पू० खं० ६। १७-१८)

† सर्वतःपाणिपादोऽयं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः। सर्वतःश्रुतिमाँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥
सर्वेन्द्रियगुणाभासः सर्वेन्द्रियविवर्जितः। सर्वस्य प्रभुरीशानः सर्वस्य शरणं सुहृत् ॥
अचक्षुरपि यः पश्यत्यकर्णोऽपि शृणोति यः। सत्त्वं वेत्ति न वेत्तास्य तमाहुः पुरुषं परम् ॥
अणोरणीयान्महतो महीयानयमव्ययः। गुहायां निहितश्चापि जन्तोरस्य महेश्वरः ॥
(शि० पु० वा० सं० पू० खं० ६। २१—२४)

‡ द्वौ सुपर्णौ च सयुजौ सखायौ वृक्षमास्थितौ। एकोऽत्ति पिप्पलं स्वादु परोऽनश्नन् प्रपश्यति ॥
(शि० पु० वा० सं० पू० खं० ६। ३०)

§ छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो व्रतानि भूतं भव्यमेव च।
मायां विश्वं सृजत्यस्मिन्निविष्टो मायया परः। मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ॥
(शि० पु० वा० सं० पू० खं० ६। ३२-३३)

हैं। विनाशशील जडवर्गको ही यहाँ अविद्या कहा गया है और अविनाशी जीवको विद्या नाम दिया गया है; जो उन दोनों विद्या और अविद्यापर शासन करते हैं, वे महेश्वर उनसे सर्वथा भिन्न—विलक्षण हैं। ये प्रतापी महेश्वर इस जगत्में समष्टि भूत और इन्द्रियवर्गरूप एक-एक जालको अनेक प्रकारसे रचकर इसका विस्तार करते हैं। फिर अन्तमें संहार करके सबको अनेकसे एकमें परिणत कर देते हैं तथा पुनः सृष्टिकालमें सबकी पूर्ववत् रचना करके सबपर आधिपत्य करते हैं। जैसे सूर्य अकेला ही ऊपर-नीचे तथा अगल-बगलकी दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ स्वयं भी देदीप्यमान होता है, उसी प्रकार ये भजनीय परमेश्वर अकेले ही समस्त कारणरूप पृथ्वी आदि तत्त्वोंका नियमन करते हैं। श्रद्धा और भक्तिके भावसे प्राप्त होनेयोग्य, आश्रयरहित कहे जानेवाले, जगत्की उत्पत्ति और संहार करनेवाले, कल्याण-स्वरूप एवं सोलह कलाओंकी रचना कर उन महादेवको जो जानते हैं, वे शरीरके बन्धनको सदाके लिये त्याग देते हैं अर्थात् जन्म-मृत्युके चक्करसे छूट जाते हैं।

वे ही परमेश्वर तीनों कालोंसे परे, निष्कल, सर्वज्ञ, त्रिगुणाधीश्वर एवं साक्षात् परात्पर ब्रह्म हैं। सम्पूर्ण विश्व उन्हींका रूप है। वे सबकी उत्पत्तिके कारण होकर भी स्वयं अजन्मा हैं, स्तुतिके योग्य हैं, प्रजाओंके पालक, देवताओंके भी देवता और सम्पूर्ण जगत्के लिये पूजनीय हैं। अपने हृदयमें विराजमान उन परमेश्वरकी हम उपासना करते हैं। जो काल आदिसे परे, जिनसे यह समस्त प्रपञ्च प्रकट होता है, जो धर्मके पालक, पापके नाशक, भोगोंके स्वामी तथा सम्पूर्ण विश्वके धाम हैं, जो ईश्वरोंके भी परम महेश्वर, देवताओंके भी परम देवता तथा पतियोंके भी परम पति हैं, उन भुवनेश्वरोंके भी ईश्वर महादेवको हम सबसे परे जानते हैं। उनके शरीररूप कार्य और इन्द्रिय तथा मनरूपी करण नहीं हैं, उनके समान और उनसे अधिक भी इस जगत्में कोई नहीं दिखायी देता। ज्ञान, बल और क्रियारूप उनकी स्वाभाविक पराशक्ति वेदोंमें नाना प्रकारकी सुनी गयी है। उन्हीं शक्तियोंसे इस सम्पूर्ण विश्वकी रचना हुई है। उसका न कोई स्वामी है, न कोई निश्चित चिह्न है, न उसपर किसीका शासन है। वह समस्त कारणोंका कारण होता हुआ ही उनका अधीश्वर भी है। उनका न कोई जन्मदाता है, न जन्म है, न जन्मके माया-मलादि हेतु ही हैं। वह एक ही सम्पूर्ण विश्वमें, समस्त भूतोंमें गुह्यरूपसे व्याप्त है। वही सब भूतोंका अन्तरात्मा और धर्माध्यक्ष कहलाता है। वह सब भूतोंके अंदर बसा हुआ, सबका द्रष्टा, साक्षी, चेतन और निर्गुण है। वह एक है, वशी है, अनेकों विवशात्मा निष्क्रिय पुरुषोंको वशमें रखनेवाला है। वह नित्योंका नित्य, चेतनोंका चेतन है। वह एक है, कामनारहित है और बहुतोंकी कामना पूर्ण करनेवाला ईश्वर है। सांख्य और योग अर्थात् ज्ञानयोग और निष्काम कर्मयोगसे प्राप्त करनेयोग्य सबके कारणरूप उन जगदीश्वर परमदेवको जानकर जीव सम्पूर्ण पाशों (बन्धनों) से मुक्त हो जाता है। वे सम्पूर्ण विश्वके स्रष्टा, सर्वज्ञ, स्वयं ही अपने प्राकट्यके हेतु, ज्ञानस्वरूप, कालके भी स्रष्टा, सम्पूर्ण दिव्य गुणोंसे सम्पन्न, प्रकृति और जीवात्माके

स्वामी, समस्त गुणोंके शासक तथा संसार-बन्धनसे छुड़ानेवाले हैं। जिन परमदेवने सबसे पहले ब्रह्माजीको उत्पन्न किया और स्वयं उन्हें वेदोंका ज्ञान दिया, अपने स्वरूपविषयक बुद्धिको प्रसन्न (विकसित) करनेवाले उन परमेश्वर शिवको जानकर मैं इस संसार-बन्धनसे छूटनेके लिये उनकी शरणमें जाता हूँ।*

यह वेदान्त शास्त्रका परम गोपनीय ज्ञान है; पूर्वकल्पमें मुझे इसका उपदेश किया गया था। मैंने बड़े भारी सौभाग्यसे ब्रह्माजीके मुखसे इस ज्ञानको पाया था। जो शम-दमसे रहित हो, उसे इस परम उत्तम ज्ञानका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो अपना पुत्र, सदाचारी तथा शिष्य न हो, उसे भी नहीं देना चाहिये। जिनकी परमदेव परमेश्वरमें परम भक्ति है, जैसे परमेश्वरमें है, वैसे ही गुरुमें भी है, उस महात्मा पुरुषके हृदयमें ही ये बताये हुए रहस्यमय अर्थ प्रकाशित होते हैं।† अतः संक्षेपसे यह सिद्धान्तकी बात सुनो। भगवान् शिव प्रकृति और पुरुषसे परे हैं। वे ही सृष्टिकालमें जगत्को रचते और संहारकालमें पुनः सबको आत्मसात् कर लेते हैं। (अध्याय ६)

☆

---

* परस्त्रिकालादकलः स एव परमेश्वरः। सर्ववित् त्रिगुणाधीशो ब्रह्म साक्षात् परात्परः॥
तं विश्वरूपमभवं भवमीड्यं प्रजापतिम्। देवदेवं जगत्पूज्यं स्वचित्तस्थमुपास्महे॥
कालादिभिः परो यस्मात् प्रपञ्चः परिवर्तते। धर्मावहं पापनुदं भोगेशं विश्वधाम च॥
तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्। पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेश्वरेश्वरम्॥
न तस्य विद्यते कार्यं करणं च न विद्यते। न तत्समोऽप्यधिकश्चापि क्वचिज्जगति दृश्यते॥
परास्य विविधा शक्तिः श्रुतौ स्वाभाविकी श्रुता। ज्ञानं बलं क्रिया चैव याभ्यो विश्वमिदं कृतम्॥
न तस्यास्ति पतिः कश्चिन्नैव लिङ्गं न चेशिता। कारणं कारणानां च स तेषामधिपाधिपः॥
न चास्य जनिता कश्चिन्न च जन्म कुतश्चन। न जन्महेतवस्तद्वन्मलमायादिसंज्ञकाः॥
स एकः सर्वभूतेषु गूढो व्याप्तश्च विश्वतः। सर्वभूतान्तरात्मा च धर्माध्यक्षः स कथ्यते॥
सर्वभूताधिवासश्च साक्षी चेता च निर्गुणः। एको वशी निष्क्रियाणां बहूनां विवशात्मनाम्॥
नित्यानामप्यसौ नित्यश्चेतनानां च चेतनः। एको बहूनां चाकामः कामानीशः प्रयच्छति॥
सांख्ययोगाधिगम्यं यत् कारणं जगतां पतिम्। ज्ञात्वा देवं पशुः पाशैः सर्वैरेव विमुच्यते॥
विश्वकृद् विश्ववित् स्वात्मयोनिज्ञः कालकृद्गुणी। प्रधानः क्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः पाशमोचकः॥
ब्रह्माणं विदधे पूर्वं वेदांश्चोपादिशत्स्वयम्। यो देवस्तमहं बुद्ध्वा स्वात्मबुद्धिप्रसादतः॥
मुमुक्षुरस्मात् संसारात् प्रपद्ये शरणं शिवम्। (शि॰ पु॰ वा॰ सं॰ पू॰ ख॰ ६। ५५—६८ १/२)

† यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥
(शि॰ पु॰ वा॰ सं॰ पू॰ ख॰ ६। ७५)

ब्रह्माजीकी मूर्च्छा, उनके मुखसे रुद्रदेवका प्राकट्य, सप्राण हुए ब्रह्माजीके द्वारा आठ नामोंसे महेश्वरकी स्तुति तथा रुद्रकी आज्ञासे ब्रह्माद्वारा सृष्टि-रचना

तदनन्तर कालमहिमा, प्रलय, ब्रह्माण्डकी स्थिति तथा सर्ग आदिका वर्णन करके वायु-देवताने कहा—पहले ब्रह्माजीने पाँच मानसपुत्रोंको उत्पन्न किया, जो उनके ही समान थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—सनक, सनन्दन, विद्वान् सनातन, ऋभु और सनत्कुमार। वे सब-के-सब योगी, वीतराग और ईर्ष्यादोषसे रहित थे। इन सबका मन ईश्वरके चिन्तनमें लगा रहता था। इसलिये उन्होंने सृष्टिरचनाकी इच्छा नहीं की। सृष्टिसे विरत हो सनक आदि महात्मा जब चले गये, तब ब्रह्माजीने पुनः सृष्टिकी इच्छासे बड़ी भारी तपस्या की। इस प्रकार दीर्घकालतक तपस्या करनेपर भी जब कोई काम न बना, तब उनके मनमें दुःख हुआ। उस दुःखसे क्रोध प्रकट हुआ। क्रोधसे आविष्ट होनेपर ब्रह्माजीके दोनों नेत्रोंसे आँसूकी बूँदें गिरने लगीं। उन अश्रुबिन्दुओंसे भूत-प्रेत उत्पन्न हुए। अश्रुसे उत्पन्न हुए उन सब भूतों-प्रेतोंको देखकर ब्रह्माजीने अपनी निन्दा की। उस समय क्रोध और मोहके कारण उन्हें तीव्र मूर्च्छा आ गयी। क्रोधसे आविष्ट हुए प्रजापतिने मूर्च्छित होनेपर अपने प्राण त्याग दिये। तब प्राणोंके स्वामी भगवान् नीललोहित रुद्र अनुपम कृपाप्रसाद प्रकट करनेके लिये ब्रह्माजीके मुखसे वहाँ प्रकट हुए। उन जगदीश्वर प्रभुने अपनेको ग्यारह रूपोंमें प्रकट किया। महादेवजीने अपने उन महामना ग्यारह स्वरूपोंसे कहा—'बन्धो! मैंने लोकपर अनुग्रह करनेके लिये तुमलोगोंकी सृष्टि की है; अतः तुम आलस्य-रहित हो सम्पूर्ण लोककी स्थापना, हितसाधन तथा प्रजा-संतानकी वृद्धिके लिये प्रयत्न करो।'

महेश्वरके ऐसा कहनेपर वे रोने और चारों ओर दौड़ने लगे। रोने और दौड़नेके कारण उनका नाम 'रुद्र' हुआ। जो रुद्र हैं, वे निश्चय ही प्राण हैं और जो प्राण हैं, वे महात्मा रुद्र हैं। तत्पश्चात् ब्रह्मपुत्र महेश्वरने दया करके मरे हुए देवता परमेष्ठी ब्रह्माजीको पुनः प्राण दान दिया। ब्रह्माजीके शरीरमें प्राणोंके लौट आनेपर रुद्रदेवका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। उन विश्वनाथने ब्रह्माजीसे यह उत्तम बात कही—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले जगद्गुरु महाभाग विरिञ्च! डरो मत! डरो मत! मैंने तुम्हारे प्राणोंको नूतन जीवन प्रदान किया है; अतः सुखसे उठो।' स्वप्नमें सुने हुए वाक्यकी भाँति उस मनोहर वचनको सुनकर ब्रह्माजीने प्रफुल्ल कमलके समान सुन्दर नेत्रोंद्वारा धीरेसे भगवान् हरकी ओर देखा। उनके प्राण पहलेकी तरह लौट आये थे। अतः ब्रह्माजीने दोनों हाथ जोड़ स्नेहयुक्त गम्भीर वाणीद्वारा उनसे कहा—'प्रभो! आप दर्शनमात्रसे मेरे मनको आनन्द प्रदान कर रहे हैं; अतः बताइये, आप कौन हैं? जो सम्पूर्ण जगत्के रूपमें स्थित हैं, क्या वे ही भगवान् आप ग्यारह रूपोंमें प्रकट हुए हैं?'

उनकी यह सब बात सुनकर देवताओंके स्वामी महेश्वर अपने परम सुखदायक

करकमलोंद्वारा ब्रह्माजीका स्पर्श करते हुए बोले—'देव ! तुम्हें ज्ञात होना चाहिये कि मैं परमात्मा हूँ और इस समय तुम्हारा पुत्र होकर प्रकट हुआ हूँ। ये जो ग्यारह रुद्र हैं, तुम्हारी सुरक्षाके लिये यहाँ आये हैं। अतः तुम मेरे अनुग्रहसे इस तीव्र मूर्च्छाको त्यागकर जाग उठो और पूर्ववत् प्रजाकी सृष्टि करो।'

भगवान् शिवके ऐसा कहनेपर ब्रह्माजीके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन विश्वात्माने आठ नामोंद्वारा परमेश्वर शिवका स्तवन किया।

ब्रह्माजी बोले—भगवन् ! रुद्र ! आपका तेज असंख्य सूर्योंके समान अनन्त है। आपको नमस्कार है। रसस्वरूप और जलमय विग्रहवाले आप भवदेवताको नमस्कार है। नन्दी और सुरभि (कामधेनु) ये दोनों आपके स्वरूप हैं। आप पृथ्वी-रूपधारी शर्वको नमस्कार है। स्पर्शमय वायुरूपवाले आपको नमस्कार है। आप ही वसुरूपधारी ईश हैं। आपको नमस्कार है। अत्यन्त तेजस्वी अग्निरूप आप पशुपतिको नमस्कार है। शब्दतन्मात्रासे युक्त आकाशरूपधारी आप भीमदेवको नमस्कार है। उग्ररूपवाले यजमानमूर्ति आपको नमस्कार है। सोमरूप आप अमृतमूर्ति महादेवजीको नमस्कार है। इस प्रकार आठ मूर्ति और आठ नामवाले आप भगवान् शिवको मेरा नमस्कार है।*

इस प्रकार विश्वनाथ महादेवजीकी स्तुति करके लोकपितामह ब्रह्माने प्रणामपूर्वक उनसे प्रार्थना की—'भूत, भविष्य और वर्तमानके स्वामी मेरे पुत्र भगवान् महेश्वर ! कामनाशन ! आप सृष्टिके लिये मेरे शरीरसे उत्पन्न हुए हैं; इसलिये जगत्प्रभो ! इस महान् कार्यमें संलग्न हुए मुझ ब्रह्माकी आप सर्वत्र सहायता करें और स्वयं भी प्रजाकी सृष्टि करें।'

ब्रह्माजीके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर कल्याणकारी, त्रिपुरनाशक रुद्रदेवने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी बात मान ली। तदनन्तर प्रसन्न हुए महादेवजीका अभिनन्दन करके सृष्टिके लिये उनकी आज्ञा पाकर भगवान् ब्रह्माने अन्यान्य प्रजाओंकी सृष्टि आरम्भ की। उन्होंने अपने मनसे ही मरीचि, भृगु, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि और वसिष्ठकी सृष्टि की। ये सब ब्रह्माजीके पुत्र कहे गये हैं। धर्म, संकल्प और रुद्रके साथ इनकी संख्या बारह होती है। ये सब पुराने गृहस्थ हैं। देवगणोंसहित इनके बारह दिव्य वंश कहे गये हैं। जो प्रजावान्, क्रियावान् तथा महर्षियोंसे अलंकृत हैं। तत्पश्चात् जलपर स्थित हुए रुद्रसहित ब्रह्माजीने देवताओं, असुरों, पितरों और

---

* ब्रह्मोवाच—

नमस्ते भगवन् रुद्र भास्करामिततेजसे । नमो भवाय देवाय रसायाम्बुमयात्मने ॥
शर्वाय क्षितिरूपाय नन्दीसुरभये नमः । ईशाय वसवे तुभ्यं नमः स्पर्शमयात्मने ॥
पशूनां पतये चैव पावकायातितेजसे । भीमाय व्योमरूपाय शब्दमात्राय ते नमः ॥
उग्रायोग्रस्वरूपाय यजमानात्मने नमः । महाशिवाय सोमाय नमस्त्वमृतमूर्तये ॥

(शि० पु० वा० सं० पू० खं० १२ । ४१—४४)

मनुष्योंकी सृष्टि करनेका विचार किया। ब्रह्माजीने सृष्टिके लिये समाधिस्थ हो अपने चित्तको एकाग्र किया। तत्पश्चात् मुखसे देवताओंको, कोखसे पितरोंको, कटिके अगले भागसे असुरोंको तथा प्रजननेन्द्रिय (लिङ्ग)से सब मनुष्योंको उत्पन्न किया। उनके गुदास्थानसे राक्षस उत्पन्न हुए, जो सदा भूखसे व्याकुल रहते हैं। उनमें तमोगुण और रजोगुणकी प्रधानता होती है। वे रातको विचरते और बलवान् होते हैं। साँप, यक्ष, भूत और गन्धर्व ये भी ब्रह्माजीके अङ्गोंसे उत्पन्न हुए। उनके पक्षभागसे पक्षी हुए। वक्षःस्थलसे अजङ्गम (स्थावर) प्राणियोंका जन्म हुआ। मुखसे बकरों और पार्श्वभागसे भुजंगमोंकी उत्पत्ति हुई। दोनों पैरोंसे घोड़े, हाथी, शरभ, नीलगाय, मृग, ऊँट, खच्चर, न्यङ्कु नामक मृग तथा पशुजातिके अन्यान्य प्राणी उत्पन्न हुए। रोमावलियोंसे ओषधियों और फल-मूलोंका प्राकट्य हुआ। ब्रह्माजीके पूर्ववर्ती मुखसे गायत्री छन्द, ऋग्वेद, त्रिवृत् स्तोम, रथन्तर साम तथा अग्निष्टोम नामक यज्ञकी उत्पत्ति हुई। उनके दक्षिण मुखसे यजुर्वेद, त्रिष्टुप् छन्द, पञ्चदश स्तोम, बृहत्साम और उक्थ नामक यज्ञकी उत्पत्ति हुई। उन्होंने अपने पश्चिम मुखसे सामवेद, जगती छन्द, सप्तदश स्तोम, वैरूप्य साम और अतिरात्र नामक यज्ञको प्रकट किया। उनके उत्तरवर्ती मुखसे एकविंश स्तोम, अथर्ववेद, आप्तोर्याम नामक यम, अनुष्टुप्छन्द और वैराज नामक सामका प्रादुर्भाव हुआ। उनके अङ्गोंसे और भी बहुत-से छोटे-बड़े प्राणी उत्पन्न हुए। उन्होंने यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सराओंके समुदाय, मनुष्य, किंनर, राक्षस, पक्षी, पशु, मृग और सर्प आदि सम्पूर्ण नित्य एवं अनित्य स्थावर-जङ्गम जगत्की रचना की। उनमेंसे जिन्होंने जैसे-जैसे कर्म पूर्व कल्पोंमें अपनाये थे, पुनः-पुनः सृष्टि होनेपर उन्होंने फिर उन्हीं कर्मोंको अपनाया। उस समय वे अपनी पूर्व भावनासे भावित होकर हिंसा-अहिंसासे युक्त मृदु-कठोर, धर्म-अधर्म तथा सत्य और मिथ्या कर्मको अपनाते हैं; क्योंकि पहलेकी वासनाके अनुकूल कर्म ही उन्हें अच्छे लगते हैं।

इस प्रकार विधाताने ही स्वयं इन्द्रियोंके विषय, भूत और शरीर आदिमें विभिन्नता एवं व्यवहारकी सृष्टि की है। उन पितामहने कल्पके आरम्भमें देवता आदि प्राणियोंके नाम, रूप तथा कार्य-विस्तारको वेदोक्त वर्णनके अनुसार ही निश्चित किया। ऋषियोंके नाम तथा जीविका-साधक कर्म भी उन्होंने वेदोंके अनुसार ही निर्दिष्ट किये। अपनी रात व्यतीत होनेपर अजन्मा ब्रह्माने स्वरचित प्राणियोंको वे ही नाम और कर्म दिये, जो पूर्वकल्पमें उन्हें प्राप्त थे। जिस प्रकार भिन्न-भिन्न ऋतुओंके पुनः-पुनः आनेपर उनके चिह्न और नामरूप आदि पूर्ववत् रहते हैं, उसी प्रकार युगादि कालमें भी उनके पूर्वभाव ही दृष्टिगोचर होते हैं। इस प्रकार स्वयम्भू ब्रह्माजीकी लोकसृष्टि उन्हींके विभिन्न अङ्गोंसे प्रकट हुई है। महत्से लेकर विशेषपर्यन्त सब कुछ प्रकृतिका विकार है। यह प्राकृत जगत् चन्द्रमा और सूर्यकी प्रभासे उद्भासित, ग्रह और नक्षत्रोंसे मण्डित, नदियों, पर्वतों तथा समुद्रोंसे अलंकृत और भाँति-भाँतिके रमणीय नगरों एवं समृद्धिशाली जनपदोंसे सुशोभित है। इसीको ब्रह्माजीका वन या ब्रह्मवृक्ष कहते हैं।

उस ब्रह्मवनमें अव्यक्त एवं सर्वज्ञ ब्रह्मा विचरते हैं। वह सनातन ब्रह्मवृक्ष अव्यक्तरूपी बीजसे प्रकट एवं ईश्वरके अनुग्रहपर स्थित है। बुद्धि इसका तना और बड़ी-बड़ी डालियाँ हैं। इन्द्रियाँ भीतरके खोखले हैं। महाभूत इसकी सीमा है। विशेष पदार्थ इसके निर्मल पत्ते हैं। धर्म और अधर्म इसके सुन्दर फूल हैं। इसमें सुख और दुःखरूपी फल लगते हैं तथा यह सम्पूर्ण भूतोंके जीवनका सहारा है। ब्राह्मणलोग द्युलोकको उनका मस्तक, आकाशको नाभि, चन्द्रमा और सूर्यको नेत्र, दिशाओंको कान और पृथ्वीको उनके पैर बताते हैं। वे अचिन्त्यस्वरूप महेश्वर ही सब भूतोंके निर्माता हैं। उनके मुखसे ब्राह्मण प्रकट हुए हैं। वक्षःस्थलके ऊपरी भागसे क्षत्रियोंकी उत्पत्ति हुई है, दोनों जाँघोंसे वैश्य और पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार उनके अङ्गोंसे ही सम्पूर्ण वर्णोंका प्रादुर्भाव हुआ है।

(अध्याय ७—१२)

☆

भगवान् रुद्रके ब्रह्माजीके मुखसे प्रकट होनेका रहस्य, रुद्रके महामहिम स्वरूपका वर्णन, उनके द्वारा रुद्रगणोंकी सृष्टि तथा ब्रह्माजीके रोकनेसे उनका सृष्टिसे विरत होना

ऋषि बोले—प्रभो ! आपने चतुर्मुख ब्रह्माके मुखसे परमात्मा रुद्रदेवकी सृष्टि बतायी है। इस विषयमें हमको संशय होता है। जो प्रलयकालमें कुपित होकर ब्रह्मा, विष्णु और अग्निसहित समस्त लोकका संहार कर डालते हैं; जिन्हें ब्रह्मा और विष्णु भयसे प्रणाम करते हैं, जिन लोकसंहारकारी महेश्वरके वशमें वे दोनों सदा ही रहते हैं, जिन महादेवजीने पूर्वकालमें ब्रह्मा और विष्णुको अपने शरीरसे प्रकट किया था, जो प्रभु सदा ही उन दोनोंके योगक्षेमका निर्वाह करनेवाले हैं, वे आदिदेव पुरातन पुरुष भगवान् रुद्र अव्यक्तजन्मा ब्रह्माके पुत्र कैसे हो गये ? तात ! भगवान् ब्रह्माने मुनियोंसे जैसी बात बतायी थी, वह सब आप ठीक-ठीक कहिये। भगवान् शिवके उत्तम यशका श्रवण करनेके लिये हमारे हृदयमें बड़ी श्रद्धा है।

वायुदेवताने कहा—ब्राह्मणो ! तुम सब लोग जिज्ञासामें कुशल हो, अतः तुमने यह बहुत ही उचित प्रश्न किया है। मैंने भी पूर्वकालमें पितामह ब्रह्माजीके समक्ष यही प्रश्न रखा था। उसके उत्तरमें पितामहने मुझसे जो कुछ कहा था, वही मैं तुम्हें बताऊँगा। जैसे रुद्रदेव उत्पन्न हुए और फिर जिस प्रकार ब्रह्मा और विष्णुकी परस्पर उत्पत्ति हुई, वह सब विषय सुना रहा हूँ। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—तीनों ही कारणात्मा हैं। वे क्रमशः चराचर जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहारके हेतु हैं और साक्षात् महेश्वरसे प्रकट हुए हैं। उनमें परम ऐश्वर्य विद्यमान है। वे परमेश्वरसे भावित और उनकी शक्तिसे अधिष्ठित हो सदा उनके कार्य करनेमें समर्थ होते हैं। पूर्वकालमें पिता महेश्वरने ही उन तीनोंको तीन कर्मोंमें नियुक्त किया था। ब्रह्माकी सृष्टिकार्यमें, विष्णुकी रक्षाकार्यमें

तथा रुद्रकी संहारकार्यमें नियुक्ति हुई थी। कल्पान्तरमें परमेश्वर शिवके प्रसादसे रुद्रदेवने ब्रह्मा और नारायणकी सृष्टि की थी। इसी तरह दूसरे कल्पमें जगन्मय ब्रह्माने रुद्र तथा विष्णुको उत्पन्न किया था। फिर कल्पान्तरमें भगवान् विष्णुने भी रुद्र तथा ब्रह्माकी सृष्टि की थी। इस तरह पुनः ब्रह्माने नारायणकी और रुद्रदेवने ब्रह्माकी सृष्टि की। इस प्रकार विभिन्न कल्पोंमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर परस्पर उत्पन्न होते और एक-दूसरेका हित चाहते हैं। उन-उन कल्पोंके वृत्तान्तको लेकर महर्षिगण उनके प्रभावका वर्णन किया करते हैं।

प्रत्येक कल्पमें भगवान् रुद्रके आविर्भावका जो कारण है, उसे बता रहा हूँ। उन्हींके प्रादुर्भावसे ब्रह्माजीकी सृष्टिका प्रवाह अविच्छिन्नरूपसे चलता रहता है। ब्रह्माण्डसे उत्पन्न होनेवाले ब्रह्मा प्रत्येक कल्पमें प्रजाकी सृष्टि करके प्राणियोंकी वृद्धि न होनेसे जब अत्यन्त दुःखी हो मूर्छित हो जाते हैं, तब उनके दुःखकी शान्ति और प्रजावर्गकी वृद्धिके लिये उन-उन कल्पोंमें रुद्रगणोंके स्वामी कालस्वरूप नील-लोहित महेश्वर रुद्र अपने कारणभूत परमेश्वरकी आज्ञासे ब्रह्माजीके पुत्र होकर उनपर अनुग्रह करते हैं। वे ही तेजोराशि, अनामय, अनादि, अनन्त, धाता, भूतसंहारक और सर्वव्यापी भगवान् ईश परम ऐश्वर्यसे संयुक्त, परमेश्वरसे भावित और सदा उन्हींकी शक्तिसे अधिष्ठित हो उन्हींके चिह्न धारण करते हैं। उन्हींके नामसे प्रसिद्ध हो उन्हींके समान रूप धारणकर उनके कार्य करनेमें समर्थ होते हैं। इनका सारा व्यवहार उन्हीं परमेश्वरके समान होता है। ये उनकी आज्ञाके पालक हैं। सहस्रों सूर्योंके समान उनका तेज है। ये अर्धचन्द्रको आभूषणके रूपमें धारण करते हैं। उनके हार, बाजूबंद और कड़े सर्पमय हैं। ये मूँजकी मेखला धारण करते हैं। जलंधर, विरिञ्चि और इन्द्र उनकी सेवामें खड़े रहते हैं तथा हाथमें कपालखण्ड उनकी शोभा बढ़ाता है। गङ्गाकी ऊँची तरङ्गोंसे उनके पिङ्गल वर्णवाले केश और मुख भीगे रहते हैं। उनके कमनीय कैलास पर्वतके विभिन्न प्रान्त टूटी हुई दाढ़वाले सिंह आदि वन्य पशुओंसे आक्रान्त हैं। उनके बायें कानोंके पास गोलाकार कुण्डल झिलमिलाता रहता है। वे महान् वृषभपर सवारी करते हैं। उनकी वाणी महान् मेघकी गर्जनाके समान गम्भीर है, कान्ति प्रचण्ड अग्निके समान उद्दीप्त है और बल-पराक्रम भी महान् है। इस प्रकार ब्रह्मपुत्र महेश्वरका विशाल रूप बड़ा भयानक है। वे ब्रह्माजीको विज्ञान देकर सृष्टिकार्यमें उनकी सहायता करते हैं। अतः रुद्रके कृपाप्रसादसे प्रत्येक कल्पमें प्रजापतिकी प्रजासृष्टि प्रवाहरूपसे नित्य बनी रहती है।

एक समय ब्रह्माजीने नीललोहित भगवान् रुद्रसे सृष्टि करनेकी प्रार्थना की। तब भगवान् रुद्रने मानसिक संकल्पके द्वारा बहुत-से पुरुषोंकी सृष्टि की। वे सब-के-सब उनके अपने ही समान थे। सबने जटाजूट धारण कर रखे थे। सभी निर्भय, नीलकण्ठ और त्रिनेत्र थे। जरा और मृत्यु उनके पास नहीं पहुँचने पाती थी। चमकीले शूल उनके श्रेष्ठ आयुध थे। उन रुद्रगणोंने सम्पूर्ण चौदह भुवनोंको आच्छादित कर लिया था। उन विविध रुद्रोंको देखकर पितामहने रुद्रदेवसे

कहा—'देवदेवेश्वर ! आपको नमस्कार है। आप ऐसी प्रजाओंकी सृष्टि न कीजिये, आपका कल्याण हो। अब दूसरी प्रजाओंकी सृष्टि कीजिये, जो मरणधर्मवाली हों।'

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर परमेश्वर रुद्र उनसे हँसते हुए बोले—'मेरी सृष्टि वैसी नहीं होगी। अशुभ प्रजाओंकी सृष्टि तुम्हीं करो।' ब्रह्माजीसे ऐसा कहकर सम्पूर्ण भूतोंके स्वामी भगवान् रुद्र उन रुद्रगणोंके साथ प्रजाकी सृष्टिके कार्यसे निवृत्त हो गये।

(अध्याय १३-१४)

☆

ब्रह्माजीके द्वारा अर्द्धनारीश्वररूपकी स्तुति तथा उस स्तोत्रकी महिमा

वायुदेव कहते हैं—जब फिर ब्रह्माजीकी रची हुई प्रजा बढ़ न सकी, तब उन्होंने पुनः मैथुनी सृष्टि करनेका विचार किया। इसके पहले ईश्वरसे नारियोंका समुदाय प्रकट नहीं हुआ था। इसलिये तबतक पितामह मैथुनी सृष्टि नहीं कर सके थे। तब उन्होंने मनमें ऐसे विचारको स्थान दिया, जो निश्चितरूपसे उनके मनोरथकी सिद्धिमें सहायक था। उन्होंने सोचा कि प्रजाओंकी वृद्धिके लिये परमेश्वरसे ही पूछना चाहिये; क्योंकि उनकी कृपाके बिना ये प्रजाएँ बढ़ नहीं सकतीं। ऐसा सोचकर विश्वात्मा ब्रह्माने तपस्या करनेकी तैयारी की। तब जो आद्या, अनन्ता, लोकभाविनी, सूक्ष्मतरा, शुद्धा, भावगम्या, मनोहरा, निर्गुणा, निष्पक्षा, निष्कला, नित्या तथा सदा ईश्वरके पास रहनेवाली जो उनकी परमा शक्ति है, उसीसे युक्त भगवान् त्रिलोचनका अपने हृदयमें चिन्तन करते हुए ब्रह्माजी बड़ी भारी तपस्या करने लगे। तीव्र तपस्यामें लगे हुए परमेष्ठी ब्रह्मापर उनके पिता महादेवजी थोड़े ही समयमें संतुष्ट हो गये। तदनन्तर अपने अनिर्वचनीय अंशसे किसी अद्भुत मूर्तिमें आविष्ट हो भगवान् महादेव आधे शरीरसे नारी और आधे शरीरसे ईश्वर होकर स्वयं ब्रह्माजीके पास गये। उन सर्वव्यापी, सब कुछ देनेवाले, सत्-असत्से रहित, समस्त उपमाओंसे शून्य, शरणागतवत्सल और सनातन शिवको दण्डवत् प्रणाम करके ब्रह्माजी उठे और हाथ जोड़ महादेवजी तथा महादेवी पार्वतीकी स्तुति करने लगे।

ब्रह्मा बोले—देव ! महादेव ! आपकी जय हो। ईश्वर ! महेश्वर ! आपकी जय हो। सर्वगुणश्रेष्ठ शिव ! आपकी जय हो।

सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी शंकर ! आपकी जय हो। प्रकृतिरूपिणी कल्याणमयी उमे ! आपकी जय हो। प्रकृतिकी नायिके ! आपकी जय हो । प्रकृतिसे दूर रहनेवाली देवि ! आपकी जय हो। प्रकृतिसुन्दरि ! आपकी जय हो। अमोघ महामाया और सफल मनोरथवाले देव ! आपकी जय हो, जय हो। अमोघ महालीला और कभी व्यर्थ न जानेवाले महान् बलसे युक्त परमेश्वर ! आपकी जय हो, जय हो। सम्पूर्ण जगत्की माता उमे ! आपकी जय हो। विश्व-जगन्मये ! आपकी जय हो। विश्व-जगद्धात्रि ! आपकी जय हो। समस्त संसारकी सखी-सहायिके ! आपकी जय हो। प्रभो ! आपका ऐश्वर्य तथा धाम दोनों सनातन हैं। आपकी जय हो, जय हो। आपका रूप और अनुचर-वर्ग भी आपकी ही भाँति सनातन है। आपकी जय हो, जय हो। अपने तीन रूपोंद्वारा तीनों लोकोंका निर्माण, पालन और संहार करनेवाली देवि ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो। तीनों लोकों अथवा आत्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा—तीनों आत्माओंकी नायिके ! आपकी जय हो। प्रभो ! जगत्के कारण तत्त्वोंका प्रादुर्भाव और विस्तार आपकी कृपादृष्टिके ही अधीन है, आपकी जय हो। प्रलयकालमें आपकी उपेक्षायुक्त कटाक्षपूर्ण दृष्टिसे जो भयानक आग प्रकट होती है, उसके द्वारा सारा भौतिक जगत् भस्म हो जाता है; आपकी जय हो।

देवि ! आपके स्वरूपका सम्यक् ज्ञान देवता आदिके लिये भी असम्भव है। आपकी जय हो। आप आत्मतत्त्वके सूक्ष्म ज्ञानसे प्रकाशित होती हैं। आपकी जय हो। ईश्वरि ! आपने स्थूल आत्मशक्तिसे चराचर जगत्को व्याप्त कर रखा है। आपकी जय हो, जय हो। प्रभो ! विश्वके तत्त्वोंका समुदाय अनेक और एकरूपमें आपके ही आधारपर स्थित है, आपकी जय हो। आपके श्रेष्ठ सेवकोंका समूह बड़े-बड़े असुरोंके मस्तकपर पाँव रखता है। आपकी जय हो। शरणागतोंकी रक्षा करनेमें अतिशय समर्थ परमेश्वरि ! आपकी जय हो। संसाररूपी विषवृक्षके उगनेवाले अंकुरोंका उन्मूलन करनेवाली उमे ! आपकी जय हो। प्रादेशिक ऐश्वर्य, वीर्य और शौर्यका विस्तार करनेवाले देव ! आपकी जय हो। विश्वसे परे विद्यमान देव ! आपने अपने वैभवसे दूसरोंके वैभवोंको तिरस्कृत कर दिया है, आपकी जय हो। पञ्चविध मोक्षरूप पुरुषार्थके प्रयोगद्वारा परमानन्दमय अमृतकी प्राप्ति करानेवाले परमेश्वर ! आपकी जय हो। पञ्चविध पुरुषार्थके विज्ञानरूप अमृतसे परिपूर्ण स्तोत्रस्वरूपिणी परमेश्वरि ! आपकी जय हो। अत्यन्त भयानक संसाररूपी महारोगको दूर करनेवाले वैद्यशिरोमणि ! आपकी जय हो। अनादि कर्ममल एवं अज्ञानरूपी अन्धकारराशिको दूर करनेवाली चन्द्रिकारूपिणी शिवे ! आपकी जय हो। त्रिपुरका विनाश करनेके लिये कालाग्नि-स्वरूप महादेव ! आपकी जय हो। त्रिपुर-भैरवि ! आपकी जय हो। तीनों गुणोंसे मुक्त महेश्वर ! आपकी जय हो। तीनों गुणोंका मर्दन करनेवाली महेश्वरि ! आपकी जय हो। आदिसर्वज्ञ ! आपकी जय हो। सबको ज्ञान देनेवाली देवि ! आपकी जय हो। प्रचुर दिव्य अङ्गोंसे सुशोभित देव !

आपकी जय हो। मनोवाञ्छित वस्तु देनेवाली देवि ! आपकी जय हो। भगवन् ! देव ! कहाँ तो आपका उत्कृष्ट धाम और कहाँ मेरी तुच्छ वाणी, तथापि भक्तिभावसे प्रलाप करते हुए मुझ सेवकके अपराधको आप क्षमा कर दें।*

इस प्रकार सुन्दर उक्तियोंद्वारा भगवान् रुद्र और देवीका एक साथ गुणगान करके चतुर्मुख ब्रह्माने रुद्र एवं रुद्राणीको बारंबार नमस्कार किया। ब्रह्माजीके द्वारा पठित यह पवित्र एवं उत्तम अर्द्धनारीश्वर-स्तोत्र शिव तथा पार्वतीके हर्षको बढ़ानेवाला है। जो भक्तिपूर्वक जिस किसी भी गुरुकी शिक्षासे इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह शिव और पार्वतीको प्रसन्न करनेके कारण अपने अभीष्ट फलको प्राप्त कर लेता है। जो समस्त भुवनोंके प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले हैं, जिनके विग्रह जन्म और मृत्युसे रहित हैं तथा जो श्रेष्ठ नर और सुन्दरी नारीके रूपमें एक ही शरीर धारण करके स्थित हैं, उन कल्याणकारी भगवान् शिव और शिवाको मैं प्रणाम करता हूँ। (अध्याय १५)

☆

---

* ब्रह्मोवाच—

जय देव महादेव जयेश्वर महेश्वर। जय सर्वगुणश्रेष्ठ जय सर्वसुराधिप॥
जय प्रकृतिकल्याणि जय प्रकृतिनायिके। जय प्रकृतिदूरे त्वं जय प्रकृतिसुन्दरि॥
जयामोघमहामाय जयामोघमनोरथ। जयामोघमहालील जयामोघमहाबल॥
जय विश्वजगन्मातर्जय विश्वजगन्मयि। जय विश्वजगद्धात्रि जय विश्वजगत्सखि॥
जय शाश्वतिकैश्वर्य जय शाश्वतिकालय। जय शाश्वतिकाकार जय शाश्वतिकानुग॥
जयात्मत्रयनिर्मात्रि जयात्मत्रयपालिनि। जयात्मत्रयसंहर्त्रि जयात्मत्रयनायिके॥
जयावलोकनायत्तजगत्कारणबृंहण। जयोपेक्षाकटाक्षोत्थहुतभुग्भुक्तभौतिक॥
जय देवाद्यविज्ञेये स्वात्मसूक्ष्मदृशोज्ज्वले। जय स्थूलात्मशक्त्येशे जय व्याप्तचराचरे॥
जय नानैकविन्यस्तविश्वतत्त्वसमुच्चय। जयासुरशिरोनिष्ठश्रेष्ठानुगकदम्बक॥
जयोपाश्रितसंरक्षासंविधानपटीयसि। जयोन्मूलितसंसारविषवृक्षाङ्कुरोद्गमे॥
जय प्रादेशिकैश्वर्यवीर्यशौर्यविजृम्भण। जय विश्वबहिर्भूत निरस्तपरवैभव॥
जय प्रणीतपञ्चार्थप्रयोगपरमामृत। जय पञ्चार्थविज्ञानसुधास्तोत्रस्वरूपिणि॥
जयातिघोरसंसारमहारोगभिषग्वर। जयानादिमलाज्ञानतमःपटलचन्द्रिके॥
जय त्रिपुरकालाग्ने जय त्रिपुरभैरवि। जय त्रिगुणनिर्मुक्त जय त्रिगुणमर्दिनि॥
जय प्रथमसर्वज्ञ जय सर्वप्रबोधिके। जय प्रचुरदिव्याङ्ग जय प्रार्थितदायिनि॥
क्व देव ते परं धाम क्व च तुच्छं हि नो वचः। तथापि भगवन् भक्त्या प्रलपन्तं क्षमस्व माम्॥

(शि॰ पु॰ वा॰ सं॰ पू॰ खं॰ १५। १६—३१)